राजस्थानरा दूहा

सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीटयूट
बीकानेर

राजस्थान-भारती प्रकाशन न० ११

राजस्थानरा दूहा

राजस्थानी भाषा के लोकप्रिय भावपूर्ण दूहो का सग्रह

[हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा मानसिह-पुरस्कार से सत्कृत]

सपादक

नरोत्तमदास स्वामी, अेम० अे०

प्रकाशक

सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीटयूट

बीकानेर

१९६१

प्रकाशक :
सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट
बीकानेर (राजस्थान)

द्वितीय संस्करण
मूल्य ४)

मुद्रक :
विश्वनाथ भार्गव,
मनोहर प्रेस,
जतनबर, वाराणसी

राजस्थान,
राजस्थानी संस्कृति तथा राजस्थानी साहित्यरा घणा प्रेमी
राजस्थानी इतिहासरा अमर लेखक
मातृभूमि राजस्थानरी महान विभूति

सरल-स्वभाव महामना

महामहोपाध्याय रायबहादुर

श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझानै

सादर समर्पित ।

द्वितीय संस्करण का निवेदन

पुस्तकका प्रथम सस्करण स० १९९१ मे प्रकाशित हुआ था और शीघ्र ही समाप्त हो गया था। तबसे पुस्तककी बड़ी माँग थी और अनेक प्रेमी-जनोके उपालभ बराबर प्राप्त होते रहे पर पुन प्रकाशन की व्यवस्था सभव नही हुई। अब लगभग चौथाई शताब्दीके पश्चात अध्यक्ष श्री अगरचंद नाहटाके प्रयत्नके फलस्वरूप पुस्तकका द्वितीय सस्करण बीकानेर के सादूळ-राजस्थानी-शोध-प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

द्वितीय सस्करणमें प्रस्तावना तथा टिप्पणी भागोके कतिपय अशोको, अनावश्यक समझकर कम कर दिया गया है। पुस्तक के प्रूफ देखना सभव नही हुआ अत कही-कही अशुद्धियाँ रह गयी है। विशेषत: व और व के प्रयोग मे बहुत गडबडी हुई है। पाठक साधारणतया शब्दके आरभमे आये हुये व को व तथा शब्द के मध्यमे आये हुये व को व समझें।

ज्येष्ठ, सं० २०१८

संपादक

प्रकाशकीय

श्री सादूल राजस्थानी रिसर्च-इन्स्टीट्यूट बीकानेर की स्थापना सन् १९४४ मे बीकानेर राज्य के तत्कालीन प्रधान मत्री श्री के० एम० पणिक्कर महोदय की प्रेरणा से, साहित्यानुरागी बीकानेर-नरेश स्वर्गीय महाराजा श्री सादूलसिंहजी बहादुर द्वारा सस्कृत, हिन्दी एवं विशेषत: राजस्थानी साहित्य की सेवा तथा राजस्थानी भाषा के सर्वाङ्गीण विकास के लिये की गई थी ।

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध विद्वानो एवं भाषाशास्त्रियो का सहयोग प्राप्त करने का सौभाग्य हमे प्रारभ से ही मिलता रहा है ।

सस्था द्वारा विगत १६ वर्षो से बीकानेर मे विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तिया चलाई जा रही हैं, जिनमे से निम्न प्रमुख है—

१. विशाल राजस्थानी-हिन्दी शब्दकोश

इस संबध मे विभिन्न स्रोतो से सस्था लगभग दो लाख से अधिक शब्दो का सकलन कर चुकी है । इसका सम्पादन आधुनिक कोशों के ढंग पर, लबे समय से प्रारभ कर दिया गया है और अब तक लगभग तीस हजार शब्द सम्पादित हो चुके है । कोश मे शब्द, व्याकरण, व्युत्पत्ति, उसके अर्थ, और उदाहरण आदि अनेक महत्वपूर्ण सूचनाए दी गई है । यह एक अत्यत विशाल योजना है, जिसकी सतोषजनक क्रियान्विति के लिये प्रचुर द्रव्य और श्रम की आवश्यकता है । आशा है राजस्थान सरकार की ओर से, प्रार्थित द्रव्य-साहाय्य उपलब्ध होते ही निकट भविष्य मे इसका प्रकाशन प्रारभ करना सभव हो सकेगा ।

२. विशाल राजस्थानी मुहावरा कोश

राजस्थानी भाषा अपने विशाल शब्द भडार के साथ मुहावरो से भी समृद्ध है । अनुमानत पचास हजार से भी अधिक मुहावरे दैनिक प्रयोग मे लाये जाते है । हमने लगभग दस हजार मुहावरो का, हिन्दी मे अर्थ और राजस्थानी मे उदाहरणो सहित प्रयोग देकर सपादन करवा लिया है और शीघ्र ही इसे प्रकाशित करने का प्रबध किया जा रहा है । यह भी प्रचुर द्रव्य और श्रम-साध्य कार्य है ।

यदि हम यह विशाल सग्रह साहित्य-जगत को दे सके तो यह सस्था के लिये ही नहीं किन्तु राजस्थानी और हिन्दी जगत के लिए भी एक गौरव की बात होगी।

३. आधुनिकराजस्थानीकाशन रचनओं काप्र

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है—

१. कळायरण, ऋतु काव्य। ले० श्री नानूराम सस्कर्ता

२. आभै पटकी, प्रथम सामाजिक उपन्यास। ले० श्री श्रीलाल जोशी।

३ बरस गांठ, मौलिक कहानी सग्रह। ले० श्री मुरलीधर व्यास।

'राजस्थान-भारती' मे भी आधुनिक राजस्थानी रचनाओ का एक अलग स्तम्भ है, जिसमे भी राजस्थानी कवितायें, कहानिया और रेखाचित्र आदि छपते रहते हैं।

४ 'राजस्थान-भारती' का प्रकाशन

इस विख्यात शोधपत्रिका का प्रकाशन सस्था के लिये गौरव की वस्तु है। गत १४ वर्षों से प्रकाशित इस पत्रिका की विद्वानो ने मुक्त कठ से प्रशसा की है। बहुत चाहते हुए भी द्रव्याभाव, प्रेस की एवं अन्य कठिनाइयो के कारण, त्रैमासिक रूप से इसका प्रकाशन सम्भव नहीं हो सका है। इसका भाग ५ अङ्क ३–४ 'डा० लुइजि पिओ तैस्सितोरी विशेषांक' बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सामग्री से परिपूर्ण है। यह अङ्क एक विदेशी विद्वान की राजस्थानी साहित्य-सेवा का एक बहुमूल्य सचित्र कोश है। पत्रिका का अगला ७वा भाग शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा हैं। इसका अङ्क १–२ राजस्थानी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि पृथ्वीराज राठोड का सचित्र और वृहत् विशेषाक है। अपने ढग का यह एक ही प्रयत्न है।

पत्रिका की उपयोगिता और महत्व के सम्बन्ध मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसके परिवर्तन मे भारत एव विदेशो से लगभग ८० पत्र-पत्रिकाएं हमें प्राप्त होती हैं। भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य देशो मे भी इसकी माग है व इसके ग्राहक हैं। शोधकर्त्ताओ के लिये 'राजस्थान भारती' अनिवार्यत: सग्रहणीय शोध-पत्रिका है। इसमे राजस्थानी भाषा, साहित्य, पुरातत्व, इतिहास, कला आदि पर लेखो के अतिरिक्त सस्था के तीन विशिष्ट सदस्य डा० दशरथ शर्मा, श्रीनरोत्तमदास स्वामी और श्री अगरचन्द नाहटा की वृहत् लेख सूची भी प्रकाशित की गई है।

५. राजस्थानी साहित्य के प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुसधान, सम्पादन एव प्रकाशन

हमारी साहित्य-निधि को प्राचीन, महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियो को सुरक्षित रखने एव सर्वसुलभ कराने के लिये सुसम्पादित एवं शुद्ध रूप मे मुद्रित करवा कर उचित मूल्य मे वितरित करने की हमारी एक विशाल योजना है। सस्कृत, हिंदी और राजस्थानी के महत्वपूर्ण ग्रथो का अनुसधान और प्रकाशन सस्था के सदस्यो की ओर से निरंतर होता रहा है जिसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

६. पृथ्वीराज रासो

पृथ्वीराज रासो के कई संस्करण प्रकाश मे लाये गये हैं और उनमे से लघुतम सस्करण का सम्पादन करवा कर उसका कुछ अंश 'राजस्थान भारती' मे प्रकाशित किया गया है। रासो के विविध सस्करण और उसके ऐतिहासिक महत्व पर कई लेख राजस्थान-भारती मे प्रकाशित हुए हैं।

७. राजस्थान के अज्ञात कवि जान (न्यामतखा) की ७५ रचनाओ की खोज की गई। जिसकी सर्वप्रथम जानकारी 'राजस्थान-भारती' के प्रथम अंक मे प्रकाशित हुई है। उसका महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य 'क्यामरासा' तो प्रकाशित भी करवाया जा चुका है।

८. राजस्थान के जैन सस्कृत साहित्य का परिचय नामक एक निबंध राजस्थान भारती मे प्रकाशित किया जा चुका है।

९. मारवाड क्षेत्र के ५०० लोकगीतो का सग्रह किया जा चुका है। बीकानेर एवं जैसलमेर क्षेत्र के सैकडो लोकगीत, घूमर के लोकगीत, बाल लोकगीत, लोरियां और लगभग ७०० लोक कथाऐं सग्रहीत की गई है। राजस्थानी कहावतो के दो भाग प्रकाशित किये जा चुके हैं। जीणमाता के गीत, पाबूजी के पवाडे और राजा भरथरी आदि लोक काव्य सर्वप्रथम 'राजस्थान-भारती' मे प्रकाशित किए गए हैं।

१० बीकानेर राज्य के और जैसलमेर के अप्रकाशित अभिलेखो का विशाल सग्रह 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' नामक वृहत् पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हो चुका है।

११. जसवत उद्योत, मुंहता नैणसी री ख्यात और अनोखी आन जैसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथो का सम्पादन एव प्रकाशन हो चुका है।

१२. जोधपुर के महाराजा मानसिंहजी के सचिव कविवर उदयचद भंडारी की ४० रचनाओ का अनुसधान किया गया है और महाराजा मानसिंहजी की काव्य-साधना के सबध मे भी सबसे प्रथम 'राजस्थान-भारती' मे लेख प्रकाशित हुआ है।

१३. जैसलमेर के अप्रकाशित १०० शिलालेखो और 'भट्टि वंश प्रशस्ति' आदि अनेक अप्राप्य और अप्रकाशित ग्रथ खोज-यात्रा करके प्राप्त किये गये हैं।

१४. बीकानेर के मस्तयोगी कवि ज्ञानसारजी के ग्रथो का अनुसधान किया गया और ज्ञानसार ग्रथावली के नाम से एक ग्रंथ भी प्रकाशित हो चुका है। इसी प्रकार राजस्थान के महान विद्वान महोपाध्याय समयसुन्दर की ५६३ लघु रचनाओ का सग्रह प्रकाशित किया गया है।

१५. इसके अतिरिक्त सस्था द्वारा—

(१) डा० लुइजि पिओ तैस्सितोरी, समयसुन्दर, पृथ्वीराज, और लोकमान्य तिलक आदि साहित्य-सेवियो के निर्वाण-दिवस और जयन्तिया मनाई जाती हैं।

(२) साप्ताहिक साहित्यिक गोष्ठियो का आयोजन बहुत समय से किया जा रहा है, इसमे अनेको महत्वपूर्ण निबंध, लेख, कविताएँ और कहानिया आदि पढी जाती हैं, जिससे अनेक विध नवीन साहित्य का निर्माण होता रहता है। विचार विमर्श के लिये गोष्ठियो तथा भाषणमालाओ आदि का भी समय-समय पर आयोजन किया जाता रहा है।

१६. बाहर से ख्यातिप्राप्त विद्वानो को बुलाकर उनके भाषण करवाने का आयोजन भी किया जाता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० कैलाशनाथ काटजू, राय श्री कृष्णदास, डा० जी० रामचन्द्रन्, डा० सत्यप्रकाश, डा० डब्लू० एलेन, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० तिबेरिओ-तिबेरी आदि अनेक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वानो के इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भाषण हो चुके है।

गत दो वर्षों से महाकवि पृथ्वीराज राठौड आसन की स्थापना की गई है। दोनो वर्षों के आसन-अधिवेशनो के अभिभाषक क्रमशः राजस्थानी भाषा के प्रकाण्ड

विद्वान् श्री मनोहर शर्मा एम० ए०, बिसाऊ और पं० श्रीलालजी मिश्र एम० ए०, डूडलोद, थे।

इस प्रकार संस्था अपने १६ वर्षों के जीवन-काल मे, सस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी साहित्य की निरंतर सेवा करती रही है। आर्थिक संकट से ग्रस्त इस संस्था के लिये यह संभव नही हो सका कि यह अपने कार्यक्रम को नियमित रूप से पूरा कर सकती, फिर भी यदा कदा लडखडा कर गिरते पडते इसके कार्यकर्त्ताओ ने 'राजस्थान-भारती' का सम्पादन एवं प्रकाशन जारी रखा और यह प्रयास किया कि नाना प्रकार की बाधाओ के बावजूद भी साहित्य सेवा का कार्य निरतर चलता रहे। यह ठीक है कि संस्था के पास अपना निजी भवन नही है, न अच्छा संदर्भ पुस्तकालय है, और न कार्य को सुचारु रूप से सम्पादित करने के समुचित साधन ही हैं; परन्तु साधनो के अभाव में भी सस्था के कार्यकर्ताओ ने साहित्य की जो मौन और एकान्त साधना की है वह प्रकाश मे आने पर संस्था के गौरव को निश्चय ही बढा सकने वाली होगी।

राजस्थानी-साहित्य-भंडार अत्यन्त विशाल है। अब तक इसका अत्यल्प अंश ही प्रकाश मे आया है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अलभ्य एवं अनर्घ रत्नो को प्रकाशित करके विद्वज्जनो और साहित्यिको के समक्ष प्रस्तुत करना एवं उन्हे सुगमता से प्राप्त कराना सस्था का लक्ष्य रहा है। हम अपनी इस लक्ष्य पूर्त्ति की ओर धीरे-धीरे किन्तु दृढता के साथ अग्रसर हो रहे है।

यद्यपि अब तक पत्रिका तथा कतिपय पुस्तको के अतिरिक्त अन्वेषण द्वारा प्राप्त अन्य महत्वपूर्ण सामग्री का प्रकाशन करा देना भी अभीष्ट था, परन्तु अर्थाभाव के कारण ऐसा किया जाना सभव नही हो सका। हर्ष की बात है कि भारत सरकार के वैज्ञानिक सशोध एवं सास्कृतिक कार्यक्रम मत्रालय (Ministry of scientific Research and Cultural Affairs) ने अपनी आधुनिक भारतीय भाषाओ के विकास की योजना के अंतर्गत हमारे कार्यक्रम को स्वीकृत कर प्रकाशन के लिये रु० १५०००) इस मद मे राजस्थान सरकार को दिये तथा राजस्थान सरकार द्वारा उतनी ही राशि अपनी ओर से मिलाकर कुल रु० ३००००) तीस हजार की सहायता, राजस्थानी साहित्य के सम्पादन-प्रकाशन

हेतु इस संस्था को इस वित्तीय वर्ष मे प्रदान की गई है, जिससे इस व
निम्नोक्त २१ पुस्तको का प्रकाशन किया जा रहा है ।

१. राजस्थानी व्याकरण—	श्री नरोत्तमदास स्वामी
२. राजस्थानी गद्य का विकास (शोध प्रबंध)	डा० शिवस्वरूप शर्मा अचल
३. अचलदास खीची री वचनिका—	श्री नरोत्तमदास स्वामी
४. हमीरायण—	श्री भवरलाल नाहटा
५. पद्मिनी चरित्र चौपई—	,, ,, ,,
६. दलपत विलास	श्री रावत सारस्वत
७. डिंगल गीत—	,, ,, ,,
८. पंवार वश दर्पण—	डा० दशरथ शर्मा
९. पृथ्वीराज राठोड ग्रंथावली—	श्री नरोत्तमदास स्वामी और श्री बद्रीप्रसाद साकरिया
१०. हरिरस—	श्री बद्रीप्रसाद साकरिया
११. पीरदान लालस ग्रंथावली—	श्री अगरचन्द नाहटा
१२. महादेव पार्वती वेलि—	श्री रावत सारस्वत
१३. सीताराम चौपई—	श्री अगरचन्द नाहटा
१४. जैन रासादि संग्रह—	श्री अगरचन्द नाहटा और डा० हरिवल्लभ भायाणी
१५. सदयवत्स वीर प्रबन्ध—	प्रो० मंजुलाल मजूमदार
१६. जिनराजसूरि कृतिकुसुमाजलि—	श्री भंवरलाल नाहटा
१७. विनयचन्द कृतिकुसुमाजलि—	,, ,, ,,
१८. कविवर धर्मवर्द्धन ग्रथावली—	श्री अगरचन्द नाहटा
१९. राजस्थान रा दूहा—	श्री नरोत्तमदास स्वामी
२०. वीर रस रा दूहा—	,, ,, ,,
२१. राजस्थान के नीति दोहा—	श्री मोहनलाल पुरोहित
२२. राजस्थान व्रत कथाएं—	,, ,, ,,
२३. राजस्थानी प्रेम कथाएं—	,, ,, ,,
२४. चंदायन—	श्री रावत सारस्वत

२५ भड्डली—	श्री अगरचन्द नाहटा म:विनय सागर
२६. जिनहर्ष ग्रंथावली	श्री अगरचन्द नाहटा
२७. राजस्थानी हस्तलिखित ग्रंथो का विवरण	,, ,,
२८. दम्पति विनोद	,, ,,
२९. हीयाली-राजस्थान का बुद्धिवर्धक साहित्य	,, ,,
३०. समयसुन्दर रासत्रय	श्री भंवरलाल नाहटा
३१. दुरसा आढा ग्रंथावली	श्री बदरीप्रसाद साकरिया

जैसलमेर ऐतिहासिक साधन संग्रह (संपा० डा० दशरथ शर्मा), ईशरदास ग्रथावली (संपा० बदरीप्रसाद साकरिया), रामरासो (प्रो० गोवर्द्धन शर्मा), राजस्थानी जैन साहित्य (ले० श्री अगरचन्द नाहटा), नागदमण (संपा० बदरीप्रसाद साकरिया), मुहावरा कोश (मुरलीधर व्यास) आदि ग्रंथो का सपादन हो चुका है परन्तु अर्थाभाव के कारण इनका प्रकाशन इस वर्ष नही हो रहा है ।

हम आशा करते हैं कि कार्य की महत्ता एव गुरुता को लक्ष्य मे रखते हुए अगले वर्ष इससे भी अधिक सहायता हमे अवश्य प्राप्त हो सकेगी -जिससे उपरोक्त संपादित तथा अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथो का प्रकाशन सम्भव हो सकेगा ।

इस सहायता के लिये हम भारत सरकार के शिक्षाविकास सचिवालय के आभारी हैं, जिन्होने कृपा करके हमारी योजना को स्वीकृत किया और ग्रान्ट-इन-एड की रकम मंजूर की ।

राजस्थान के मुख्य मन्त्री माननीय मोहनलालजी सुखाडिया, जो सौभाग्य से शिक्षा मन्त्री भी है और जो साहित्य की प्रगति एवं पुनरुद्धार के लिये पूर्ण सचेष्ट हैं, का भी इस महायता के प्राप्त कराने मे पूरा-पूरा योगदान रहा हैं। अत: हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता सादर प्रगट करते है।

राजस्थान के प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाध्यक्ष महोदय श्री जगन्नाथसिंहजी मेहता का भी हम आभार प्रगट करते है, जिन्होने अपनी ओर से पूरी-पूरी दिलचस्पी लेकर हमारा उत्साहवर्द्धन किया, जिससे हम इस वृहद् कार्य को सम्पन्न करने मे समर्थ हो सके । सस्था उनकी सदैव ऋणी रहेगी ।

इतने थाडे समय मे इतने महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संपादन करके संस्था के प्रकाशन-कार्य मे जो सराहनीय सहयोग दिया है, इसके लिये हम सभी ग्रन्थ सम्पादको व लेखको के अत्यंत आभारी हैं।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी और अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर, स्व० पूर्णचन्द्र नाहर सग्रहालय कलकत्ता, जैन भवन संग्रह कलकत्ता, महावीर तीर्थक्षेत्र अनुसंधान समिति जयपुर, ओरियटल इन्स्टीट्यूट बडोदा, भाडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, खरतरगच्छ वृहद् ज्ञान-भडार बीकानेर, मोतीचद खजान्ची ग्रथालय बीकानेर, खरतर आचार्य ज्ञान भण्डार बीकानेर, एशियाटिक सोसाइटी बंबई, आत्माराम जैन ज्ञानभडार बडोदा, मुनि पुण्यविजयजी, मुनि रमणिक विजयजी, श्री सीताराम लालस, श्री रविशंकर देराश्री, प० हरदत्तजी गोविंद व्यास जैसलमेर आदि अनेक सस्थाओ और व्यक्तियो से हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त होने से ही उपरोक्त ग्रन्थो का सपादन सभव हो सका है। अतएव हम इन सबके प्रति आभार प्रदर्शन करना अपना परम कर्तव्य समझते है।

ऐसे प्राचीन ग्रन्थो का सम्पादन श्रमसाध्य है एवं पर्याप्त समय की अपेक्षा रखता है। हमने अल्प समय मे ही इतने ग्रन्थ प्रकाशित करने का प्रयत्न किया इसलिये त्रुटियो का रह जाना स्वाभाविक है। गच्छत: स्खलनंक्वपि भवत्येव प्रमाहत:, हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधव:।

आशा है विद्वद्वृन्द हमारे इन प्रकाशनों का अवलोकन करके साहित्य का रसास्वादन करेंगे और अपने सुझावो द्वारा हमें लाभान्वित करेंगे जिससे हम अपने प्रयास को सफल मानकर कृतार्थ हो सकेंगे और पुन: मा भारती के चरण कमलो मे विनम्रतापूर्वक अपनी पुष्पाजलि समर्पित करने के हेतु पुन उपस्थित होने का साहस बटोर सकेंगे।

निवेदक

लालचन्द कोठारी

प्रधान-मंत्री

सादूल राजस्थानी-इन्स्टीट्यूट

बीकानेर

बीकानेर,

मार्गशीर्ष शुक्ला १५

स० २०१७

दिसम्बर ३,१९६०.

भूमिका

[प्रथम संस्करण से]

दूहा राजस्थानी साहित्य अेव राजस्थानी जनताका अत्यन्त प्रिय छंद है। राजस्थानीका दूहा-साहित्य जनतामे सदैव लोकप्रिय रहा है। अब भी सैकड़ो दूहे राजस्थानकी जनताकी जिह्वा पर मिलते हैं। उनमेसे अधिकाशका बारबार कहावतोकी भाँति प्रयोग होता है। राजस्थानके कहानी कहनेवाले कहानीके भावपूर्ण स्थलोपर दूहोका प्रयोग करते हे। जनता और साहित्यमे विशेष प्रचलित अैसे ही दूहोका अेक छोटा-सा सग्रह प्रस्तुत ग्रन्थमे किया गया है। इस प्रकारका सग्रह मै आज कोई चौदह-पंद्रह वर्षोसे करता आ रहा हूँ। उसी सग्रहमेसे चुने हुअ कोई १२०० दूहोको इस प्रथम भागमे सकलित किया गया है। संग्रहका अवशिष्ट अंश कई भागोमे क्रमशः प्रकाशित होगा। यह सग्रह लोगोसे जबानी सुने हुअे दूहो, मित्रो द्वारा सग्रह करके भेजे हुअे दूहो, प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थोसे सकलित किये हुअे दूहो, अेव प्राचीन सग्रहोसे चुने हुअे दूहो को लेकर तय्यार किया गया है। मेरा विचार था कि टिप्पणीमे तुलनाके लिअे सस्कृत-श्लोक और हिदी, अग्रेजी तथा अन्यान्य भाषाओके पद्य भी दिये जाते और सामग्री भी बहुत कुछ तय्यार थी पर ग्रन्थका कलेवर बढ जानेके भयसे अैसा नही किया गया। इससे ग्रंथका मूल्य बहुत बढ जाता और साधारण पाठकोको असुविधा होती।

संग्रह-कार्यमे मुझे अनेक दिशाओसे सहायता मिली। सबसे प्रथम संग्रह मुझे श्री कँवर लीवसिह, कँवर प्रेमसिह बी० अे०, कँवर जसवंतसिह बी० अे०, तथा ठाकर कान्हसिह बी० अे०, अेल-अेल० बी० द्वारा प्राप्त हुआ जिससे उत्साहित होकर मैने इस कामको आगे चलाया। आगे चलकर नीचे लिखे तथा अन्यान्य अनेक सुहृद्वरोने मेरे इस संग्रहकी वृद्धि करनेमे सहायता दी—

सर्वश्री कॅवर किशनसिह बी० अे०, कॅवर सूर्यमालसिह, भॅवर दीपसिह बी० अे०, अेल-अेल बी०, ठाकर जीवणसिह, कॅवर राजसिह, श्रीचॉदसिह, प० बख्शीराम गौड (नागौर निवासी), पुरोहित कृष्णगोपाळ कावनीवाळ, अगरचद नाहटा, भॅवरलाल नाहटा, राधाकृष्ण चतुर्वेदी, तथा कॅवर चन्द्रसिह इत्यादि-इत्यादि । इन महानुभावो का ऋण मै कभी नही भूल सकता ।

जिन प्रकाशित अथवा अप्रकाशित ग्रथोसे दूहे संगृहीत किये गये है उनकी नामावली बहुत लबी है और उसको यहॉ देना अनावश्यक है । हॉ, ढोला-मारूरा दूहाका उल्लेख मै अवश्य करूँगा । उसके अनेक दूहे शृगार-प्रकरणमे लिये गये हैं । मलसीसर-ठाकर भूरसिहजी शेखावत द्वारा सकलित और संपादित विविध-सग्रह तथा महाराणा-यश-प्रकाश नामक सग्रह-ग्रथोसे भी मुझे बहुत सहायता मिली है ।

मुझे सबसे अधिक अनुगृहीत किया है महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशंकर हीराचदजी ओझाने, जिन्होने हस्तलिखित सग्रहको पढकर परम हर्ष प्रकट किया और फिर बडे प्रेमके साथ सब प्रकारसे मुझे उत्साहित किया । इस वृद्धावस्थामे, अवकाशकी कमी रहनेपर भी, आपने प्रवचन लिखकर मुझे कृतार्थ किया ।

यहॉ पर मै मातृभाषाके महान् प्रेमी सेठ श्रीघनश्यामदासजी बिडलाको धन्यवाद देना अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ जिनकी प्रोत्साहना और प्रेरणासे पिलाणी में राजस्थानी साहित्यका उद्धार-कार्य आरभ हुआ है और जिनकी कृपासे यह ग्रथ इस सुन्दर रूपमे पाठकोके आगे रखा जा सका है ।

अतमे रह गये मेरे स्नेहशील सहयोगी सुहृद्वर श्रीयुत ठाकर रामसिहजी 'अेम० अे० तथा सूर्यकरणजी पारीक अेम० अे०, जिनका मुझपर अनेक प्रकारसे ऋण है जिससे मै हजार बार कृतज्ञता-प्रकाश कर देनेपर भी मुक्त नही हो सकता ।

नरोत्तमदास स्वामी

प्रवचन

[लेखक—महामहोपाध्याय रायबहादुर श्रीगौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

भारतवर्षके प्राचीन वाङ्मयमें काव्यका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। गद्यकी अपेक्षा कवितामें प्रायः विशेष आकर्षण और प्रभावोत्पादनकी शक्ति रहती है। किसी घटना-विशेषको देखकर मानव-हृदयमें सहसा जो विचार उत्पन्न होते हैं उनकी कविताके रूपमे बहुत सुन्दर अभिव्यंजना होती है। इसी विचारको लक्ष्यमें रखते हुअे अंग्रेजी-साहित्यके सुप्रसिद्ध आलोचक मैथ्यू आर्नोल्डने कविताके सम्बन्धमें लिखा है—

Poetry is nothing less than the most perfect speech of man, that in which he comes nearest to being able to utter the truth.

अर्थात् कविता मनुष्यकी सर्वाङ्गसुंदर उक्ति है, जिसमें वह सत्यको अधिक-से-अधिक सफलतापूर्वक प्रकट कर सकता है।

प्राचीन भारतीय काव्यके इतिहासमें महर्षि वाल्मीकि आदि-कवि और उनका ग्रथ रामायण आदि-काव्य माना जाता है। अेक बार वाल्मीकिने देखा कि किसी व्याधने कामासक्त क्रौंच (पक्षीविशेष) मिथुनमेंसे अेक पक्षीको अपने बाणसे आहत किया, तो तत्क्षण ऋषिके कोमल हृदय पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा और उस समय उनके शोकके उद्गार अेकदम श्लोकके रूपमें प्रकट हुअे, जिसके सम्बन्धमें महाकवि कालिदासने अपने रघुवंश महाकाव्यमें लिखा है—

निषाद-विद्धाण्डज-दर्शनोत्थः
श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।

संस्कृत वाङ्मयके इतिहासका अध्ययन करनेसे ज्ञान पड़ता है कि विगत ढाई हजार वर्षोमें भारतमे काव्य-कलाके असंख्य उत्कृष्ट कोविदोने कविता-कामिनीके कलेवरको अनेक प्रकारसे अलंकृत किया है। प्राचीन कवि-पुङ्गवोंकी चमत्कार-पूर्ण कवितासे प्रभावित होकर ही जयदेवने बारहवीं शताब्दीमे लिखा था—

केषां नैषा कथय कविता-कामिनी कौतुकाय।

भारतीय कवियोने अपनी काव्य-रचनामे न केवल ईश्वर-भक्ति एवं अनित्यता पर अपनी लेखनी चलायी है, किन्तु उनके काव्य-ग्रंथोमे भाँति-भाँतिकी वक्रोक्तियाँ, स्वभावोक्तियाँ, अन्योक्तियाँ, ऋतु-वर्णन, प्राकृतिक दृश्योंका चित्रण, नाना प्रकारके पशु-पक्षियो तथा भिन्न-भिन्न व्यवसायोके मनुष्योंका वर्णन, नायक-नायिका-भेद तथा नायिकाओके अग-प्रत्यगका वर्णन, सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्याह्न, अपराह्न आदि विभिन्न कालोका यथेष्ट वर्णन, राजदरबारों एवं युद्धोंका विशद विवरण, सेवाधर्मका निरूपण, विषयोपभोगकी तुच्छताका विवेचन, सामान्य नीति, आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोका भी सुचारु समावेश देख पड़ता है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कविके काव्यमें इन सब विषयोका विवरण होना चाहिअे, किन्तु बहुधा उत्कृष्ट काव्योंमें, और विशेषतः महाकाव्योमें, इनमेसे कई-अेक विषयोका वर्णन यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार क्रमशः अनेक सुकवियोंके परिश्रमके फलस्वरूप विभिन्न विषयोंपर बहुत-कुछ काव्य-साहित्य प्रस्तुत होने लगा, तब कतिपय काव्य-मर्मज्ञ सरस्वती-पुत्रोंने अनेक विद्वानोंके ग्रथोंसे विविध विषयोके चुने हुअे सुभाषित पद्योंका सग्रह आरंभ किया। उनके सकलित ग्रंथोको सुभाषित-संग्रह (Anthology) कह सकते हैं।

अधिक प्राचीनकालके भारतीय संग्रह-कर्त्ताओंकी प्रवृत्ति अनेक विषयों-के पद्योके संकलनकी नही, किन्तु कुछ अति महत्त्वपूर्ण विषयोके पद्य-संग्रह की ओर थी। सुविख्यात भर्तृहरिने नीति, शृंगार और वैराग्य इन तीन विषयोंसे सम्बद्ध सुन्दर पद्योंका नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक

नामसे संग्रह किया। शिल्हण नामक काश्मीरी कविके शान्ति-शतकमे वैराग्यविषयक लगभग १०० पद्योका संग्रह है। श्रीशंकराचार्यने सांसारिक जीवन की अनित्यताके सम्बन्धमे अपने मोहमुद्गरमें अनेक श्लोक लिखे। इसी प्रकार चाणक्यनीति नामक ग्रंथमें, जिसका आजतक पर्याप्त प्रचार है, नीति-सम्बन्धी पद्योका संग्रह मिलता है। इस प्रकारके ग्रंथोमें वि० सं० १०५० में रचित जैन विद्वान् अमितगतिका 'सुभाषितरत्नसन्दोह' भी उल्लेखनीय है।

यह तो हुई प्राचीन विद्वानों द्वारा रचित अथवा संगृहीत अेकांगी पद्योंकी बात; किन्तु विक्रम सवत् १००० के पश्चात्—इस समय तक कालिदास, माघ, भारवि आदि अनेक प्रसिद्ध कवि-पुगवोके अमर काव्य-ग्रंथोकी रचना हो चुकी थी—सुभाषित-सग्रहके अैसे ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं, जिनमें उल्लिखित विभिन्न विषयोंके अनेक सुंदर पद्योका उत्कृष्ट संग्रह हुआ है। उन सकलन-ग्रंथोंको देखकर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि उनके सग्रहकर्त्ताओंका अत्यन्त गम्भीर अध्ययन रहा होगा, और मुद्रण-यंत्रका अभाव होते हुअे भी उन्होंने सैकड़ों विद्वानोके ग्रंथोंका मनोयोगपूर्वक अवलोकन किया होगा। अन्यथा उस अतीतकालमें इतने विषयोपर उत्कृष्ट पद्योंके इतने बड़े-बड़े संग्रह तैयार करना अत्यन्त कठिन समस्या होनी चाहिअे। सुभाषित-संग्रहमें चुने गये पद्योंका भावपूर्ण होना नितान्त आवश्यक है, अन्यथा उनकी उपयोगिता नहीं रहती। अेक प्राचीन कविकी उक्ति है—

सुभाषितेन गीतेन युवतीना च लीलया।
मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः ॥

दूसरे शब्दोमें इससे यही अर्थ निकलता है कि योगी अथवा पशुकी कोटिसे बाहर रहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका चित्त सुभाषित पद्यको पढ़, सुन या समझकर भावार्द्र अेवं तन्मय होना चाहिअे। अैसी दशामे सकलन-कर्त्ताओंका कार्य और भी कठिन हो जाता है।

अबतक मिले हुअे इस प्रकारके सुभाषित-ग्रंथोंमें सबसे प्राचीन

संकलन किसी बौद्ध विद्वान् द्वारा अनुमान बारहवी शताब्दीमे संकलित 'कवीन्द्र-वचन-समुच्चय' है, जिसको नेपालसे प्राप्त हस्तलिपिके आधारपर डाक्टर टामसने अत्यंत योग्यतापूर्वक सम्पादित किया है। इसमें जिन कवियो के ५२५ पद्योका संग्रह हुआ है, उनमेसे कोई भी ई० सन् १००० के पश्चात् का नहीं है। तदनंतर ई० स० १२०५ में बंगालके राजा लक्ष्मणसेनके दरबारके विद्वान् श्रीधरदासने 'सदुक्तिकर्णामृत' तैयार किया, जिसमें ४४६ कवियोके पद्य संगृहीत हैं। तेरहवीं शताब्दीके उत्तरार्ध में जल्हण पडितने 'सुभापितमुक्तावली' का संकलन किया। ई० स० १३६३ में शार्ङ्गधर नामक विद्वान्के द्वारा 'शार्ङ्गधरपद्धति' नामक विशाल संकलन प्रस्तुत हुआ। इसमे १६३ विपयोपर ४६८९ पद्योका अपूर्व संग्रह हुआ है। मद्रासकी हस्तलिखित पुस्तकोकी सूचीसे ज्ञात होता है कि ख्यातनामा वेद-भाष्यकार सायणने भी चौदहवी शताब्दीके उत्तरार्ध मे 'सुभापित-सुधानिधि' नामक संग्रह-ग्रंथका निर्माण किया था। पन्द्रहवीं सदीमें वल्लभदेवने ३५० कवियोके १०१ विपयोंके ३५२७ पद्योंका 'सुभापितावलि' नामक उत्कृष्ट संग्रह किया। इसमें शार्ङ्गधर-पद्धतिके कई पद्य ज्यों-के-त्यो पाये जाते हैं। इसी शताब्दी-में श्रीवर पंडितने 'सुभापितावलि' नामक अेक और सग्रह प्रस्तुत किया जिसमे ३८० से अधिक कवियोके पद्य सकलित हुअे हैं। रूपगोस्वामीने अपनी 'पद्यावली' में अनेक विद्वानोंके कृष्ण-भक्ति-विपयक पद्योंका संग्रह किया। न केवल संस्कृत-भापामे ही सुभापित-सग्रह तैयार हुअे किन्तु प्राकृतमें भी जयवल्लभ नामक श्वेताम्बर जैन विद्वान्ने 'वज्जालग्ग' शीर्पक संकलन-ग्रंथ तैयार किया।

जिस प्रकार प्राचीन कालमें विद्वानोंने समय-समय पर इस महत्त्व-पूर्ण कार्यका सम्पादन किया, उसी तरह आधुनिक युगके विद्वान् भी इस कार्यके महत्त्वसे अपरिचित नही रहे। इस समयके संकलन-ग्रंथोंमें कृष्णशास्त्री भाटवड़ेकरका 'सुभापित-रत्नाकर' तथा काशीनाथ पांडुरंग परब द्वारा संकलित 'सुभापित-रत्न-भांडागार' नामक बृहद्

अेवं अनुपम संग्रह उल्लेखनीय हैं। संस्कृत भाषाकी भावपूर्ण एवं सुललित काव्य-रचनापर मुग्ध होकर न केवल अनेक अेतद्देशीय विद्वानोंने ही सुभाषित-पद्य-संग्रहका कार्य किया, किन्तु गत शताब्दीमें जर्मनीके सुविख्यात संस्कृतज्ञ विद्वान् डाक्टर बाथलिंकने भी सारे संस्कृत-साहित्यसे कोई ८००० उत्कृष्ट पद्योंको चुनकर जर्मन-भाषाके अपने सुंदर गद्यानुवादके साथ Indische Spruche नामक विशाल ग्रंथके रूपमें प्रकाशित किया।

जिस प्रकार संस्कृत-साहित्यमें सुभाषित-संग्रह तैयार होते रहे वैसे ही हिन्दीमें भी कुछ पद्य-संग्रह समय-समयपर बने और प्रकाशित हुअे[1] परन्तु उनमें राजस्थानी-साहित्यका स्थान नहींके बराबर है। मोतीलाल सोलंखी द्वारा संकलित 'आनद-संग्रह-बोध' तथा मेरे मित्र मळसीसर-ठाकुर स्वर्गीय श्रीभूरसिंहजी शेखावतके 'विविध-संग्रह' में राजस्थानी भाषाके कुछ सुन्दर पद्य मैंने पढ़े हैं, परन्तु राजस्थानीकी दृष्टिसे इन्हें सर्वांगसुन्दर नहीं कह सकते।

राजस्थानी भाषाका साहित्य भी साहित्यका अेक महत्त्वपूर्ण अंग है। सैकड़ों वर्षोंसे राजपूतानेके भिन्न-भिन्न हिन्दू राजाओंके आश्रयमें रहे हुअे अनेक चारणों, भाटों, तथा कवियोंके द्वारा राजस्थानी भाषाका काव्य-साहित्य तैयार होता रहा है। राजस्थानीकी कविता

---

१ उदाहरणार्थ—कालिदास-हजारा, प्रताप-हजारा, हफीजुल्लाखाँका हजारा, षड्ऋतु-हजारा, रसमोदक-हजारा, नवीनसंग्रह, शिवसिंह सरोज, मालेंदु-कृत सुंदरी-तिलक, रागसागरोद्भव, रागकल्पद्रुम, रागरत्नाकर, मु० देवीप्रसाद कृत राज-रसनामृत, महिलामृदुवाणी, कविरत्नमाला, वियोगी-हरि कृत ब्रज-माधुरीसार, श्यामसुंदरदास कृत सतसई-सप्तक, लोचनप्रसाद पांडेय कृत कविता-कुसुममाला, रामनरेश त्रिपाठी कृत कविताकौमुदी तथा ग्राम-और-मजूरी, लाला भगवानदीन कृत सूक्तिसरोवर, वियोगी-हरि कृत भजन-संग्रह, संतवाणी-संग्रह, साहित्य-प्रभाकर, इत्यादि-इत्यादि।

—न.स्वा.

भी वैसी ही मर्मस्पर्शिनी, ओजस्विनी अेव प्रभावोत्पादिनी है, जैसी प्राचीन सस्कृत और हिन्दी कविता। जो वस्तुतः काव्य-सर्मज्ञ हैं, वे अेक बार राजस्थानीके चुभते हुअे पद्योको पढ या सुनकर उनकी हृदयसे सराहना किये विना नही रह सकते। जिस राजस्थानी भाषाका काव्य-साहित्य इतना व्यापक अेव प्रभावोत्पादक है, उसके विभिन्न विषयोंके चुने हुअे भावपूर्ण पद्योंके सुन्दर संग्रहकी सामान्यतः हिन्दी-प्रेमियो, और विशेषतः राजस्थानियो, के लिअे चिरकालसे आवश्यकता थी। राजस्थानीके पद्योका कोई उत्कृष्ट सग्रह अब तक प्रकाशित नहीं हो सका, इसका अेक कारण यह भी है कि राजस्थानियोके सिवा अन्य प्रान्तीय साहित्य-प्रेमी इसको कम समझते हैं। इसके सिवाय इसका बहुत-कुछ साहित्य अब तक अमुद्रित अेव हस्तलिखित ग्रंन्थोके ही रूपमे विद्यमान है, इसलिअे विशेष खोज अेव परिश्रमके विना इस भाषाके उत्कृष्ट पद्योका सग्रह होना बहुत कठिन है। इसीसे यह महत्त्वपूर्ण कार्य अब तक अपूर्ण-सा पड़ा रहा।

हर्षका विषय है कि इधर कुछ वर्षोंसे राजपूतानेके कतिपय इने-गिने उत्साही साहित्य-सेवियोने राजस्थानीकी सेवाका व्रत ग्रहण किया है और इनमें बीकानेर-निवासी श्रीयुत नरोत्तमदासजी स्वामीका प्रमुख स्थान है। इस भाषाके अन्य कर्मठ सेवकोंमें बीकानेरके ठाकुर श्रीरामसिहजी अेम० अे० (वर्तमान अध्यक्ष, शिक्षा-विभाग, बीकानेर राज्य) और श्रीसूर्यकरणजी पारीक अेम अे० (वाइस-प्रिंसिपल, बिड़ला कालेज, पिलाणी) के नाम उल्लेखनीय हैं। विगत कई वर्षोंसे स्वामीजी अनुकरणीय मनोयोगके साथ राजस्थानी साहित्यका अध्ययन करते रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व जब मैं बीकानेर गया था तब स्वामीजीने मुझे राजस्थानीका विविध विषयोंका अपना संकलन बतलाया था। उसे देखकर मुझे बहुत हर्ष हुआ था। स्वामीजीने कई वर्षोंके परिश्रमसे अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमें पाये जानेवाले तथा जन-श्रुति प्रचलित विभिन्न विषयोंके मार्मिक दोहोंका सुन्दर संग्रह किया है, जिसका यह प्रथम भाग, आशा

है, हिन्दी-प्रेमियों और विशेषतः राजस्थान-वासियोंके लिअे अेक अनूठी वस्तु होगी।

राजस्थानी पद्य-साहित्यमें प्रायः दोहा, सोरठा (जो राजस्थानी पिंगलमें दोहेका ही अेक भेद माना जाता है), और कवित्त आदि छंद अधिक पाये जाते हैं, किन्तु दोहोंका अधिक प्रचार है और आज भी अनेक राजस्थानियोंके मुखसे समयानुसार अनेक प्रकारके दोहे सुने जाते हैं। थोड़े शब्दोंका होनेके कारण दोहा उसी तरह सरलतापूर्वक कंठ किया जा सकता है, जिस प्रकार संस्कृतमें अनुष्टुभ् वृत्त।

इस पहिले भागको विद्वान् संकलनकर्त्ताने विनय, नीति, वीर, अैतिहासिक और भौगोलिक, हास्य और व्यंग, प्रेम, शृंगार-रस, शान्त-रस तथा प्रकीर्णक शीर्षक नौ मुख्य भागोंमें विभक्त किया है। प्रत्येक भागमें अनेक रोचक विषय पसंद कर उनके सम्बन्धमें चमत्कार-पूर्ण दोहोंका सुचारु संकलन किया है। टिप्पणीमें कठिन अेवं अपरिचित शब्दोंका अर्थ देनेसे तथा आरंभमें राजस्थानी भाषा अेवं साहित्यकी परिचायक और आलोचनात्मक प्रस्तावना जोड़ देनेसे पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। अैसे उत्कृष्ट संग्रहको हिन्दी-प्रेमियोंके सम्मुख प्रस्तुत करनेके लिअे श्रीस्वामीजी साधुवादके पात्र हैं।

साथ ही समस्त राजस्थानियोंको भारतके सुविख्यात दानवीर सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला का कृतज्ञ होना चाहिअे, क्योंकि उन्होंने राजस्थानी साहित्यको पुनरुज्जीवित करनेके लिअे अेक ग्रन्थमाला स्थापित करके उसके प्रकाशनकी व्यवस्था कर दी है और बिड़लाजीकी इस दानशीलताके फलस्वरूप ही यह उत्तम संकलन प्रकाशित हो रहा है।

आशा है, इस सुन्दर संकलनको पढ़कर पाठकवर्गमें राजस्थानी भाषाके प्रति प्रेम उत्पन्न होगा और स्वामीजीके आदर्शका अनुकरण करते हुअे निकट भविष्यमें कर्मण्य राजस्थानी साहित्यिकोंका अेक दल तैयार हो जायगा।

अजमेर,
पौष कृ० ११, सं० १९९१ वि०

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

प्रस्तावना

पूर्वार्ध

राजस्थानी भाषा और साहित्यका दिग्दर्शन

(१) राजस्थानी भाषा

राजस्थानी राजस्थान और मालवा प्रान्तकी भाषा है। इसके पूर्वमें बुंदेली और व्रजभाषा, पूर्वोत्तरमें व्रज और बाँगड़ू, उत्तरमें पंजाबी, पश्चिमोत्तरमें पश्चिमी पंजाबी (जिसे लहँदा भी कहा गया है), पश्चिममें सिंधी, दक्षिणपश्चिममें गुजराती और दक्षिणमें मराठी आदि भाषाएं बोली जाती है।

इसकी पाँच मुख्य शाखाएं हैं—

(१) मारवाड़ी—इसका क्षेत्र सबसे अधिक विस्तृत और इसका साहित्य सबसे अधिक संपन्न है। यह पश्चिमी राजस्थान (जोधपुर, मेवाड़, जेसलमेर, बीकानेर, शेखावाटी आदि) की बोली है।

(२) ढूंढाड़ी—इसका क्षेत्र पूर्वी राजस्थान (जयपुर, कोटा, बूँदी, झालावाड़, किशनगढ़ आदि) है। इसमें भी अच्छा साहित्य वर्तमान है।

(३) मेवाती—यह मेव प्रान्त अर्थात् अलवर आदि भागोंमें बोली जाती है। इसमें साहित्य नहींके बराबर है।

(४) मालवी—यह मालवा प्रान्त (इंदौर, भोपाल, नेमाड़, तथा ग्वालियर राज्यके अधिकांश भाग) की बोली है। इसमें बहुत थोड़ी साहित्य-रचना हुई है।

(५) भीली—यह राजस्थानीका वह रूप है जिसे भील आदि पहाड़ी आदिम जातियाँ बोलती हैं। इसमें गुजरातीका मेल बहुत पाया जाता है।

राजस्थानी भाषा बोलनेवालोंकी संख्या दो करोड़के लगभग है। राजस्थानकी वैश्यजाति भारतके कोने-कोनेमें फैली हुई है अतः इसके बोलनेवाले समस्त भारतवर्षमें मिल सकते हैं।

(२) *राजस्थानीका विकास*

राजस्थानीका विकास अपभ्रंश भाषासे हुआ। अपभ्रंशका विकास विक्रमकी प्रारंभिक शताब्दियोमे आरंभ हुआ। उसके विकासका आरंभिक स्थान भी पश्चिमी भारत ही था। आरंभमें वह साधारण जनताकी बोलचालकी भाषा थी। आगे चलकर उसने साहित्यमे पैर रखा। छठी शताब्दीमें तो बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी अपभ्रंशमें काव्य-रचना कर सकना अपने लिओ गौरवकी बात समझते थे[१]। काव्यादर्शकार दंडिन्‌के समयमें उसमे अच्छा साहित्य वर्त्तमान था। दंडिन्‌ने समस्त साहित्यके तीन विभाग करके उनमे अपभ्रंश-साहित्यकी भी गणना की है। राजशेखरके जमाने तक तो अपभ्रंश-साहित्यने समाननीय स्थान प्राप्त कर लिया था।

अपभ्रंशके साहित्यमे प्रवेश करनेपर उसमें धीरे-धीरे स्थिरता आने लगी। पर बोलचालकी भाषा स्थिर नही रह सकती। विकास—परिवर्त्तन—उसके लिओ स्वाभाविक है। अतः साहित्यिक भाषा और बोलचालकी भाषामे धीरे-धीरे अन्तर पड़ने लगा।

आरभमें प्रायः समस्त भारतमे अेक ही भाषा साधारण प्रान्तीय भेदोंके साथ बोली जाती थी। परंतु हर्षवर्धनके समयके पश्चात्‌ समस्त भारतकी राजनीतिक अेकता छिन्नभिन्न हो गयी। देश छोटे-छोटे राज्योमे बॅट गया। प्रान्तोंका पारस्परिक आवागमन धीरे-धीरे कम होता गया जिससे उनका आपसका संबंध विच्छिन्न होने लगा। इससे भाषाकी अेकरूपता भी नष्ट होने लगी और बोलचालकी भाषाके प्रान्तीय भेदोंका जन्म हुआ। आरंभमें प्रान्तीय भेदोंमें इतनी विभिन्नता न थी कि अेक प्रान्तवाले दूसरे प्रान्तवालोंकी बोलीको न समझ सके; परन्तु धीरे-धीरे यह विभिन्नता बढ़ती गयी और वर्त्तमान देशभाषाओंका आरंभ हुआ।

अपभ्रंशके विकासको हम दो भागोमें बाँट सकते हैं—(१) पूर्व-

१—वलभी-नरेश (दूसरे) धरसेनका लेख देखिये।

कालीन अपभ्रंश, और (२) उत्तरकालीन अपभ्रंश। इसी उत्तरकालीन अपभ्रंशको विद्वानोंने पुरानी हिन्दी, जूनी गुजराती, या पुरानी राजस्थानीके नाम भी दिये हैं।

इसी उत्तरकालीन अपभ्रंशका विकसित रूप प्राचीन राजस्थानी है। प्राचीन राजस्थानीका क्षेत्र गुजरातसे लेकर प्रयागमंडल तकका विस्तृत भूखंड था। इस समस्त प्रदेशमें अेक ही भाषा साधारण विभिन्नताओंके साथ बोली जाती थी। बोलचालकी भाषामें धीरे-धीरे विभिन्नता बढ़ती गयी पर साहित्यिक भापा तो बहुत दिनों तक यही प्राचीन भाषा रही जिसे प्राचीन राजस्थानी कहा जा सकता है। कबीर आदि प्राचीन महाकवियोंकी भाषाको देखनेसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। कबीरकी भापा अन्य भाषाओं की अपेक्षा राजस्थानीके अधिक निकट है[1]। इसी प्राचीन राजस्थानीसे ब्रजभाषा, गुजराती और आधुनिक राजस्थानीका विकास हुआ है[2]।

(३) *राजस्थानी भाषाका साहित्य*

राजस्थानीका प्राचीन साहित्य बहुत विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। पद्य ही नहीं किंतु गद्य भी उसमें प्रचुर परिमाणमे मिलता है। भारतीय भापाविज्ञान और मध्यकालीन भारतीय इतिहासके सुचारु अध्ययन के लिअे राजस्थानी साहित्यका अध्ययन नितान्त आवश्यक है। खेद है कि विद्वानोंका ध्यान अभीतक इस ओर नही गया और यह बहुमूल्य साहित्य प्रायः सब-का-सब अज्ञानांधकारके गहरे गर्त्तमे छिपा पड़ा है।

राजस्थानी साहित्यको हम दो भागोंमें बाँटेंगे—(१) चारणी साहित्य, और (२) साधारण बोलचालकी राजस्थानीका साहित्य।

१—देखिये, ढोलामारूरा दूहा, प्रस्तावना (उत्तरार्ध)

२—राजस्थानी भाषाके विकासके विस्तृत विवेचनके लिअे लेखककी लिखी हुई ढोलामारूरा दूहा नामक ग्रन्थकी प्रस्तावना (उत्तरार्ध) देखिये। यह ग्रंथ काशीकी नागरी-प्रचारिणीसभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

चारणी साहित्य प्रधानतया वीर और शृङ्गार रसात्मक है। चारणी कविताका अेक बड़ा भाग मुख्यतया गीतो में है। इन गीतोंका विस्तृत विवरण कवि रघुबरजस-प्रकास, रघुनाथरूपक आदि ग्रंथोमें किया गया है। गीत-साहित्य राजस्थानी साहित्यकी अेक विशेषता है। ये गीत विशेषतया अैतिहासिक व्यक्तियोके संबंधके हैं और उनमें इन लोगोके वीरता तथा उदारतापूर्ण पराक्रमोंका वर्णन है। देवताओंकी स्तुतियोंके धार्मिक गीत भी बहुत बड़ी संख्यामें मिलते हैं। छन्दोमें दूहा, कवित्त (छप्पय), पावड़ी (पद्धरी), भुजंगप्रयात, मोतियदाम, हनूफाल, बिअक्खरी चारणी साहित्यके प्रमुख छंद हैं।

चारणी कविताकी अेक प्रमुख विशेषता वैणसगाई अलकारका प्रयोग है। वैणसगाई अेक प्रकारका अनुप्रास है। इसके लिअे यह आवश्यक है कि छन्दके प्रत्येक चरणमे पहले शब्दका आरंभ जिस वर्णसे हो उसके अंतिम शब्दका आरंभ भी उसी वर्णसे होना चाहिअे[1]। यहाँपर एक उदाहरण दिया जाता है—

> गंगाजळ गुटकीह निरणै ही लीधी नही।
> भव-भवमे भटकीह, भूत हुआ, भागीरथी!॥

डिगळमें गद्य भी लिखा गया है। वह भी अनेक-रूपात्मक है। डिंगळ गद्यका अेक भेद वचनिका है। वचनिका उस गद्यको कहते हैं जिसमें वाक्योकी तुक मिलती जाय।[2] वचनिकाओंमे दो बहुत प्रसिद्ध हैं—

१—नहीं तो वह वर्ण अतिम शब्दमे कही-न-कही अवश्य आना चाहिअे। वैणासगाईके लिअे च-छ, ज-झ, ग-घ, प-फ, त-ट, द-ड, ध-ढ, न-ण, और ब-व में तथा अ-इ-उ--अे-ओ-य-व मे अन्तर नही गिना जाता।

२—तुकवाला गद्य लिखनेकी परिपाटी बहुत प्राचीन है। पद्रहवी शताब्दीमे लिखी हुई कई राजस्थानी भाषाकी कथाअें इस प्रकारके गद्यमे लिखी हुई मिली है। हिंदीमे लल्लूलाल और इशाअल्लाखाँने इस प्राचीन परिपाटीका अनुसरण कही-कही किया है।

(१) खीची अचळदासरी वचनिका—इसमें गागरोनगढ़के चोहाण राजा अचळदास और मांडवगढ़के सुलतानके युद्धका वर्णन है जिसमें अचळदास वीरगति को प्राप्त हुआ। इसका कर्ता सिवदास नामक चारण था जो उक्त राजाका समकालीन था। यह रचना संवत् १४७० के आसपासकी है।

(२) राव रतन महेसदासोतरी वचनिका—औरंगजेब और महाराज जसवतसिहके बीच उज्जैनमें जो युद्ध हुआ उसमें रतनसिहने वीरगति प्राप्त की। उसका वर्णन इस ग्रंथ मे है। इसका लेखक खिड़िया चारण जग्गा था जिसने स्वयं उक्त युद्ध मे भाग लिया था। इसका रचनाकाल अठारहवी शताब्दीका द्वितीय दशक है।

इनमे पहली प्राचीनताकी दृष्टिसे और दूसरी प्रौढ़शैलीकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है।

साधारण राजस्थानी साहित्यके तीन विभाग किये जा सकते हैं—(१) लौकिक रचनाऐं (२) जैन रचनाऐं, और (३) जैनेतर रचनाऐं।

लौकिक साहित्यके निर्माता ढाढी, ढोली, भाट आदि जातियाँ हैं जिनका व्यवसाय गा-बजाकर अथवा कथा-कहानी सुनाकर जनताको रिझानेका है। ऐसे साहित्यकी रचना प्रधानतया मौखिक रूपमें ही होती है और वह बहुत काल तक मौखिक रूप मे ही रहता है। समयके साथ-साथ उसकी भाषा तथा ढाँचा आदि बदलते रहते हैं। नये-नये गायक (या पाठक) अपनी-अपनी रुचिके अनुसार अथवा परिस्थितिको देखकर परिवर्तन करते रहते हैं। आगे चलकर कोई उत्साही व्यक्ति उसे लेखबद्ध कर देता है। कहनेकी आवश्यकता नही कि यह साहित्य हमें अपने आरम्भिक असली रूपमें प्राप्त नहीं हो सकता। राजस्थानीमें ऐसा साहित्य प्रचुर परिमाण में है, केवल संग्रह करके लिपिबद्ध करनेकी आवश्यकता है (समय-समयपर कुछ लिपिबद्ध किया भी गया है)।

जैन रचनाओंके लेखक जैन साधु अथवा जैन गृहस्थ हैं। यह साहित्य तुरंत ही लिपिबद्ध हो जानेके कारण बहुत-कुछ अपने असली

रूपमे सुरक्षित है। भाषाविज्ञानके लिअे इसका बड़ा भारी महत्त्व है। प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन गुजराती तथा प्राचीन हिंदी आदि भाषाओंके क्रमिक विकासके अध्ययनके लिअे इसका अध्ययन नितान्त आवश्यक है। प्राचीनता-प्रेमके कारण इस साहित्यकी भाषापर प्राकृत और अपभ्रंशका प्रभाव पाया जाता है फिर भी बोलचालकी भाषाके वह अधिक सन्निकट है। यह साहित्य प्रधानतया धार्मिक या कथात्मक है।

जैनेतर लेखकोंकी कृतियोंको हम तीसरे विभागमें रखेंगे। अत्यन्त प्राचीनकालकी अैसी कृतियाँ बहुत कम उपलब्ध होती हैं। इनमेंसे कुछ आगे चलकर बहुत लोकप्रिय हुई और लौकिक साहित्यकी भाँति जनताकी वस्तु बन गयी। इसकारण उनमें समय-समयपर बहुत परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे और उनको अपने असली रूपमें प्राप्त करना कठिन है। इस विभागमें धर्म, नीति तथा कथात्मक रचनाओंकी प्रधानता है। खड़ीबोली-मिश्रित राजस्थानी अथवा ब्रज-मिश्रित राजस्थानीकी रचनाअें भी इस विभागके अन्तर्गत आवेंगी।

राजस्थानीका सन्त-साहित्य भी बहुत बड़ा है। इस साहित्यकी भाषामें ब्रज, खड़ीबोली, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओंका मेल पाया जाता है। सूरदास, तुलसीदास, कबीर आदि अनेक संतोंके भजन भी राजस्थानी रूप धारण करके राजस्थानी जीवन और राजस्थानी साहित्यके अंग बन गये हैं।

राजस्थानीका गद्य-साहित्य बहुत विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। हिन्दीमें प्राचीन गद्य-साहित्यका प्रायः अभाव है पर राजस्थानीमें गद्य-लेखनकी परंपरा अपभ्रंश-कालसे वर्तमान शताब्दीके प्रारंभ तक अनवच्छिन्न रूपसे जारी रही है। प्राचीन कालके अधिकांश गद्य-लेखक जैन लोग हैं। सत्रहवीं शताब्दीके प्रथमार्धसे राजस्थानके विभिन्न राज्योंकी ख्यातें (इतिहास) बराबर लिखी जाने लगीं। अैतिहासिक, अर्धैतिहासिक और काल्पनिक कथा-साहित्यका तो प्रवाह-सा बह चला। अभाग्यवश राज-कीय परिवर्तनों के कारण तथा अन्यान्य कारणोंसे बहुत-कुछ प्राचीन

गद्य-साहित्य नष्ट हो गया या बिखर गया। बहुत-सी राजकीय ख्यातें लेखको या उस विभागके अधिकारियोंकी निजी संपत्ति बनकर विस्मृतिके गर्तमें जा पड़ी। राजस्थानीका अधिकांश गद्य-साहित्य ख्यातो या वातो[1] के रूपमें है। इसके बाद धार्मिक गद्यका नंबर आता है। संस्कृत और प्राकृतके धार्मिक तथा लौकिक कथा-ग्रंथोके अनुवाद भी राजस्थानीमें हुओ और उन्होने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की। राजस्थानमें गद्य-साहित्य-लेखनकी यह परंपरा बीसवी शताब्दीके आरंभ तक बराबर चलती रही। इस समयके आसपास हिन्दीका आगमन हुआ और राजस्थानकी शिक्षा-सस्थाओमे राजस्थानीकी जगह उसको स्थान मिला। अब हिंदी पढ़े-लिखे शिष्ट-समाज द्वारा समादृत हुई और राजस्थानी धीरे-धीरे गंवारू बोली समझी जाने लगी। फल यह हुआ कि राजस्थानीमें साहित्य-रचना बंद हो गयी और राजस्थानी लेखक हिंदीमें लिखने लगे।

(४) राजस्थानीका दूहा-साहित्य

दूहा-साहित्य राजस्थानीका बहुत महत्त्वपूर्ण साहित्य है। जो स्थान सस्कृतमें अनुष्टुप् श्लोकका तथा जो स्थान प्राकृतमे गाथाका है वही उत्तरकालीन अपभ्रंश (लोकभापा), राजस्थानी और गुजरातीमे, तथा हिंदीमें भी, दूहेका है। छोटा होनेके कारण इसे याद रखनेमे सुभीता होता है। यह इसकी लोकप्रियताका अेक मुख्य कारण है। बातको सक्षेपमे और चुभते हुअे ढगसे कहनेके लिअे दूहा बहुत ही उपयुक्त छद है। इसी कारण कबीर आदि सन्त-महात्माओंने अपनी सखियाँ इसी छदमें कहीं। रहीम और वृंद जैसे नीति-कवियोने भी इसीको पसंद किया और बिहारी,

---

१—वात राजस्थानीमें कहानीको कहते हैं। राजस्थानी वातोके सग्रह राजस्थानके ग्रंथभंडारोमे यत्र-तत्र उपलब्ध होते है। इन सबका संग्रह किया जाय तो न-जाने कितने कथासरित्सागर या यह सहस्त्ररजनीचरित्र तय्यार हो जायें।

मतिराम, रसनिधि आदिने अपनी अपूर्व रसधारा भी इसीमें प्रवाहित की। इन लोगोंको जो सफलता तथा लोकप्रियता प्राप्त हुई उसके विषयमें कुछ कहना अनावश्यक है। राजस्थानीका अधिकांश लौकिक साहित्य इसी छंदमें निर्मित हुआ है। प्राचीन कालसे सैकड़ों दूहे लोगोकी जबानपर चलते आये हैं जिनका बात-बातमें कहावतोंकी भाँति प्रयोग किया जाता है। राजस्थानी जनताकी सर्वप्रिय मॉड रागका माधुर्य और आकर्षण भी उसके दूहोंपर ही निर्भर है। प्राचीन लौकिक-वीरों की कीर्त्ति इन्हीं छोटे-छोटे दूहोकी बदौलत नाम-शेष हो जानेसे बच गयी है। आज भी प्राचीन ढंगके राजस्थानी-कहानी कहनेवाले लोग कहानियोंके बीच-बीचमें भावपूर्ण स्थलोंपर दूहोंका प्रयोग करके श्रोता लोगोंको मुग्ध करते हैं।

दूहा छंद और दूहा-साहित्य राजस्थानको अपभ्रंशसे बपौतीके रूपमें प्राप्त हुअे हैं। उत्तर-अपभ्रंशकालमें दूहा साधारण जनता अेवं विद्वत्समाज दोनो द्वारा समादृत छंद था। राजस्थानीमें भी उसकी लोकप्रियता और उसका समादर ज्यों-के-त्यों कायम रहे। अपभ्रंशकालके बहुत-से दूहे जो लोगोंमें सर्वप्रिय थे बराबर आगे तक चलते गये। हाँ, समयके साथ-साथ उनकी भाषा का रूप बदलता रहा। अैसे कुछ दूहे आज भी लोगोकी जबानपर मिलेंगे। बहुत-से विस्मृति-सागरमें लीन हो गये और कुछ थोड़े-से उत्साही व्यक्तियों द्वारा समय-समयपर लिपि-बद्ध कर लिये जानेसे सुरक्षित भी रह गये हैं। अैसे कुछ दूहे उदाहरण-स्वरूप नीचे दिये जाते हैं—

(१) हेमचन्द्रने अपने व्याकरणमें नीचे लिखा दूहा उद्धृत किया है-

वायसु उड्डावंतिअअे पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय, अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥८।४।३५२॥

यह दूहा इस समय इस रूपमें प्रचलित है—

काग उडावण धण खडी, आयो पीव भडक्क।
आधी चूडी काग-गळ, आधी गयी तड़क्क ॥

(२) हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत अेक दूसरा दूहा इस प्रकार है—

पुत्ते जाअे कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुअेण ।
जा बप्पीकी भूंहडी चपिज्जइ अवरेण ॥८।४।३९५॥

इसका प्रचलित रूप यह है—

बेटा जाया कवण गुण, अवगुण कवण धियेण ।
जा ऊभा घर आपणी गंजीजै अवरेण ॥

(३) हेमचंद्र द्वारा उद्धृत अेक और दूहा है—

जइ भग्गा पारक्कड़ा, तो सहि मुज्झु पिअेण ।
अह भग्गा अम्हहँ तणा, तो ते मारिअडेण ॥८।४।३७८॥

यह आजकल इस रूपमें प्रचलित है—

जो भग्गा पारकड़ा, तो सखि मुज्झ पियेण ।
जो भग्गा अम्हे-तणा, तो तिह जुज्झ पडेण ॥

(४) प्रबंध-चिंतामणिमें अपभ्रंशका यह दूहा आया है—

जइ यहु रावणु जाइयउ दह-मुहु इक्कु सरीरु ।
जणणि वियंभी चिंतवइ, कवणु पियावउँ खीरु ॥

इसका आधुनिक राजस्थानीमें यह रूप हो गया है—

राजा रावण जलमियो, दस मुख अेक सरीर ।
जननीनै सासो भयो, किण मुख घालूँ खीर ॥

(५) प्रबंध-चिंतामणिमें उद्धृत अेक दूसरा दूहा इस प्रकार है—

नव जल भरिया मग्गडा गयण धड़क्कइ मेहु ।
इत्थंतरि जइ आविसिइ तइ जाणीसिइ नेहु ॥

इसका आधुनिक रूप यह हो गया है—

आज धरा दिस ऊनम्यो, मोटी छाटा मेह ।
भीजी पाग पधारस्यो, जद जाणूंली नेह ॥

दूहा उत्तरकालीन अपभ्रंशका प्रमुख छंद था। उसका प्रयोग समस्त देशके तत्कालीन साहित्यमे पाया जाता है। इस छंदका संबंध आरंभमें लोक-कविता (FolkPoetry) से था अैसा जान पड़ता है; क्योंकि पुराने अपभ्रंश-साहित्यमें उसका प्रयोग नही मिलता। जनतामें प्रचार पानेके बाद इसने साहित्यमें भी प्रवेश किया। बिक्रमकी नवी शताब्दीके पूर्वभागमें चौरासी सिद्धोंके आदि-सिद्ध सुरहपा हुअे। उन्होंने तत्कालीन बोलचालकी भाषामें कविता लिखी है।* जहॉ तक पता चला है लिखित साहित्यमें इस छदका प्रयोग करनेवाले सबसे प्रथम यही महोदय हुअे। धीरे-धीरे यह छंद बहुत ही लोकप्रिय हुआ। साहित्यमें भी इसका अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। राजस्थानी, गुजराती और हिंदीने इसे अपभ्रशसे बपौतीके रूपमें प्राप्त किया और यह इन तीनो भाषाओंका सबसे महत्त्वपूर्ण छंद सिद्ध हुआ। इन भाषाओंके साहित्यमें जितना प्रयोग इस छद का हुआ है उतना शायद ही किसी दूसरेका हुआ हो।

ऊपर कहा जा चुका है कि दूहा छंदका सर्वप्रथम प्रयोग वज्रयानी सिद्ध सुरहपाकी रचनाओमें मिलता है। उनके पश्चात् कण्हपा आदि अन्यान्य सिद्धोने भी इसका प्रयोग किया। दसवी शताब्दीके अतमे देवसेन सूरिने सावय-धम्म-मंजरी नामक ग्रंथ दूहोमें लिखा। ग्यारहवी शताब्दीके अंतिम भागमे महेश्वरसूरिने 'संयम-मजरी' नामक छोटी-सी पुस्तक इसी छदमे लिखी।

बारहवी शताब्दीके अन्तिम भागमें हेमचन्द्रने अपना सुप्रसिद्ध सिद्ध-हैम-शब्दानुशासन नामक संस्कृत तथा प्राकृतका व्याकरण लिखा। उसके अतिम अध्यायके अंतमे अपभ्रंशका व्याकरण दिया गया है। वहॉपर नियमोका स्पष्टीकरण करनेके लिअे लेखकने अपभ्रंशके दूहोंको उदाहरणके

---

*गगा मासिक पत्र (सुलतानगंज, भागलपुर), भाग ३, अङ्क १ (पुरातत्त्वाक), मे राहुल सास्कृत्यायनका मत्रयान, वज्रयान और चौरासी सिद्ध, तथा हिन्दीके प्राचीनतम कवि और उनकी कविताअे नामक निबन्ध।

रूपमें उद्धृत किया है। ये दूहे उसकी अपनी रचना नहीं। उस समयके प्रचलित दूहोंको लेकर उसने संग्रह-मात्र कर दिया है।

उत्तरकालीन लेखकोंने दूहा या दोहा शब्दकी उत्पत्ति संस्कृत दोधकसे मानी है। हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत दूहोंकी अेक संस्कृत टीका दोधकवृत्ति या दोग्धकवृत्ति नामसे मिलती है जिससे भी यही सूचित होता है। पर यह बादकी कल्पना है। प्राकृत-पैंगल नामक ग्रन्थके टीकाकारोंने दोहाका मूल द्विपदा शब्दको बताया है। कुछ लोग दोहाका मूल द्विपथा अथवा द्विधा शब्दोंको भी बताते हैं। द्विधाका प्राकृत रूप दूहा या दोहा होता है और दूहा छन्द भी द्विधा—दो प्रकारसे, यानी दो पंक्तियोंमें, लिखा जाता है।

दूहा छंद के भेद

हिन्दीमें दूहा छन्द अेक ही प्रकारका है पर राजस्थानीमें (और गुजरातीमें भी) उसके चार भेद हैं। सोरठेको दूहेका ही अेक भेद माना गया है। राजस्थानी पिंगलमें दूहेके इन चार भेदोंके नाम और लक्षण इस प्रकार हैं—

१ दूहो—यह हिंदीका दोहा है। राजस्थानीमें भी इसका अलग नाम नहीं है। इसके पहले और तीसरे चरणोंमें तेरह-तेरह, तथा दूसरे और चौथे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह मात्राअें होती हैं।

२ सोरठियो दूहो या सोरठो—इसे हिंदीमें सोरठा कहते हैं। यह दूहेका उलटा है, यानी इसके पहले और तीसरे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह तथा दूसरे और चौथे चरणोंमें तेरह-तेरह मात्राअें होती हैं।

करुण, वीर और श्रृंगार रसोंके वर्णनके लिअे सोरठा बड़ा ही उपयुक्त छंद है। भावावेश-पूर्ण स्थानोंमें राजस्थानीमें इसीका प्रायः प्रयोग होता है।

राजस्थानीका नीति-संबंधी दूहा-साहित्य भी प्रायः इसीमें लिखा गया है। राजिया, किसनिया, वींजरा, नाथिया, मोतिया, नागजी, जेठवा आदिके सोरठिये दूहे राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध हैं।

३ वडो दूहो (बड़ा दूहा)*—इसके पहले और चौथे चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह, तथा दूसरे और तीसरे चरणोंमें तेरह-तेरह मात्राअें होती हैं। युद्ध-वर्णन और वीर-रसमें इसका मुख्यतया प्रयोग होता है।

४ तूंवेरी दूहो‡—इसके पहले और चौथे चरणोंमें तेरह-तेरह, तथा दूसरे और तीसरे चरणोमे ग्यारह-ग्यारह मात्राअें होती हैं। यह बड़े दूहेका उलटा है।

ध्यान रखना चाहिअे कि तुक सदा ग्यारह-ग्यारह मात्राओंवाले चरणो की मिलती हैं अर्थात् दूहेमें दूसरे और चौथे चरणोंकी, सोरठिये दूहेमें पहले और तीसरेकी, बड़े दूहेमें पहले और चौथेकी, तथा तूंवेरी दूहेमें दूसरे और तीसरेकी तुक मिलेगी।

दूहा-साहित्यके विभाग

राजस्थानी भाषाके दूहा-साहित्यके चार मोटे विभाग किये जा सकते हैं—

(१) लौकिक दूहा-साहित्य—अैसे दूहे प्राचीन कालसे चले आये हैं अथवा समय-समय पर जनता द्वारा निर्मित होते रहे हैं। इसमेंसे कुछ लिपि-बद्ध हो गये, कुछ नष्ट हो गये और कुछ अब भी जनताकी जबान पर हैं। कबीर, तुलसी आदि संतोंकी साखियाँ भी राजस्थानी रूप धारण करके जनतामे प्रचलित हो गयी हैं। उन्हें भी हम इस विभागके अन्तर्गत कर सकते हैं।

इन फुटकर दूहोंका उपयोग समय-समय पर कहावतोंकी भाँति भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त कहानी कहनेवाले प्रभाव-वर्धनके लिअे

---

* इसके दोनो छोरवाले (यानी पहले और चौथे) चरणोकी तुक मिलनेसे इसे अंतमेळ दूहा भी कहते हैं।

‡ इसके दोनो मध्यवाले (यानी दूसरे और तीसरे) चरणोकी तुक मिलनेसे इसे मध्यमेळ दूहा भी कहते हैं।

बीच-बीचमें उपयुक्त दूहोंका प्रयोग करते हैं।[१] यह रीति बहुत प्राचीन है। लिपि-बद्ध कहानियोंके बीच-बीचमें भी ये दूहे पाये जाते हैं।

लौकिक दूहा-साहित्यमें केवल फुटकर दूहे ही नहीं हैं किन्तु बड़ी-बड़ी कहानियाँ तथा कथा-काव्य भी हैं। ढाढी, ढोली, भाट आदि अब भी गा-गाकर इन्हें सुनाया करते हैं। इन कहानियोंके फुटकर दूहे जनतामें प्रचलित पाये जाते हैं—किन्ही-किन्ही लोगोंको सारी-की-सारी कहानी भी याद रहती है। ऐसे कथा-काव्योंमे कुछ थोड़े-से लिपि-बद्ध भी हो गये हैं। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न परिवर्तन तथा परिवर्धन होते रहनेसे इनके अनेक पाठभेद और रूपांतर हो गये हैं। ऐसे कथा-काव्योंमें ढोला-मारूरा दूहा प्रमुख है।[२]

बड़े दुःखकी बात है कि हमारा यह लौकिक साहित्य धीरे-धीरे नष्ट होता जा रहा है। पश्चिमी शिक्षाके प्रभावसे हम अपनी इन चीजोंको नीची दृष्टिसे देखने लगे हैं। ढाढी-ढोली आदि जो जातियाँ इनका रक्षण करती आई हैं उनका अब आदर नहीं होता, उन्हें सुननेवाले नहीं मिलते,

---

१—उदाहरणार्थ जहाँ किसी सुन्दरीका उल्लेख आया वही उसकी सुन्दरताके वर्णनमे यह दूहा जोड़ दिया—

कद था नाग विसासिया, नैण दिया मृग झल्ल।
मान-सरोवर कद गया, हंसा सीखण हल्ल॥

जहाँ प्रेम या मित्रता का वर्णन आया वहाँ यह दूहा कह दिया—

मो मन लागो तो मना, तो मन मो मन लग्ग।
दूध विलग्गा पाणिया, पाणी दूध विलग्ग॥

दूरस्थित प्रेमियोका वर्णन आया तो यह दूहा लाया गया—

जळमे वसै कमोदणी, चदो वसै अकास।
जो ज्याहीके मन वसै, सो त्याहीकै पास॥

२—इसका अेक सुसंपादित सस्करण हिंदी अनुवाद, पाठातर, टिप्पणी, शब्दकोष, विस्तृत अैतिहासिक आलोचनात्मक तथा भाषावैज्ञानिक प्रस्तावना, अेवं कई परिशिष्टोके साथ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

उन्हें कोई नहीं पूछता। इस प्रकार हमारा यह बहुमूल्य खजाना, जिसमें हमारी जाति और हमारे पूर्वजोंका जीवन भरा है, धीरे-धीरे विस्मृतिके तमोतम गर्तमें विलीन होता जा रहा है।

(२) बोलचालकी राजस्थानीमें लिखित दूहा-साहित्य—अैसा दूहा-साहित्य मुख्यतया तीन प्रकारका है—१. सन्त-साहित्य—कबीर, दादू-दयाळ, हरिदास दयाळजी, रामचरणदास आदि सन्तोंकी सखियाँ इस विभागके अन्तर्गत आती हैं। ब्रजभाषाके महत्त्व प्राप्त करनेके बाद जो सन्त-कवि हुअे उनकी भाषापर ब्रजका भी काफी प्रभाव पाया जाता है। २. नीति-साहित्य—इसके अन्तर्गत राजिया, किसनिया, नाथिया, नोपला, ईलिया, दानिया, भैरिया, मोतिया, उदैराज आदिके नीतिके दूहे आते हैं। जेठवा, नागजी, वीजरा[1] आदिके प्रेम तथा करुण रसात्मक दूहोंको भी इनमें परिगणित कर लेते हैं। ३. कथा-काव्य—विभिन्न कवियोंने समय-समयपर दूहोंमें कथा-कहानियाँ लिखी हैं उनका समावेश इस विभागमें होगा। अैसी कहानियोमें माधवानळ-कामकंदळाकी कहानी अधिक प्रसिद्ध है।

(३) जैन दूहा-साहित्य—जैन लेखकोने जैनधर्म सम्बन्धी बहुत-सी रचनाअे दूहोंमें की हैं। इनमे कथा-काव्योकी अधिकता है।

(४) चारणी दूहा-साहित्य—यह साहित्य प्रधानतया नीति-विषयक और वीर-रसात्मक है। अैतिहासिक वीरो तथा अन्यान्य व्यक्तियोके सम्बन्धके दूहोंका बहुत बड़ा संग्रह राजस्थानीमें वर्त्तमान है।

राजस्थानी लेखकोंने ब्रजभाषामें भी दूहा-साहित्यकी रचना की है पर वह हमारे विवेचनके बाहरका विषय है क्योकि प्रस्तुत संग्रहमे ब्रज-भाषाके दूहोको स्थान नही दिया गया है।

---

१. राजिया, किशनिया, जेठवा, वीजरा आदिके दूहे इन लोगोके बनाये हुअे नही किन्तु इनको सम्बोधन करके अन्य लोगो द्वारा रचे गये है। उदाहरणार्थ राजियाके दूहे चारण कृपाराम द्वारा अपने चाकर राजियाको सम्बोधन करके कहे गये थे। इसी प्रकार जेठवाके दूहे उजळी नामकी चारणीके बनाये हुअे हैं जिसका इस जेठवा राजा मेहासे प्रेम हो गया था।

उत्तरार्ध

: १ :

कर्नल टाड यह लिखते समय कि—There is not a petty state in Rajasthan that has not had its Thermopylae and scarcely a city that has not produced its Leonidas इतना और लिखना भूल गये थे कि थर्मापोली-से रणक्षेत्र तैयार करनेवाले वीर, सैनिक कवियोंसे भी राजस्थानका साधारण-से-साधारण गाँव भी खाली नही रहा है। यहाँके वीर तथा भावुक-हृदय चारण, भाट, ढाढी, ढोली और ढोलणोंकी कवित्वाभाको कालिदास, भवभूति और भारवि तथा शेक्सपियर और मिल्टनके काव्यानन्दसे कम उद्भासित न पायँगे। सब मानते हैं कि वीर राजस्थान भारतकी वीर-बाहु रहा है, अब मानना होगा कि राजस्थान भारतका सबल तथा भावुक हृदय भी रहा है। राजस्थानी नैसर्गिक वीरो की तरह जीवित रहे हैं और वीरोकी तरह मिटे हैं।

जैसी नैसर्गिक पवित्रता यहाँकी वीरतामें रही है, वैसी ही प्राकृतिक पावनता यहाँकी साहित्य-धाराभे मिलेगी। इस जातिके वीर साहित्यमें तेजोमय वीर बनानेकी शक्ति है, शृंगार-साहित्यमें सुरम्य-प्रणय-धारा वहानेकी शक्ति है, करुण-साहित्यमें पत्थर पिघलानेकी शक्ति है और शान्त-साहित्यमें कैवल्यमय करनेकी शक्ति है। आचार्य चतुरसेन शास्त्रीने लिखा है—मारवाड़का अबसे सौ वर्ष पूर्वतकका साहित्य महाजातियोके सजने योग्य साहित्य है।

अत्यन्त पुरातन कालके बाद वास्तविक जातीय-साहित्य तैयार करने का गौरव यदि किसी भारतीय प्रान्तको प्राप्त है, तो राजस्थानको। वेदोंमें आर्योंने महाशक्तिसे प्रार्थना की थी—'मन्युरसि मन्युंमयि धेहि।' इस

वीर-जातिके वीर-साहित्यमें भी यही वीर-भाव आदिसे अन्त तक भरपूर मिलेगा। भारतके अन्यान्य प्रान्तोंमें गौतम बुद्ध और महावीर स्वामीके अहिंसावाद-जनित साहित्यने मोहका पर्दा अैसा डाल दिया कि आक्रमण-कारी मुसलमान-जातिने वीर आर्योंकी सन्तानको भेंड़-बकरियोंकी तरह काट डाला। जब नसें फड़कानेवाले वीर-साहित्यके आवेशके साथ वीर राजस्थान सामने आया तब अेक बार शत्रु-प्राण भयात् कॉप उठे।

: २ :

राजस्थानी जीवनकी सबसे बड़ी दो विशेपताअे उसका वीरत्व और उसका स्वातंत्र्य-प्रेम है, जो राजस्थानी साहित्यमें ओतप्रोत भरे हुअे है। राजस्थानकी अधिष्टात्री देवी उसके अनुरूप ही दुर्गा-स्वरूपिणी माता करणी हैं, जिन्हें देवी का अवतार माना जाता है और उसी रूपमे पूजा जाता है। जननीका वीरोचित स्वरूप राजस्थानी भावनाओके अनुकूल कैसा सुंदर अंकित किया गया है :

> बडकै डाढ वराह, कडकै पीठ कमठरी।
> धडकै नाग-धराह, बाघ चढै जद वीसहथ॥

जब बीस-भुजावाली माता सिंहपर सवारी करती है, तो पृथ्वीको धारण करनेवाले बराहकी डाढ़ें तड़क जाती हैं, कच्छपकी पीठ कड़क उठती है और शेषनाग तथा पृथ्वी कंपायमान होकर डगमगाने लगते हैं।

राजस्थानी जीवनका आरभ किस प्रकार होता है, वह भी देखिये :

> इळा न देणी आपणी, रण-खेता भिड जाय।
> पूत सिखावै पालणै मरण-वडाई माय॥

माता नवजात शिशुको झूलेमें झुला रही है। मरनेकी महिमाकी शिक्षा वह तभीसे देना आरंभ कर देती है। माता लोरी देती हुई कहती है कि पुत्र, मर जाना, प्राण दे देना, पर अपनी भूमिको दूसरोंके हाथमे न जाने देना। जो बालक लोरियोंमे ही इस प्रकार 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि

गरीयसी' और अधिकार-रक्षाका पाठ पढ़ते थे, उन्होने अपने अलौकिक वीरत्व और स्वातंत्र्य-प्रेमसे ससारको चकित कर दिया तो इसमें आश्चर्य-की क्या बात ? जातिके गौरवकी रक्षा वीर-माताओके हाथमे होती है, इस तथ्यसे कौन इनकार कर सकता है ?

राजस्थानी जीवन पुरुपके बाह्य सौंदर्यको कोई महत्त्व नही देता। पुरुपका सच्चा सौंदर्य उसका वीर और निर्भीक हृदय है। राजस्थानी जीवन इसीकी कामना करता है :

भूडण तो भूडा जणै, हिरणी जणै सुगट्ठ ।
पान खडक्कै उठ चलै, थागड़ चालै थट्ठ ॥

शूकरीके बच्चे कुरूप होते हैं और हिरणी सुन्दर बच्चोको जन्म देती है। पर यह सौंदर्य किस कामका जब उनका जीवन ही सदा संशयमें रहता है। अेक साधारण पत्तेकी आवाज़ होते ही बेचारे भयके मारे कॉप उठते हैं और जीव लेकर ही भागते बनता है। उधर शूकरीके बच्चोंको देखिये, कैसी निर्भीकतासे शानके साथ चलते हैं।

अेक बालक था। बहुत भोलाभाला, सीधासादा। उसकी चाची तो उसे बिलकुल बोदा और निकम्मा ही समझती थी। पर युद्धका अवसर आया। उसकी चाचीने देखा कि आज उसका वही जेठूत (जेठका लड़का) सबसे बढ़-बढ़कर शत्रुके हाथियोपर आक्रमण कर रहा है। जिनके सामने जाने तकका साहस दूसरोको नही होता था, उन्हें वह काट-काटकर फेंक रहा है :

दिन-दिन भोळो दीसतो, सदा गरीबी सूत ।
काकी कुंजर काटता जाणवियो जेठूत ॥

वीरमाताके दूधका असर भला कहाँ जा सकता है ?

जब हम अत्यन्त कष्टकी स्थितिमें होते हैं, तो प्रायः माताकी याद आती है। हाय माँ, अरी मावड़ी—आदि शब्द हठात् मुँहसे निकल पड़ते हैं। वीर राजस्थानी माता अैसी स्थितिमे अैसे शब्दोका मुँहसे

निकलना सहन नहीं कर सकती, क्योंकि ये शब्द हृदयकी दुर्बलता प्रकट करते हैं। राणकदेका अबोध पुत्र उसकी आँखोंके सामने मारा जाता है। असहाय बालक माँ-माँ चिल्लाता है, पर माता कहती है :

माणेरा, मत रोय, मत कर रत्ती अंखिया।
कुळमै लागै खोय, मरता मा न सँभारजे ॥

अरे माणेरा, मत रो, आँखोंको लाल मत कर, मरते समय माँको कभी याद न करना, क्योंकि इससे कुलको कलंक लगता है। मरना है तो हँसते-हँसते मरो, दुर्बलता दिखाकर मरणको कटु मत बनाओ।

अेक वीरबाला अपने असहाय और कर्त्तव्य-विमूढ़ देवरको कैसे ओजस्वी और प्रभावशाली शब्दोंमे कर्त्तव्य-मार्ग दिखाती है :

राहब, उट्ठ कमाणगर, मूंछ मरोड़, म रोय।
मरदा मरणा हक्क है, रोणा हक्क न होय ॥

देवर राहब, रोते क्या हो? उठो, मोछोंपर ताव दो। मर्दके लिअे मरना हक है, रोना नही। रोना तो निराधार अबलाओं का काम है।

इन माताओ के वीर-पुत्रो का भी कुछ वर्णन सुन लीजिये। बारह बरसका बादळ अलाउद्दीनसे लोहा लेनेको चला। माता कहती है—अरे बादळ तू यह क्या कर रहा है? तू तो अभी बालक है। बालक शब्द सुनते ही बादळ क्षुब्ध हो उठता है। इस शब्दको वह अपने लिअे अपमानजनक समझता है। कहता है :

माता, बाळक क्यो कहो? रोइ न माग्यौ ग्रास।
जे खग मारूँ साह-सिर तो कहियौ साबास ॥

माता, मुझे बालक क्यों कहती है? क्या मैने कभी रोकर तुझसे खानेको भी माँगा है? अवस्थामें छोटा होनेसे ही कोई छोटा नही हो जाता—

सिंघ सिंचाणो सापुरुष, अै लहुरा न कहाइ।
वडो जिनावर मारिकै छिनमे लेयँ उठाइ ॥

सिंह, बाज और वीरपुरुष ये कभी छोटे—बालक—नहीं होते। बड़े-से-बड़े जानवरको मार करके क्षण भरमें उसे उठा लेनेकी सामर्थ्य रखते हैं। मुझे तो तुम तभी कहना जब मै बादशाह के सिर पर खड्ग मारूँ।

इन राजस्थानी बीर-बालकोंका प्रतिदिन पढ़नेका मंत्र होता था—"बारह वरसाँ बापरो लहै वैर लंकाळ।"

वीरमाता और वीरपुत्रको हमने देखा। अब वीरपत्नीको देखिये। वीरमाताकी कोखसे जनमी हुई वीर-बालिका उसी वीरतामय आवरणमे पलती है। उसका वीरत्व, उसका त्याग, उसके भाई के वीरत्व और त्यागसे किसी कदर कम नही। विवाहके समय उसका दूल्हा आता है। विवाह-मंडप में भी वह स्वामीके वीरत्वमय रूपको ही देखती है।

ढोल सुणंता मंगळी मूछा भूह चढत।
चॅवरीमें पीछाणियो कॅवरी मरणो कंत ॥
ग्रीव नमाड़े देखणो, करणो सतु सराह।
परणंती घण परखियो ओछी ऊमर नाह ॥
मै परणती परखियो वागा माहि सनाह।
लायो साथ लिखायकर ओछी ऊमर नाह ॥

पतिकी यह 'ओछी ऊमर' उसके लिए दुःखका कारण होनेके स्थान-पर गौरव का विषय होती है, क्योकि वह यह भी देख लेती है कि :

मै परणती परखियो तोरणरी तणियाह।
घर-धण लाबी पहरता पहरै घण जणियाह ॥

स्वामीको युद्धके वीरवेशसे सजाना यह वीरनारी अपना कर्त्तव्य, अपना अधिकार समझती है। प्राणप्रिय पतिको यमराजके सामने भेजते हुए वह कभी विचलित नही होती। वह तो सोल्लास उसे प्रोत्साहित करती है :

पाछा फिर मत झाकज्यो, पग मत दीज्यो टार।
कट भल जाज्यो खेत मे, पर मत आज्यो हार ॥

भाग्ये मत तू, कंथडा, तो भाग्ये मुझ खोड ।
मोरी सँग-सहेलिया ताळी दे मुख मोड ॥

प्राणोपमा प्रियतमाके मधुर अनुरोधका पालन करनेको किसका जी न करेगा? उसकी अवहेलना करनेका साहस किसको हो सकता है? कौन पति सहन कर सकता है कि उसकी प्राणवल्लभा अपनी सहेलियोंमें उसके कारण उपहासका पात्र बने? अैसी वीरपत्नियोका पति यदि हँसते-हँसते आत्मोत्सर्ग कर दे तो इसमें क्या आश्चर्य? पर क्या इससे यह सूचित होता है कि उनके हृदयमें कोमल भाव नामको भी नहीं हैं? कठोर वातावरणमे पलते-पलते क्या उनका जीवन भी इतना कठोर बन गया कि शुष्क कर्त्तव्य-परायणता के सिवा उसमें कुछ रह ही नहीं गया? नहीं, उन हृदयोंमें कोमल भावोंकी धारा भी उतने ही प्रबल वेगसे प्रवहमान है जितनी वे ऊपरसे नीरस प्रतीत होती है। 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' का वे ज्वलत उदाहरण थीं। इसीलिअे तो धधकती हुई चिताओंपर हँसती-हँसती अपने पतियोंके (मृत शरीरोंके) साथ चढ़ जाती थीं।

अेक वीरनारी युद्धमें जाते हुअे पतिसे कहती है :

कंथ, लखीजै उभय कुळ, नाह विरती छाह ।
मुडिया मिळसी गीदवो, मिळै न धणरी बाह ॥

हे पति, अपने और मेरे, दोनो कुलोंकी ओर देखना, सांसारिक सुख तो छायाके समान आता-जाता रहता है, उसके लिअे युद्धसे विमुख होकर दोनों कुलोको कलंकित न करना। यदि अैसा किया तो तुम्हारी इच्छा भी पूर्ण होनेकी नहीं। लौटनेपर अपना सिर तकियेपर रखकर ही सोना, तुम्हारी प्रियतमाकी बाँह सिर रखनेको नहीं मिलेगी, यह निश्चित समझ रखना।

यह वीरपत्नी जिस समय सुन लेती है कि उसका पति युद्धसे विमुख हुआ उसी समयसे अपनेको विधवा समझ लेती है। कायरकी अंकशायिनी होनेकी अपेक्षा चिताकी अंकशायिनी होना वह अधिक पसन्द करती है।

उसे विश्वास है कि जब तक उसका पति जीवित है, तब तक उसकी सेना कभी भाग नही सकती। युद्धमें देवरको अकेला देखकर उसके लिअे आशंकित होनेवाली अपनी जेठानीको वह वीर नारी किस विश्वस्तता के साथ उत्तर देती है :

भाभी देवर अेकलो, सोचीजै न लगार।
मूझ भरोसो नाहरो, फोजा ढाहणहार ॥

हे भाभी, तुम्हारा देवर अकेला है यह जानकर सोच न करो। मुझे अपने पतिका पूरा भरोसा है। उस अकेलेको तुम कम न समझना। वह अकेला ही समस्त सेनाको विध्वस्त करनेके लिअे पर्याप्त है।

पति युद्धमें मारा जाता है। पतिको अपने हाथोसे यमराजको सौपनेवाली वीर नारी उसे अकेला कैसे सौप सकती है? उसके बिना, उसके वियोगमें, अकेली वह कैसे जियेगी? वह अपनेको भी साथ ही सौपती है। न पतिको मृत्यु-मुखमें भेजते समय वह अधीर होती है, न स्वयं उसका सहगमन करते। पति ढोल बजाते हुअे उसे लेने आया था और ढोल बजाती हुई ही वह उसके साथ जाती है।

पर चितारोहणके पूर्व वह अपने पिताको अेक सदेशा कहला देना चाहती है :

पंथी! अेक सँदेसडो बाबलने कहियाह।
जाया थाळ न वज्जिया, टामक टहटहियाह ॥

हे पथिक, मेरे पिताको अेक सदेश कह देना। जन्मके समय तो मेरे लिअे थाली भी नहीं बजायी गयी, पर आज मेरे लिअे बड़े-बड़े नगाड़े बज रहे हैं। आज मैंने तुम्हारे नामको भी समुज्ज्वल बना दिया है।

कन्याको हीन समझकर उसके जन्म-समय थाली न बजानेकी प्रथा पर कितना तीव्र कटाक्ष है!

अैसे गौरवशाली राजस्थानका आज जो महान् अधःपात हुआ है, वह किसके हृदयको दुखी नही कर देगा? अपनी भीषण ललकारसे संसारको

कंपायमान कर देनेवाली वह वीर राजपूत जाति आज घोर विलास और विनाशकारी शराब तथा अफीमके नशेमें सुधबुध खोकर कुत्सित जीवन-यापन कर रही है और मुसकराता हुआ अतीत आज व्यगकी भयानक हँसी हँस रहा है। पर राजपूत-बालाका वह तेज अब भी किसी-न-किसी अंशमें बचा हुआ है। मातृभूमिकी दुर्दशा देखकर अेक आधुनिक राजपूत-रमणी अपने कायर पतिको फटकारती है :

पराधीन भारत हुयो प्यालारी मनवार।
मात्रभूम परतत्र हो, वारवार धिरकार ॥
दुसमण देसा लूटकर ले ज्यावै परदेस।
राजन, चुडल्या पहर लो, धरो जनानो भेस ॥
विस खावो, कै सरण लो सरवरियेरी थाह।
कै कठा विच घाल लो घाघरियारी घाह ॥

धिक्कार है तुम्हें, जो प्यालोके दौरदौरमें मातृभूमिको पराधीन बना दिया। विदेशी प्रतिदिन देशको लूटकर उसका धन सात समुद्र पार ले जा रहे हैं, पर तुम्हारे कानोंपर जूँ भी नहीं रेंगती। शर्म तो नही आती! चुल्लू पर पानीमें डूब क्यों नही मरते? अरे, औरत क्यों न हुअे? अब भी हाथोंमें चूड़ियाँ डाल लो और कमरमें घघरी (लहँगा) पहन लो :

यो सुवाग खारो लगै, जद कायर भरतार।
रडापो लागै भलो, होय सूर सिरदार ॥

इस सुहागसे तो वैधव्य कितना ही अच्छा! अरे, तुम तो सिह पद धारण करनेवाले हो। तीतर, लवा, बटेर, खरगोश, सुअरका शिकार करके फूल जाते हो! क्या यही तुम्हारी राजपूती है :

तीतर लवा बटेर अर सुस्सा सूर शिकार।
इणहा रजपूती नही, नाम सिघ रखणार ॥

अब भी कुछ हया है तो :

वस्त्र कसूमल पहर लो कसो कमर तलवार।
बरछी और कटार ले हुवो तुरग असवार ॥

पाछा फिर मत झाकज्यो पग मत दीज्यो टार।
कट भल जाज्यो खेतमे पर मत आज्यो हार ॥

भीषण पर्देकी कुप्रथासे असहाय बनी हुई इस क्षत्रियबालाको इतनेसे हो सतोष नही होता। वह फिर कहती है :

सीख राजरी होय तो हूँ भी चालू साथ।
दुसमण भी फिर देखले म्हारा दो-दो हाथ ॥

धन्य है तू रास्थानकी वीर नारी ! जो देश अैसी बालाओको जन्म दे सकता है, उसको अपने घोर पतन-कालमे भी निराश होनेकी आवश्यकता नही।

राजस्थानका यह साहित्य जीवनसे अलग नही, किंतु उसके साथ मिला हुआ है। राजस्थानके ये वीर साहित्यकार कलमके ही धनी नही होते थे, तलवारके साथ भी खेलते थे। उनके इस सप्राण साहित्यका चमत्कार इतिहास अनेक बार देख चुका है। अेक उदाहरण देनेका लोभ सवरण नही किया जा सकता। महाराणा प्रताप विपत्तिसे विवश हो अकबरकी अधीनता स्वीकार करनेको तय्यार हो गये। महाराणा राजपूत जातिकी आनकी अंतिम आशा थे। वह टूटना चाहती थी। उस समय अेक वीर कविहृदय, जो परतंत्र होकर भी स्वतन्त्रताका उपासक था, पराधीन होनेपर भी जिसका अंतर पराधीन नही हुआ था, इस अंतिम आशा-तंतुको टूटते देख क्षुब्ध हो गया। बचानेका उसने अेक अंतिम प्रयत्न किया और परिणाम से पाठक अपरिचित नहीं।

राजपूतोकी उस अमर आनका रक्षक कौन था ? महाराणा प्रताप या महाकवि पृथ्वीराज ?

: ३ :

राजस्थानकी भूमि विविधरूपमयी है। पश्चिमी और उत्तर राजस्थानमें मरुभूमि अपने नित्य नये निकेतन बनानेवाले टीबों, सैकड़ो हाथ गहरे कुँओं, ग्रीष्मकालीन प्रचंड आँधियो, शिशिरकालीन भयंकर शीत,

तथा शमी, बेर, करील और फोगकी झाड़ियोरूप बिन्दुओंसे यत्र-तत्र विमंडित मीलों फैली हुई अनन्त बालुका-राशिके साथ भयकर अट्टहास करती रहती है, तो पूर्वी राजस्थानकी भूमि हरेभरे पेड़ पौधोंसे, लहलहाते हुअे खेतोंसे, चद्रिकाके साथ खेलते हुअे जलाशयोंसे दर्शकको मुग्धकर अपने पास आनेके लिए आमंत्रित करती है। दक्षिणी राजस्थान अपने अगम्य और अविच्छिन्न जंगलोसे छाई हुई विकट पर्वतमालाओं अेवं उनकी अनेक भूतकालीन वीर-स्मृतियोंसे हृदयमें अेक मधुर भयका संचार-सा करता है। अब इस राजस्थान भूमिका थोड़ा-सा वर्णन देखिये।

राजस्थानकी वर्णन-शैलीमें निसर्ग और मानव-जीवन दोनोंका मनोरम विवेचन मिलेगा। मारवाड़का वर्णन करते हुअे कविने वहाँकी प्रकृति तथा मानव-सौदर्यका सुंदर चित्र अकित किया है :

जळ ऊँडा, थळ ऊजळा, नारी नवले वेस।
पुरख पटाधर नीपजै, अइ हो मुरधर देस॥
मारू-देस उपन्निया, सर ज्यूं पाधरियाह।
कडवा कदे न बोलही, मीठा बोलणियाह॥
मारू-देस उपन्निया, त्याका दंत सुसेत।
कुंझ-बचा गोरंगिया, खंजर जेहा नेत॥
देस सुरगो, जळ सजळ, न दिया दोस थळाह।
घर-घर चंद-वदन्निया नीर चढै कमळाह॥
लाटा-काठा लीजिये, गेहूं तीखा खाण।
भड़ वाका, तीखी तुरी, अइ हो घर जोधाण॥

अेक तो मारवाड़ी बोली ही मधुर है फिर स्वरमें माधुर्य। कवि मुग्ध हुअे बिना रह ही नहीं सका।

कड़वा कदे न बोल्ही, मीठा बोलणियाह।

मारवाड़ी ललनाओंका सौदर्य प्रसिद्ध है—कवि इस सौंदर्यपर मोहित होकर कहता है :

मारू-कामण धर दखण जे हर देय तो होय।

ढूँढाड़के हरेभरे भू-भागका कविने कितना रोचक वर्णन किया है :

वागा वागा वावडया, फुलवादा चहु फेर।
कोयल करै टहूकडा, अइ हो धर आबेर।
आम ज उमदा नीपजै, गेहूँ अर गुड वाड़।

और भी ढूँढाड़में जानने योग्य क्या बात है :

ऊँचा परवत, सेर वन, कारीगर तरवार।
इतरा वधका नीपजै, रग देस ढूंढाड़।
नर नाहर तो नीपजै, सेखा-धर ढूढाड़॥

कवियोने वातायनसे निकले हुअे चन्द्राननका वड़े चावसे वर्णन किया है :

उदियापुररी कामणी गोखा काढै गात।
मन तो देवारा डिगै, मिनखा कितीक वात॥

कालिदासने भी सुनन्दासे कहलाया है :

प्रासाद-वातायन-संश्रिताना नेत्रोत्सवं पुष्पपुरागनानाम्।

पार्वत्य-सौंदर्य-वर्णन भी देखिये :

टूके-टूके केतकी, झिरणे-झिरणे जाय।
अरबुदकी छबि देखता और न सालै दाय॥
वनसपती पाखर वणी, वणिया टूक विहद्द।
पटा विछूटै नीझरण, आयो मद अरबुद्द॥
गह घूमी, लूमी घटा, वीजा सहिरा वद्द।
वादळ माय विराजियो आजूणो अरबुद्द॥
चपा माणो, गिर चढो, आबा भखो अवल्ल।
अरबुदसूं अलगा रहै, जिणरो कोण हवल्ल॥

आबू-सौंदर्यपर मुग्ध होकर कवि आनन्द-विभोर होकर बोल उठता है :

जमी ओर असमान विच आबू तीजो लोक।

: ४ :

प्रेम-कहाणी कहत हूं, सुणो सखी री ! आय।
पिव ढूंढणको हम गयी, आयीं आप हिराय ॥

कठोर कर्त्तव्य-पथका अनुयायी राजस्थान हृदयके कोमल भावोंसे शून्य नही है। उसके हृदयमे सुकमार-भाव-धारा भी उतने ही वेगसे प्रवहमान है, जितना कि वह ऊपरसे कठोर दिखायी देता है। राजस्थानी साहित्यमें प्रेम संबंधी उक्तियॉ भावुकता, मर्मस्पर्शिता और मनोहारिता-में अन्य किसी भापाके साहित्यसे उतरती हुई नही। प्रेमतत्त्वका निरूपण देखिये—

प्रणयका सच्चा स्वरूप है ममत्वका त्याग। उस संसारमें या तो 'मैं' रह सकता है या 'तू'। वहॉ द्वैतवादका निर्वाह नही हो सकता, अद्वैताकार बनाना पड़ता है—

दोय-दोय गयद न बधसी अेकै कबू ठाण।

साधक साधनाके लिअे 'तत्त्वमसि' या 'सोऽहम्' में से अेक मार्ग अपना सकता है। कबीरने भी अपनी प्रणय-कहानी इसी तरह कही है :

लाली मेरे लालकी जित देखौ तित लाल।
लाली देखन मै गयी, मै भी हो गयी लाल ॥

प्रणय-साधना ही ईश्वर-साधना है। प्रणय और परमेश्वरमें कुछ भी अंतर नहीं। परमेश्वर का दूसरा नाम ही प्रणय है—Love is God and God is Love. इसी साधन-सफलताको ही मोक्ष या कैवल्य कहते हैं, जो सच्चे प्रेमीको सदेह प्राप्त हो जाती है। उस अवस्थामें पहुँचनेपर हृदय और जिह्वाका सम्बन्ध रही नही जाता। वहॉ प्रणयका

"मौनं चैवास्मि गुह्यानाम्" सम्मोहक स्वरूप मिलता है, जिसमें तल्लीन होकर मनुष्य "अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्" का दर्शन करनेपर "मूकास्वादनवत्" उस आनन्दका वर्णन नही कर सकता और उसका अन्तर्प्रदेश ही सृष्टि बन जाता है—

जैसे छहिया फूल की माहोमाह समाय

फिर उस मानससे अेक अपूर्व संगीत फूटता है, जिसमें ब्रह्माण्ड लय हो सकता है—

Music in the valley,
Music in the hill,
Music in the woodland,
Music in the rill,
Music in the mountain,
Music in the air,
Music in the true breast,
Music everywhere,

इस स्वर्ण-सगीतसे अेक नव-आभा फूटती है जहाँ "बारह मास विलास" और "तेजपुज परगास" अनन्त कालतक उद्भासित होते रहते हैं।

यह पावन-लोक पुस्तकावलोकनसे नही मिल सकता :

पोथा तो थोथा भया, पडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेमका, पढै सो पंडित होय॥

प्रणय-स्वरूप जितना आनन्ददायक है उतना ही गहन है। प्रणय करनेका बहाना बहुत-से धूर्तजन भी करते हैं, पर उनसे "आदि-अत निबहै नही।" अनन्य उपासिका गोपियाँ भी अेक बार घबराकर कह उठी थीं—

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।

प्रणय-संसारमें प्रवंचनके लिअे स्थान नही। यहाँ मिट जानेपर भी

शायद ही सफलता मिले। फिर प्रवंचकोंका यहाँ कैसे गुजारा हो सकता है ? उनके लिअे सूचना लगी रहती है :

> Go, go, you nothing love . a Lover ! No,
> The semblence you, and shadow of a Lover

क्षुद्रोका प्रेम प्रारंभमें ही मादक-सा होता है :

> डूगर केरा वाहळा, ओछा-केरा नेह।
> वहता वहै उँतावळा, छिटक दिखावै छेह ॥

आत्म-बलिदान करना सरल है पर प्रणय-तपस्यामें सफल तपस्वी होना कठिन है :

> खड़ग-धार पर काय, चालै तो चलबो सहल।
> मुसकल जगरे माय नेह निभावण, नागजी ॥

सर्वस्व लुटाकर भी वह विभूति नही मिलती, साधक साधनामें जीवन मिटाकर भी वह ज्योति नहीं लख सकता, उसका मूल्य सिरमात्र ही होगा ? प्रणय-मार्ग बड़ा विकट है—प्रणय-स्वरूप भगवान कहते हैं :

> यततामपि, सिद्धाना, कश्चिन्मा वेत्ति तत्त्वतः।

अतः कहना होगा—

> जाणै सोई जाणसी प्रीति-रीतको भेद।

प्रणय-मार्ग सर्वस्वत्याग है। सच्चा प्रेमी परवाह नहीं करेगा कि दूसरी तरफ भी चाह है या नहीं। यदि तुम प्रेमके बदले प्रेम चाहते हो तो वह प्रेम नही स्वार्थ है। आदर्श-प्रेमी पतग पर मर मिटता है, पर कभी परवाह नही करता कि दीपक चाहता है या नहीं :

> हाय दई ! कैसी भयी, अणचाहतको संग।
> दीपककै भावै नही, जळ-जळ मरै पतंग।

पतंग ने जलते-जलते दीपकका स्वरूप पहचान ही लिया—

> पहली तो दीपक जळै, पीछै जळै पतंग।

प्रेमीका सत्य-स्वरूप जानने पर यह कहनेकी आवश्यकता न होगी :

उन्हे भी जोशे उल्फत हो तो लुत्फ उट्ठे मुहब्बत का।
हमी दिन रात अगर तडपे तो फिर इसमे मजा क्या है ?

यह प्रेम नही माया है। प्रेमाग्निमें तपने पर ही कोई सच्चा प्रेमी हो सकता है। बिना तपाये स्वर्ण और प्रेमी दोनों खरे नही हो सकते। यहॉ अेक बार मिट जाना होगा, फिर प्रणय-सोम-रससे नव-जीवन मिलेगा। प्रियतमके रंगमे रॅग जानेके लिअे अपना रंग छोड़ना होगा।

आत्मा और परमात्माका अनन्त मिलन ही रहस्यवाद है तथा मिलन-मार्गकी वेदना हृदयवाद है। हृदयमे ममत्वका भार सौपनेकी अेक आकांक्षा है। जब वह आकांक्षा किंचित् परिवर्द्धित होती है, तो अपना सर्वस्व समर्पण करनेको व्याकुल हो उठती है और वह मिलन-मार्ग खोजने लगती है अेवं अनन्त प्रियवस्तुको प्रेमिका रूपमे या प्रियतम रूपमें पुकार उठती है :

पिव-पिव लागी प्यास।

'प्रसाद' भी अकुलाते-से कहते हैं :

आ मिलो, प्राणधन !

फिर प्रेमीके लिअे प्रियतम ही सर्वस्व बन जाता है। वह उसके बिना रह ही नही सकता। वह उस जीवनको विरहाग्निमें तपाना प्रारंभ करता है। उसके लिअे संसार शून्य हो जाता है—तब कोटी नगरी बसै, म्हांरे भांव उजाड़। विरह-तपस्याका प्रेमी जब सफल तपस्वी हो जाता है, तब प्रणयके दर्शन होते है। बीच-बीचमे प्रणय परीक्षा लेता है कि इतने कष्ट-साध्य कठिन मार्ग पर क्यो चलते हो, पथिक ? याद रखना Love is a blind guide. पर प्रेमी क्या उत्तर देता है कि तमसाकार इस तुम्हारे काले रंग पर दूसरा रंग चढ़ ही नही सकता :

....................जैसो काळो रग।
मैलो हुवै न मॅद मडै, धोयो धुपै न अंग॥

तुम्हारा प्रेमी दूसरी तरफ कैसे देख ले :

'सूरदास' प्रभु कारी कामरी चढत न दूजो रंग।

इसीलिअे पन्तने भी 'माँ' से काला दुकूल माँगना प्रारंभ किया :

माँ! काले रँगका दुकूल नव
मुझको बनवा दो सुन्दर

क्योंकि यह काला रंग, जो जीवन विशुद्ध करनेका साधन है,—

ज्यो ज्यो डूबै स्याम रँग, त्यो त्यो उज्ज्वल होय।

इस परीक्षामें उत्तीर्ण होने पर साधक अन्तर्जगतमे देखते ही मुसकाने लगता है।

जब नयणासूं वीछड़या, तब उर माझ पइठ।

अपूर्णताका स्थान पूर्णताने ले लिया। जीवन अलौकिकानन्दसे मत्त हो उठा :

हूँ बळिहारी सज्जणा, सज्जण मो बळिहार।

फिर सदेश भेजनेका स्मरण आते ही प्रेमी मुसकाता हुआ कहता है :

पाती तहा पठाइये, जो साजन परदेस।
निज मनमे साजन वसै, ताकूं का सदेस॥

अपने प्रियतममें अेकाकार हो जाने पर आदर्श प्रेमी कबीर कहते हैं :

हम सब माहि सकल हम माही, हममे और दूसरा नाहीं,
तीन लोकमे हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा।
खट दरसन कहियत हम भेखा, हमही अतीत रूप नही रेखा,
हमही आप कबीरा कहावा, हमही अपना आप लखावा।

महादेवी वर्मा भी 'मै' और 'तू' को अेकाकार करती हुई कहती हैं :

मै तुमसे हूँ अेक, अेक हैं जैसे रश्मि प्रकाश।

प्रेमी-जन सांसारिकतासे ऊपर अपना अंक नव-लोक बना लिया करते हैं। वहाँ, उस आनन्द-लोकमें प्रियतमके साथ जानेका इरादा कर लेते हैं या विरहावस्थामें प्रियतमका वास ही उस लोकमें होता है। पवित्र प्रणयके लिअे विकारमय संसारसे ऊपर ही कोई आलोकित संसार चाहिअे :

साझ पड़ी दिन आथव्यो, चकवी दीनी रोय।
चल, चकवा, वा देशमे, साझ कदे नहिं होय ॥

जहाँ हम अनन्तकालके लिअे मिल जायँ और सतत प्रणयालोक आलोकित होता रहे। कबीरके शब्दोंमें—

............जहँ बारह मास बिलास।
प्रेम झरै बिगसै कमल, तेज-पुंज-परगास ॥

राजस्थानी साहित्यमें नायिकाका आदर्श कैसा मनोहर और पवित्र-भाव-पूर्ण है :

गति गंगा, मति सरसती, सीता सीळ सुभाय

चालमें (शाब्दिक और लाक्षणिक दोनों अर्थों में) पवित्र गंगाके समान बुद्धिमें वीणापाणि भारतीके समान और शील तथा स्वभावमें सती-शिरोमणि सीताके समान।

स्त्री-सौंदर्यका राजस्थानी आदर्श नीचे लिखे दूहोंमें मिलेगा :

मारू देश उपन्निया सर ज्यूं पाधरियाह
कड़वा कदे न बोलही मीठी बोलणियाह
मारू-देस उपन्निया त्याका दत सुसेत
कूंझ-बचा गोरगिया, खंजर जेहा नेत
उर चवडी, कड पातळी, झीणी पासळियाह
थळ भूरा, वन झखरा, नहीं स चापो जाय
गुणे सुगंधी मारवी महकी सब वणराय

मारवाड़की स्त्रियाँ तीरकी तरह सीधी (ऊँचे कदकी) होती हैं, सदा

मीठी बोलनेवाली होती हैं, उनके दाँत मोतीकी तरह शुभ्र होते हैं, शरीर क्रौंच-शावकके समान सुकुमार और गौरवर्ण होता है, नेत्र खंजनकी तरह विशाल और चंचल होते हैं, छाती चौड़ी होती है, कमर पतली होती है और पँसुलियाँ सुकुमार होती हैं। उनकी सौंदर्य-सुरभिसे शुष्क मरुभूमि भी सोल्लास सुरभित हो उठती है।

इस काव्य-वाटिकामें थोड़ा और विहार कीजिये। यहाँ आपको प्रणय-का सत्य स्वरूप दृष्टिगोचर होगा—नायिकाओंका नग्न रूप देखनेको नही मिलेगा। जीवनमय वह काव्यधारा मिलेगी कि जीवन-ज्योति जाग्रत हो उठेगी।

प्रियतमके प्रेममे मग्न अेक नायिका कहती है—

साजन-साजन हूँ करूँ, साजन जीव-जडी।
साजन फूल गुलाबरो निरखूं घडी-घडी ॥

वह तो समस्त लोकको साजनमय ही देखना चाहती है-

साजन-साजन हूँ करूँ साजन जीव-जडी।
सजन लिखा लूं चूडले वाचूं घडी-घडी ॥
साजन, तुम मुख जोय जग सारो ही जोइयो।
अैसो मिल्यो न कोय ज्या देख्या तुम वीसरूँ ॥

जब तुम्हारा सौन्दर्य मानसमें विकसित है तब दूसरी वस्तुकी तरफ हृदय कैसे आकर्षित हो सकता है। यहाँ प्रेमी परमेश्वरके रूपमें देखा गया है। प्रेमीको जब प्रणयका मोहक सत्य-स्वरूप मिल सकता है तब सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तन विनु लिखा चितेरे—इस आरा-धनाकी कोई आवश्यकता नही होती। कविवर टेनिसनने कहा है—

Where God in man is one with man in God.

प्रेमीकी कसौटी

साजन अैसा कीजिये, जामे लखण बतीस।
भीड़ पड्या विरचै नही, सीस करै बगसीस ॥

साजन अैसा कीजिये, जैसा रेसम रंग।
सिर सूळी धड़ कागरे, तोई न छूटै सग॥

यहाँ "सीस उतारै भुई धरै" इतनेसे ही प्रणय-संसारमें पैठनेकी इजाजत नहीं मिलती, लेकिन "सिर सूळी धड़ कॉगरे" रहनेपर भी प्रियतमका संग न छोड़नेपर प्रवेश-आज्ञा मिलती है। जीवनको अैसा मिटाना होगा कि न जीवनका अस्तित्व रहे और न मृत्युका। इस भावनाका आत्मसमर्पण ही अमरत्व है। फिर सत्यमार्ग जीवनके सामने चमक उठेगा।

प्रियतमके मिलनमें सांसारिक बाधाअें बाधक नहीं हो सकती:

जळहर वसै कमोदणी, चदो वसै अकास।
जो ज्याहीके मन वसै, सो त्याहीके पास॥

जिसके हृदयासन पर जिसने स्थान पा लिया है, वह फिर अलग कैसे हो सकता है। कबीरने भी कहा है—

कबीर गुरु बसै बनारसी, सिष समंदा तीर।

प्रेमिका प्रियतमसे सदा मिली रहना चाहती है। उसे किसी भी ऋतु-में विरह पसन्द नहीं। इसीलिअे वह तीनों ही ऋतुओंमे दोष दिखाकर उनको चलनेके अयोग्य वतलाती है:

सीयाळै तो सी पडै, ऊनाळै लू वाय।
वरसाळै भुंय चीकणी, चालण रुत्त न काय॥

प्रियतमके चलनेके समय उसे रोकनेके लिअे पागड़ेसे झूमती हुई नायिकाका चित्र कितना स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी है:

सायधण हल्लण साभळै ऊभी आगण छेह।
काजळ जळ भेळा करी नाखीनाख भरेह॥
ढोलो हल्लाणो करै धण हल्लवा न देय।
झबझब झूंबै पागडे डबडब नयण भरेय॥

विरहाश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंके दो-चार मनोहर चित्र और लीजिये:

सजण सिधाया, हे सखी, ऊभी आगण दीच ।
नैणा चाल्या चोसरा, काजळ माच्यो कीच ॥

बिहारी कहते हैं—नाहक मन बँध जाय। पर केवल मनही बंधनमें नहीं आता, नयनोंके लिअे भी घोर संकट आ जाता है—जिह्वा बंद हो जाती है।

वैणा हुयो न बोलणो, नैणा चाली धार ।
सजण सिधाया हे सखी, पाछा फिर मत झाख ।
जोय जोय ऊठी जावता, रोय-रोय फूटी आख ॥
सजन सिधाया, हे सखी, झीणी ऊडै खेह ।
हियडो वादळ छाइयो नयण टबूकै मेह ॥
साजणिया ववलाइकै गोखे चढी लहक्क ।
भरिया नैण कटोर ज्यूं मूंधा हुई डहक्क ॥
ऊभी थी रायंगणे सायब साभरियाह ।
च्यारुंइ पल्ला चूनडी आसू जळ भरियाह ॥

नयनोंकी घोर-साधनाका कविने क्या ही कारुणिक चित्र खींचा है। कबीरने भी इनकी साधनाके फल-स्वरूप इनको वैरागी की उपाधि दी है—

विरह कमडळ कर लिये, वैरागी दो नैण ।

प्रियतमके जानेपर हृदय तो उनके साथ चला गया, पर नेत्रोंको बड़ी मुश्किलसे रखा है—

साल्ह चलता हे सखी, गोखै चढ मै दीठ ।
हियडो वाहीसूं गयो, नैण वहोडया नीठ ॥

मनके चले जानेपर वहीं पहुचनेको नेत्र भी वैराग्य धारण कर लेते हैं। प्रणय-संसारमें ऑख और मनका ही तो शासन है। मानस-समर्पण बिना तो उधर झांकना भी कठिन है।

प्रियके प्रवासमें रहनेपर विरहिणीको उसकी स्मृति करानेवाले प्राणी अच्छे नही लगते :

बाबहिया ! तूं चोर, थारी चाच कटावसू ।
रात सखी ! इण तालमे काइज कुरळी पंखि ।
वा सर, हूँ घर आपणै, बेहुं न मेळी अखि ॥

पक्षी तालपर करुणामय रोना रोता हुआ जागता रहा और मैं पीड़ित मानस लेकर अपने घरमे सच्चे प्रेमीके लिअे प्रियतम-प्राप्ति बिना आनन्द मोह है । संसार जब आनन्द-विहारमे बिचरता है, तब सन्त साधना करते हैं :

सब जग सोवै नीद भरि, सत न आवै नीद ।

संसार जब आनन्द करता है, तब विरही-मानस तपस्या करता है ।

सावण आयो, सायबा, हरिया हरिया वन्न ।
हरियो हुयो न अेकलो, प्यारी घरणो मन्न ॥
नाळा नदियासू मिलै, नदिया सरवर जाय ।
विरछासूं वेला मिलै, अैसी सही न जाय ॥

The fountain mingles with the river
And the river with the ocean,
The winds of Heaven mix for ever
With a sweet devotion,
Nothing in the world is single,
All things by law divine
In one spirit meet and mingle,
Why not I, with thine ?

अेक ही शक्ति प्रणयमे सब मिलते हैं और दूसरोको मिलाते हुअे देखकर विरहीके हृदयमे पीड़ा उठती है कि प्रेमस्वरूप प्रियतमसे मै ही क्यों नही मिलता । शेलीने व्यापक रूपमे जो वस्तु रखी है, वह दूहेमें सक्षेपमें

कही गई है। अन्तिम कथन Why not I with thine की अपेक्षा "अैसी सही न जाय" मे ज्यादा उक्ति-वैचित्र्य तथा कसक है :

सावण आयो सायवा, सब वन पागरियाह ।
आव, विदेसी पावणा, अै दिन दूभरियाह ॥

प्रियतमकी प्रतीक्षा करती हुई नायिकाका कैसा मूर्तिमान चित्र खींचा गया है :

दिस चाहती सज्जणा नेहाळती मग्ग।
साधण कुझ-बचाह ज्यू लाबा हूया पग्ग ॥
दिस चाहंदी सज्जणा नेहालंदी मुध।
साधण कुंझ-बचाह ज्यू लाबी थई तु कध ॥

देखनेके लिअे बारबार उझकती हुई नायिकाकी गर्दन और पैर क्रौच-शावकोंकी गर्दन और पैरोकी भाँति लबे हो गये।

अन्तमें प्रियतमके न आनेसे विरहिणी क्रौच पक्षीसे पाँख माँगती है :

कुजा, द्यो नै पाखडी, थाको विनो वहेस ।
सायर लंबी पिव मिळ, पिव मिलि पाछी देस ॥

उनके पाँख न देने पर उनसे सन्देश पहुँचानेके लिअे आग्रह करती है।

उत्तर दिसि उपराठिहा दख्खण सामहियार ।
कुरझा, अेक सदेसडो, ढोलाने कहियाह ॥

यह स्थल मेघदूतसे किसी तरह कम रोचक नही है। विरहिणी और क्रौंच वार्तालापका-सा रोचक और करुण स्थल अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। हम अपने पाठकोसे उसे मूलमें पढ़नेकी प्रार्थना करेंगे।

जब किसीकी प्रतीक्षा होती है, तो प्रायः कौवेको उड़ाया जाता है। यह प्रथा प्रायः समस्त भारतमें प्रचलित है। साहित्यमें भी स्थान-स्थान-पर इसका वर्णन हुआ है। अेक नायिका अपने प्रियतमकी प्रतीक्षामें कौवे-को उड़ा रही थी। इतनेमें ही अचानक उसका पति आ गया। उस समय

नायिकाको जो हर्ष हुआ, उसका कैसा मूर्त्तिमान चित्र कविने खींचा है :

> काग उडावण धण खडी, आयो पीव भड़क्क ।
> आधी चूडी काग-गळ, आधी गई तड़क्क ॥[१]

प्रियतम के विरहमें नायिका इतनी दुबली हो गई कि जब उसने कौवेको उड़ानेके लिअे हाथ फेका तो हाथकी चूड़ियाँ उछलकर कौवेके गलेमे जा गिरी। पर ज्योंही उसने प्रियतमका आगमन देखा त्योंही हर्षके मारे उसका दुबलापन काफूर हो गया, वह अेकदम इतनी मोटी हो गई कि जो चूडियाँ अभी निकली नही थी वे तड़ककर टूट गई और नीचे गिर पड़ी। हेमचन्द्रके 'अध्धा वलया महिहि गय' के भाव की मनोहारिता 'आधी चूड़ी काग-गळ' के रूपमें कितनी बढ़ गयी है!

प्रियके आगमनसे सजात हर्ष और उल्लासका कैसा रोचक और जीता-जागता चित्र उपस्थित किया गया है :

> साजन आया, हे सखी ! हुँता मूझ हियाह ।
> सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह ॥
> साजन आया, हे सखी ! ज्याकी हूँती चाय ।
> हियड़ो हेमागर भयो, तन-पजरे न माय ॥
> आजे रळी-वधावणा, आजे नवला नेह ।
> सखी ! अम्हीणी गोठमे दूधा वूठा मेह ॥

नायिका का हृदय आनन्द में विभोर होकर नाच रहा है। यही नहीं वह सारे घरको, समस्त वातावरणको, विश्वके प्रत्येक पदार्थको, समस्त विश्वको, उसी आनन्दमें नाचता हुआ देख रही है :

> साजन आया, हे सखी, ज्याकी जोती वाट ।
> थाभा नाचै, घर हँसै, खेलण लागी खाट ॥

बहुत दिनोंके बाद प्रेमातिथि आया है। उसे कुछ भेंट देनी चाहिअे। पर भेंटका पदार्थ होना चाहिअे कोई अपूर्व वस्तु। और इससे बढ़कर अपूर्व भेंट भला क्या होगी :

साजन आया हे सखी, काई भेट कराह ।
गज-मोतियनको थाळ ले ऊपर नैण धराह ॥

दम्पतिके मिलनका वर्णन स्पष्ट होता हुआ भी कितना पवित्रता-पूर्ण और अश्लीलतासे दूर है :

आसा लूध उतारियउ धण कचुवो गळाह ।
घूमै पडि़या हसड़ा भूला मानसराह ॥
कंठ विलग्गी मारवी करि कंचूवौ दूर ।
चकवी मन आणँद भयो किरण पसार्‍या सूर ॥
मन मिलिया, तन गड्डुया, दोहग दूर गयाह ।
सज्जन पाणी-खीर ज्यूं खिल्लोखिल्ल थयाह ॥

खुले हुअे कुचों के लिअे मानसरोवर भूले हुअे हंसोंकी उपमा कितनी भावपूर्ण ओर मधुरिमामय तथा साथ ही पवित्रता-व्यंजक है ।

दम्पतिके मधुर विनोदको जरा देखिये । नायिका कहती है :

म्हेने ढोलो झूबियो लूंगे-लक्कड़ियेह
म्हाने प्रिउजी मारिया चंपारे कळियेह
म्हाने प्रिउजी मारिया म्हानू आवी रीस
चोवा-केरी कूपळी ढोळी सायब-सीस

प्रियतम मुझे लोंगकी लकड़ियों (जरा लकड़ी शब्द पर गोर फरमाइये) लेकर झूम गया। उन्होंने मुझे चम्पाकी कलियोंसे मारा । जब उन्होंने मारा तो हमे भी रोप आ गया और हमने चोवेका पात्र लेकर उनपर उंड़ेल दिया ।

राजस्थानकी सर्वश्रेष्ठ ऋतु वर्षा ऋतु है—जे भर वूठो भादवो मारू देस अमूल । यदि गहरी वर्षा हो जाय तो फिर मरुदेशका क्या कहना ! राजस्थानीका वर्षा-सम्बन्धी काव्य बड़ा ही सरस और हृदयहारी है । विविध प्राकृतिक दृश्यो, लोगोंकी उमंगो, प्रेमियोंके नाना मनोभावों आदिके चित्र बड़े ही मनोमुग्धकारी और सजीव हैं । कुछ चित्र लीजिये—
घटा और बिजलीका चमकना—

आई घटा उतरादरी भॅज सो कोसा वीच
सहरो सहरो सचरी बादोवाद खिवत

प्राकृतिक दृश्य—

लूमा झड, नदिया लहर, बग-पंगत भर बाथ
मोरा सोर ममोलिया, सावण लायो साथ

पशु और मानव सृष्टिकी उमगें—

हरणी-मन हरियाळिया, उर हाळिया उमंग
तीज परब, रॅग त्यारिया; सावण लायो संग
बाजरिया हरियाळिया, बिच-विच वेला फूल
जे भर वूठो भादवो मारू देस अमूल
धर नीळी, धण पुंडरी, घर गहगहइ गमार
मारू देस सुहावणो, सावण साझी वार

इसी वर्षाऋतुमें अत्यन्त लोकप्रिय तीजोंका त्यौहार पड़ता है, जो राजस्थानका जातीय त्यौहार है। राजस्थानी स्त्रीको यह त्यौहार बहुत प्यारा है, क्योंकि उसे विश्वास होता है कि इस अवसरपर तो उसका प्रियतम अवश्य ही उसके पास रहेगा—यदि वह प्रवासी है तो अवश्य आ पहुँचेगा। पतिको बिदा करते समय पत्नी अवश्य ही कहेगी :

कंथा, मती चुकावज्यो, तीजा-तणो तिव्हार।

विरहिणी संदेश भेजती है :

जे तूं प्रीतम ! नावियो काजळियारी तीज
चमक मरेसी मारवी देख खिवंती वीज

संयोगिनी पतिसे कहती है :

धन धोरा, जोरा घटा, लोरा वरसत लाय
वीज न मावै वादळा, रसिया ! तीज रमाव

मोर शिखर ऊँचा मिलै, नाचै हुवा निहाल
पिक ठहकै, झरणा पडै, हरियै डूंगर हाल

टीबोंवाले खेत धन (अनाज) से भर गये हैं, घटा जोरोंसे उमड़ आई है और लोर ला-लाकर बरस रही है, बादलोंमें बिजली नही समाती, मोर शिखरोंपर निहाल बने हुअे नाच रहे हैं, पिक टहूक रही है, झरने शब्दायमान होते हुअे प्रचंड वेगसे गिर रहे हैं। अैसे समयमें, हे रसिक, हरी पहाड़ी पर चलो और मुझे तीजे रमाओ।

राजस्थानी जीवनने प्राकृतिक सौंदर्यसे मुख नही मोड़ लिया है।

(५)

कुसुमोंके सौन्दर्यमय जीवनमें मुस्कानका जो स्थान है, वही स्थान हमारे जीवनमें हास्यका है। प्रकृतिके कण-कणमें हास्य बिखरा पड़ा है—उपा अपनी आकर्पक मोहिनी शक्तिके साथ मुसकाती है, सरिताअें सतत मन्द-हासके साथ जीवन-पथ पर चलती हैं, और पिकके मस्तानी अदा-के साथ कूक उठने पर निसर्गका कण-कण मौन हासमे व्यङ्गाभा घोलकर निखर पड़ता है। हास्य-हीन जीवन शून्य है। हास्य शृंगारका प्रबल पोपक है।

हमारे पुराने नाटककारोंने हास्यका प्रशंसनीय सम्मान किया है, उनके नाटकोंमें विदूपकका अेक विशेप स्थान है। धीरे-धीरे हमारे साहित्य-से हास्यका वह रूप उठ गया। हिंदीके पुरातन और नवीन कवियोंने हास्यरसमयी कविताअें कम ही लिखी हैं और जो लिखी हैं उनको घटनात्मक स्वरूप दे दिया है, जिससे इस रसका निसर्गसे सम्बन्ध उठ-सा गया। हास्य का घटनात्मक-विकास अश्लाघ्य नहीं है, पर निसर्गसे काव्य-जीवनमें भिन्नता लाना भी श्लाघ्य कार्य नहीं है।

धीर वीर गंभीर होनेपर भी राजस्थान हास्यसे अछूता नहीं। यहाँ-के हास्य-रसमें निसर्ग और मानव-जीवनका अपूर्व संमिश्रण मिलेगा—

बाळूं बाबा ! देसडो पाणी ज्या कूवाह।
आधी रात कुहक्कड़ा, ज्यूं माणस मूवाह॥

बाळूं बाबा ! देसडो पाणी-सदी तात ।
पाणी-केरै कारणे प्रिय छडै अधरात ॥
बाबा ! मत देइ मारुवा, वर कूंवारि रहेस ।
हाथ कचोळो, सिर घड़ो, सीचती य मरेस ॥

जहाँ पानी गहरे कुवों में मिलता है और पानी निकालनेके लिअे आधीरातसे मरसिया गाया जाने लगता है तथा प्रियतम पानीके लिअे अर्धरात्रिमें छोड़कर चला जाता है असी जगह ब्याही जाने की अपेक्षा लड़की कुमारी ही रहना चाहती है। वहाँ तो बेचारीको सारी उम्र ही सिर पर पानी ढोते-ढोते बितानी पड़ेगी। मारवाड़की पनिहारियोंके 'पणिहारी' गीतका रसास्वादन करनेवाले महाशयोने इन पनिहारियोके हृदयकी बातको समझने का भी कभी कष्ट उठाया है ! आगे वह मारवाड़की थोड़ी तारीफ और करती है :

जिण भुय पन्नग पीवणा, केर-कँटाळा रूँख ।
आके-फोगे छाहड़ी, हूँछा भाजै भूख ॥

ढूँढाड़ कुछ विशेष हरा-भरा देश है, अतः वहाँ होनेवाले मेवोंके नाम सुन लीजिये और स्त्री-पुरुषोका सौंदर्य भी देख लीजिये :

गाजर मेवो कास खड, पुरख ज पून-उघाड ।
ऊँधा ओझर अस्तरी, अइ हो ! धर ढूढाड़ ॥

मारवाड़की रेल प्रसिद्ध है। महात्मा गाँधी तक उसकी खूबियो (?) का वर्णन कर चुके हैं। उसी पर अेक नवीन कविजी कहते हैं :

नही तार, नहि टैम है, नही वतीमे तेल ।
आ चालै मनरै मतै मारवाड़री रेल ॥

न तो तारका पता है न टाइमका ख्याल। और तो और, बत्तीमें तेल भी नहीं ! फिर चाल ! उसकी तो बात ही मत पूछिये ! मौज आ गयी तो नौ दिनमें अढ़ाई कोस तो अवश्य ही चल लेती है ! भला रेल भी तो

मारवाड़की ठहरी, जहाँ रेल क्या, सभी कामों की प्रगति इसी द्रुत गतिके साथ होती है। बड़े बाबा कही गये हैं—मारबाड़ मनसूबै डूबी।

क्या आपको मालूम है कि अकाल का निवासस्थान कहाँ है? अजी, यों तो इतने बड़े देशमें कहीं-न-कही उसके दर्शन हो ही जाते हैं, पर आइये हम आपको उसका निश्चित पता बतलावें :

पग पूगळ, धड कोटडै, बाहू बायडमेर।
फिरतो घिरतो, बीकपूर, ठावो जेसळमेर ॥

उसके पैरोंसे पूगल पवित्र होता है, कोटड़ा धड़को सम्हालता है, और भुजाअें बाड़मेर तक पहुँच जाती हैं। सैर-सपाटा करनेके लिअे अकसर बीकानेर पर आपकी कृपा-दृष्टि हो जाती है, पर जेसळमेरमें तो आप निश्चितरूपसे बारहकी जगह तेरहों महीने विराजमान रहते हैं।

जनरल सर प्रतापसिंहका नाम आपने सुना ही होगा। आप ब्रिटिश साम्राज्यके अेक महान सिंह थे। पर कवियोंने उन्हें भी न छोड़ा।

महाराज डाढ़ी-मूछ मुँड़ाये रखते थे और टोप लगाते थे। अेक दिन उनको देखकर कवि महोदय कही उठे :

दाडी-मूंछ मुंड़ाय कै सिर पर धरियो टोप।
प्रतापसी तखतेसरा! थारै बाकी घटै लँगोट ॥

डाढ़ी और मोंछें मुड़ा ही ली हैं, टोपी भी धारण कर ली है, अब कमी केवल अेक लंगोटकी है। वह भी धारण कर ली जाय तो फिर दंडी स्वामिन् बननेमें क्या कसर रही!

सखियोंकी अेक मंडली जुटी थी। स्त्रियोंके पास और विषय ही क्या? अपने-अपने पतियोंके विषयमें बातचीत होने लगी। अेकने कहा :

मैं परखांती परखियो, नाह भरै वळ नाड़।
पडै न रण मे अेकलो, पड़सी केता पाड ॥

दूसरी बोली :

मै परणंती परखियो, मूछा भिडियो मोड़ ।
जासी स्वर्ग न अेकलो, जासी दळ सजोड ॥

तीसरीने तारीफ की :

मै परणती परखियो, तोरणरी तणियाह ।
घर-धण लाबी पहरता पहरै घण जणियाह ॥

अब चौथीकी बारी आयी । चुप कैसे रहती ? बोली :

मै परणंती परखियो, लाबो घणो लड़ाक ।
आलेडारी भीत ज्यू, पड़ै दड़ाक दडाक ॥

[मैंने विवाहके समय पतिको देखा कि वह बहुत ही लम्बा-लड़ाक (लम्बे मनुष्यके लिये हास्यपूर्ण शब्द) है और गीली भीतकी भाँति तड़-तड़ करता हुआ गिरता है ।]

अब राजस्थानकी जातियोका वर्णन भी थोड़ा सुन लीजिये :

अग्गमबुद्धी वाणियो, पिच्छमबुद्धी जाट ।
तुर्तबुद्धी तुरकडो, बामण सप्पमपाट ॥

बनिया पहले सोचकर काम करता है, जाटको अक्किल बादमें आती है, वह काम करके सोचता है, मुसलमानकी बुद्धि मौके पर काम देती है, और ब्राह्मण ? उनको तो क्या आगे और क्या पीछे, बुद्धि कभी होती ही नही---वे तो बुद्धिके नाम सफंसफा होते हैं ।

आधुनिक राजपूत सरदारोंकी गिरो हुई दशा देखकर कवि आवेशमें आता है :

वै घोड़ा, वै गाम, रिजक वही, राजा वही ।
राजपूतारो राम नीसरग्यो क्यूं, नोपला ! ॥
ठाकर गेया, ठग रह्या, रह्या मुलकरा चोर ।
वै ठकराण्या मर गयी, ठाकर जिणती ओर ॥

घोड़े वह, गाँव वही, जागीर-पट्टा आमदनी सब कुछ वही, राज्य भी वही; पर फिर भी राजपूतोंका 'राम' न जाने क्यों निकल गया ? सच्चे ठाकुर तो सब चले गये, अेक भी बाकी नही रह गया, बाकी रह गये ठग और मुल्क-भरके चोर, जिन्होने प्रजाको लूटने-खोसनेका ही धंधा बना रक्खा है। जो ठकुरानियाँ सच्चे ठाकुरोंको जन्म देती थी वे अब पृथ्वी-तल पर नहीं रह गयी।

जब अैसे सरदार रह गये हैं, तो फिर युद्धके लिअे प्रेरित करनेवाली वाणीके धनी कविराजोंकी क्या आवश्यकता ? इसलिअे हमारे कविजी उन कविराजोको सलाह देते हैं :

कविराजा ! खेती करो, हळसूं राखो हेत।
गीत जमीमे गाड दो, ऊपर राळो रेत॥

हे कविराजजी ! अब कविता करनेकी आवश्यकता नहीं। यदि पेट भरना है तो हलसे प्रेम करो और खेती करना शुरू कर दो। अपनी कविताको जमीनमे खूब गहरी गाड़ दो और ऊपर तक अच्छी तरहसे रेत चुन दो, ताकि वकौल पातसाह औरंगजेब, वह कभी बाहर न आने पावे।

अब शाहजीसे भी जै-गोपाल कर लीजिये :

जळ नदियाँ मिळिया जिके, मिळिया समँद मँझार।
वित कर चढिया वाणिया पूगा समँदा पार॥

जो जल नदीमें मिल गये वे फिर गहरे समुद्रमें ही जाकर ठहरे और जो धन बनियोके हाथ पड़ गये वे तो समुद्रके भी उस पार जा पहुँचे। वह जल समुद्रमें फिर हाथ आ सकता है पर इसकी संभावना नहीं कि शाहजीके पास गया हुआ धन फिर कभी वापिस मिल जायगा।

दरसावै जगनै दया, पाप उठावै पोट।
हितमे, चितमें, हातमें, खतमे, मतमे खोट॥

ऊपरसे जगतको बड़ी दया दिखलाते हैं—तिलक लगाते हैं, धर्म-

शालाएँ और मन्दिर बनवाते हैं, कुवे खुदवाते हैं—पर पापोंकी बड़ी भारी गॉठ लादनेसे नही चूकते। उनके प्रेममे, चित्तमें, कागजोमें, विचारोंमें, कोई अेक-दोमें हो तो गिनाया भी जाय यहॉ तो सभी बातोंमें, कपट-ही-कपट भरा रहता है।

औरोंकी तो औकात ही कितनी, यमराज भी इनसे पार न पा सके। बिचारेको अपनी गद्दी छोड़कर भागना पड़ा। कविजी ऑखो-देखी कहते हैं :

दी सुरही हाजर हुई, विनय सुणावै वात।
गादी-हूँत भजावियो जमराजा इण जात ॥*

लगे हाथों महन्तजीके दर्शनोका सौभाग्य भी प्राप्त कर लीजिये। कहीं दर्शनसे ही भवसागरसे मुक्ति हो जाय!

चेला लावै मॉगकर, बैठा खावै मथ।
राम-भजन तो नॉव है, पेट भरणरो पथ ॥

चेले मॉगकर लाते हैं, महंतजी बैठे-बैठे मौज उड़ाते हैं। काम करना नहीं पड़ता, आसानीसे पेट भर जाता है—तर माल चाबनेको मिलते हैं। वैकुंठका सुख इससे बढ़कर क्या होगा? बाबाजीको तो इसी जन्ममें मुक्ति प्राप्त है—जीवन्मुक्त भला और कैसे होते होगे?

मूँड मुँडायॉ तीन गुण,—मिटी टाटकी खाज।
बाबा बाज्या जगतमे, मिल्या पेट भर नाज ॥

मूँड़ मुँड़ानेसे 'हरि चाहे न मिलें' पर यही तीन लाभ क्या थोड़े हैं? सिर पर बाल नही रहे—टाटकी खुजली मिट गयी। दूसरे, सारा जगत बाबाजी-बाबाजी कहने लगा† (यों कोई टके सेर तो दूर, टके मनको भी

---

*कहानी टिप्पणीमें देखिये।

† पाठक ध्यान रखें कि बाबाजी केशवदासकी तरह चंदबदनियो और मृगलोचनियो द्वारा 'बाबा' कहे जानेसे अप्रसन्न होनेवाले व्यक्ति नही, वे तो इसे अपना महान सौभाग्य समझते है।

न पूछता) और तीसरे बिना परिश्रमके बैठे-बिठाये पेट भर अनाज मिल जाता है। फिर हरिसे मिलकर क्या घास छीलते!

जहाँ राजस्थानी जीवन स्वातंत्र्य-मय है, वहाँ उसके कविलोग भी उद्दंड और स्वतंत्र प्रकृतिके पाये जाते हैं। सच्ची बातको स्पष्ट मुँहपर कह देनेमें वे कभी नही हिचकते।

किसी समय जयपुरनरेश सवाई जयसिंहजी और जोधपुर-नरेश अभयसिहजी साथ-साथ बैठे हुअे थे। अेक कविराज भी वहाँ बैठे थे। फरमायश हुई कि कविराज जी दोनों नरेशोंके विषयमे कुछ सुनावे। पहले तो कविराजजीने टालना चाहा, पर जब बहुत आग्रह किया गया तो बोले :

पत-जैपुर, जोधाण-पत, दोनूं थाप-उथाप।
कूरम मार्‌यो डीकरो, कमधज मार्‌यो बाप॥

जयपुर-पति और जोधपुर-पति दोनो ही अेकसे अेक बढ़कर हैं। कछवाहे (जयपुर-नरेश) ने बेटेको मारा तो कबंधज (जोधपुर-नरेश) ने भाईके द्वारा बापपर हाथ साफ किया।

उक्त पितृहंता वखतसिहजी अेकबार अपने घोड़ेको बापा-बापा कहकर बिड़दा रहे थे। अेक चारण वहीपर खड़ा था। उससे नहीं रहा गया। बोल पड़ा :

बापो मत कह वखतसी! कापत है केकाण।
अेकण बापो फिर कह्या तुरग तजैलो प्राण॥

हे वखतसिंह, घोड़ेको बापा करकर मत पुकार, यदि अेक बार और बापा कह दिया तो बेचारा प्राणोसे हाथ धो बैठेगा।

वीकानेर-नरेश दलपतसिंहजीको बादशाहने कैद कर लिया। पर वीकानेरके सरदारोंने उन्हें छुड़ाने तकका प्रयत्न नही किया। जला हुआ चारण उन्हें किस तरह फटकारता है :

फिट वीदा, फिट काधळाँ, जंगळधर लेडाह।
दळपत हुड ज्यूं पकड़ियो, भाज गयी मेडाह॥

जोधपुर-महाराज विजयसिहजीकी मराठोंके साथ लड़ाई हुई, जिसमें महेसदास बड़ी वीरताके साथ काम आया। उसीकी वीरतासे महाराजकी विजय हुई। पर उसकी कदर न करके जगरामसिह नामक अेक दूसरे सरदारको जो युद्धसे भाग आया था, महाराजने आसोपका पट्टा देनेका विचार किया। कोई चारण भी वहीं खड़ा था। तुरन्त बोल उठा :

मरज्यो मती महेस ज्यूं राड विचै पग रोप।
झगड़ामे भागो जगो, उण पायी आसोप॥

कविके कथनका यह प्रभाव हुआ कि महाराजने अपना विचार बदल दिया।

अेक ताजा उदाहरण लीजिये। मेवाड़के महाराणा सज्जनसिहजीको सरकारकी ओरसे G C S I. की उपाधि मिली। बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। अेक कविराज मन मलीन किये अेक ओर चुपचाप बैठे थे। पूछा गया—कविराजाजी! मन मारे कैसे बैठे हैं, कुछ सुनाइये, आज तो आनन्दका दिन है। आग्रह किये जानेपर चारण बोला :

आगै-आगै वाजता हिंद-हद्दरा सूर।
अब देखो मेवाडपत तारा हुया हजूर॥

कहाँ हिन्दुआ-सूरज और कहाँ हिन्दके सितारे! पतनकी भी कोई सीमा है!

भक्ति-काव्यमें भी वही स्वातंत्र्य-प्रियता दृग्गोचर होती है। भक्तोंके उपालंभ कैसे वीरोचित हैं :

आयो महिमा आण त्हारी रघुकुलका तिलक!।
पोत भयो पाखाण दीखै दसरथराव-उत!॥
तुंबी ही तारण समथ जळ ऊपर पाखाण।
ताहि तारियै जगतरण! तइ केहा वाखाण!॥

अेक वीर-जातिका हृदय अपने महापुरुषको विनयोपालंभ भी शक्तिकी ही तरफ इशारा करके देगा कि आपकी सामर्थ्यसे पाषाण नाव बनके तैर गये पर यह जीवन-नैया न जाने आपके पास आकर क्यों पाषाण बन गयी। आखिर उद्धत हृदय शक्ति-परीक्षा लेनेको तैयार हो ही तो गया कि पाषाण तैराकर कौन-सा महत्त्वपूर्ण कार्य कर डाला ? मुझे तारोगे तो समर्थ समझूँगा।

अेक दूसरे भक्तका उपालंभ लीजिये :

पहली केस खिचाविया, पछै वधायो चीर ॥
आयो लाज गमायकर, आखर जात अहीर ॥

जब कभी तू आया है लाज गँवानेके बाद ही आया है। आखिर तो जातिका अहीर ही ठहरा न ! जाति-स्वभाव भी कही छूटता है—चाहे कोई कितना ही ऊँचा क्यों न चढ़ जाय।

: ६ :

संसारका व्यावहारिक ज्ञान नीतिशास्त्रका जन्मदाता है। वे अनुभव 'सौ सयाने अेकमत' के अनुसार समान-भाववाले भी हैं और असमान भाववाले भी। किसीने नम्रता को प्रशंसनीय बतलाया है तो किसीने अैठको, और कही-कही तो अेक ही व्यक्तिने दो विरोधी बातें कह दी हैं। नीति-काव्योंका यह अनोखा रूप सभी भाषाओंमे "भिन्नरुचिर्हि लोकः" के सिद्धान्तानुसार मिलता है। राजस्थानी दूहा-साहित्यकी नीति-वाटिकाकी भी जरा सैर कर लीजिये :

डाक्टर रवींद्रनाथ ठाकुरकी निम्नलिखित उक्ति अंग्रेजी विद्वानोंकी जिह्वा पर पायी जाती है :

Saith the false diamond, Waht a gem am I.
I doubt its value from that boastful cry.

इसी भावका यह प्राचीन राजस्थानी दूहा है :

> वडा वडाई ना करै, वडा न बोलै बोल ।
> हीरा मुखसे ना कहै, लाख महारा मोल ॥

सिहोंके बहाने वीर मनस्वी पुरुषोकी तेजस्विता, प्रताप और पराक्रम-के क्या पी सुन्दर चित्र इन दूहोमे खीचे गये हैं :

> जिण माण केहर वुवो, लागी वास तिणाह ।
> ते खड़ ऊभा सूकसी, नह चरसी हिरणाह ॥
> घाल घणा घर पातळा, आयो थहमें आप ।
> सूतो नाहर नीद सुख, पोहरो दियो प्रताप ॥
> हाथळ बळ निरभै हियो, सरभर नको समथ्थ ।
> सीह अकेला संचरै, सींहा केहा सथ्थ ॥
> सिघा देस विदेस सम, सिघा किसा वतन्न ।
> सिघ जका वन सचरै, वै सिघारा वन्न ॥

जिस मार्गसे सिह अेकबार भी होकर निकल गया है, उस मार्गके खेतों-का घास चरनेकी हिम्मत हिरनोको स्वप्नमें भी नही हो सकती । वे खेत तो खड़े-खड़े ही सूखेंगे । सिह अनेकोको मारकर आया है पर निश्शंक सो रहा है, सोते हुअे कोई शत्रु उसपर आक्रमण कर देगा इसकी तो संभावना भी नहीं हो सकती । सिह किसीको अपना सहायक नही बनाता, उसका सहायक उसका 'हाथळका बळ' है जिसके भरोसे वह निर्भय घूमता है । उसकी तेजस्विताका कारण कोई अेक स्थान नही है, वह तो जहाँ जाता है वही अपनी तेजस्विताके बलपर शासन करने लगता है ।

सिह और हाथी अेक ही वनमें रहते हैं, फिर भी क्या कारण है कि हाथी लाखोमे बिकता है पर सिहका कौड़ी मूल्य भी नही आता :

> अेक्कइ वन्न वसंतड़ा अेवड़ अंतर काय ।
> सिघ कवड्डी ना लहै गयवर लक्ख विकाय ॥

कवि इसका क्या ही सुन्दर उत्तर देता है :

गयवर गळे गळथ्थियो जहँ खंचै तहँ जाय।
सिंध गळथ्थण जे सहै तो दह लाख विकाय ॥

हाथीके गलेमें लोग बंधन डालकर अपनी इच्छानुसार उसे चलाते हैं। हाथी चुपचाप सहन कर लेता है। यदि सिंह भी गलेका बंधन स्वीकार कर ले तो वह अेक क्या दसों लाखमे बिके। पर यह असंभव है। वह स्वातन्त्र्यका पुजारी है। उसके गलेमें बंधन डालनेकी किसकी हिम्मत हो सकती है ?

स्वाधीनता बेचकर पाँचों सवारोंमें नाम लिखानेवालोंकी कैसी कटीली चुटकी ली गयी है।

संस्कृत-साहित्यकी यह प्रसिद्ध लोकोक्ति है :

क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां, नोपकरणे

इसी बातका स्पष्टीकरण पतिपत्नीके संवाद द्वारा किया गया है :

कळह करये मत कामणी ! घोडां घी देताह।
आडा कदयक आवसी वारडली वहताह ॥

हे कामिनी ! घोड़ोंको घी खिलाते समय तू कलह न करना। यह घी खिलाना व्यर्थ नहीं जायगा। जब कभी वार चढ़नेका मौका आयगा तो उस समय ये ही घोड़े काम देंगे।

पत्नी इस कथनका मुंहतोड़ उत्तर देती है :

आक वटूकै, पवन भख, घोड़ां आगळ जाय।
हूं तनै पूछूं सायबा ! हिरण किसा घी खाय ॥

हे पति ! बेचारे हरिण कौन-सा घी खाते हैं, वे तो आकके पत्तों और हवा पर गुजारा करते हैं, पर जब दौड़ते हैं तो तुम्हारे घी खानेवाले घोड़ोंके फरिश्ते भी उन्हें नहीं पा सकते ।

रोज तर माल उड़ानेवाले सेठों और बाजरी पर गुजारा करनेवाले देहाती जाटोंकी तुलना कर सकते हैं।

सत्संगतिकी महिमा विषयक दो-चार सुभाषित कितने भावपूर्ण हैं :

पुन्न गया परवार सज्जन साथ छुट्या जदे ।
दुरजण जणरी लार रोता फिरवै, राजिया ! ॥
ओछेको सँग साथ अहमद ! तजो अँगार ज्यूं ।
तातो जारै हाथ, सीरो कर कारो करै ॥

पिछले दूहेके भावको रहीमने इस प्रकार प्रकट किया है :

रहिमन, ओछे नरनसो तजहु बैर अरु प्रीत ।
काटे चाटे स्वानके, दुहूँ भाति विपरीत ॥

सच्चे मित्रका लक्षण देखिये :

मिंत ज ओगण मिंतके अनत नही भाखंत ।
कूप छाह ज्यूं आपणी हीयेमे राखंत ॥

'गुह्यं च गूहति' के भावको उदाहरण देकर कैसा स्पष्ट किया है ।

आदर्श मित्रका चित्र हस और वृक्षके संवादमें अंकित किया गया है :

आग लगी वनखंडमे, दाझ्या चंदण वंस ।
हम तो दाझ्या पंख विन तूं क्यो दाझै हंस ? ॥

किसी जंगलमें अेक पेड़ पर एक हंस रहता था । अेक बार जंगलमें आग लगी । पेड़ जलने लगे । जिस पेड़ पर हंस रहता था वह भी जल उठा । पर हंस वहाँसे नही हटा । पेड़ कहने लगा—मित्र, हमारे तो पंख नहीं इससे लाचार हैं । पर तू क्यो हमारे साथ जलता है ? हंस उत्तर देता है :

पान मरोड़्या, रस पिया, बैठ्या अेकण जळ ।
तूम जळो, हम उठ चलै, जीणो कितोक काळ ?

आनन्द मनाते समय तो साथ रहे, अब विपत्तिके समय तुम्हें छोड़ दूँ ? भला, ससारमें जीवन ही कितना है कि उसके लिअे मित्रको जलता छोड़कर अपनी जान बचाऊँ ?

राजस्थानी साहित्यमें प्रेमका आदर्श हंस है।

दूसरा उदाहरण लीजिये :

> डीघी पाळ तळावरी हसा बैठ्या आय।
> प्रीत पुराणी कारणै चुग-चुग काकर खाय ॥

दुनियादारीकी दो-चार बाते लीजिये। संसारमें सीधे आदमीके लिअे कोई स्थान नहीं होता। सभी उसको सताया करते हैं। राजस्थानी कहावत भी है कि सीधे ऊँटपर दो सवारियाँ बैठती हैं, दुष्ट ऊँटपर चढ़ते हुअे सभी डरते हैं। इसीलिअे अेक स्त्री अपने पतिसे कहती है :

> वाका रहज्यो, वालमा ! वाका आदर होय।
> वाका वनका लाकडा, काट न सक्कै कोय ॥

जंगलमें जो लकड़ी सीधी होती है, वही काटी जाती है।

ससार मे प्रायः उसीका आदर होता है जो ऊपरी आडंबर रखना जानता है, भीतर चाहे कुछ भी न हो। जो आडंबर नहीं रखता उसकी कोई बात भी नहीं पूछता। उसी भावको इस दूहेमें उदाहरण देकर समझाया गया है :

> लछमी कर हरि लार, हरनै दध दीधो जहर।
> आडंबर इधकार राखै सारा, राजिया ! ॥

देखो, समुद्रने आडंबरी विष्णुके पीछे तो चुपचाप लक्ष्मीको कर दिया पर सीधेसादे भोलानाथ बाबाको, जानते हैं, क्या दिया ? जहर, हलाहल जहर।

धनकी महिमा अनन्त काल से गायी जाती रही है। सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयंति, न बंधु-मध्ये धनहीनजीवनम्, धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वं, दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी, आदि सस्कृत कवियोंकी उक्तियाँ रोजानाकी कहावतें बन गई हैं। राजस्थानी कवि अपनी शैलीमें धन महिमाका गान करते हुअे कहता है :

दाळद घर दोळौ हुवै, परणी नावै पास।
रुपिया होवै रोकड़ा, सोरा आवै सास ॥
रुपिया विन रागा करै, हाजर जोडै हाथ।
अेक अधेली आडमें, बोळो सुण लै वात ॥

यदि पैसा पास नही है तो चाहे जितनी हाजिरी भरो, हाथ जोड़ो और मीठी-मीठी रागें गाओ, कोई बात भी नहीं सुनेगा। पर यदि आपके पास ज्यादा नही अेक अधेली ही है तो बहरा भी आपकी बातको सुन लेगा, दूसरोंका कहना ही क्या !

गोड़ो पूछै, गोड़िया, किसो भलेरो देस ?
संपत होय तो घर भलो, नहीं भलो परदेस ॥

'न बंधुमध्ये धनहीन-जीवनम्' की वातको संवादात्मक रूप देनेसे उसमें नवीनता आ गयी है।

भाग्यके खेलका वर्णन कैसा रोचक उदाहरण देकर किया गया है :

परालबधका पावणा, देख दईका खेल।
भम्भीखणनै लंक, अर हड़ूमाननै तेल ॥

कहाँ विभीषण और कहाँ हनुमानजी। पर विभीषणको मिली लंका और हनुमानजीको ? तेल और सिन्दूर।

अवसर बीत जानेपर कार्यसिद्धि हो जाय तो भी उससे क्या लाभ ? इसी भावको कवि कैसा सजीव बनाकर उपस्थित करता है :

आधो रहग्यो ऊॅखळी, आधो रहग्यो छाज।
सागर सट्टै धण गयी, (अब) मधरो-मधरो गाज ॥

मेघ आवश्यकताके समय तो बरसा नही, अब अवसर नाश हो जाने-पर चाहे मीठे स्वरसे गरजे। इसमे अन्तर्वेदनाके सिवाय अकालका भी सजीव रूप खड़ा कर दिया है—"सॉगर सट्टै धण गयी"। तुलसीने इसी भावको इस प्रकार प्रकट किया है—"का बरखा जब कृषी सुखाने" और "अवसर कौड़ी जो चुके, बहुरि दिये का लाख"। पर दोनो कथनोमें वह

बात नही जो दूहेमे है । 'सॉंगर सट्टै धण गयी मधरो-मधरो गाज ।" वेदना-को साकार बना दिया है और साथही व्यावहारिक-कथन-ससर्गने और भी सजीवता भर दी है—'-आधो रहग्यो ऊॅखळी, आधो रहग्यो छाज" । महाकवि भारविने भी "किमसामयिकं वितन्वता" आदि वचनोसे असाम-यिकताकी निन्दा की है, पर ऐसा हृदय पिघलानेवाला कथन खोजनेसे भी नही मिलेगा ।

गृहस्थ-जीवनके सुख-दु:खोंका वर्णन नीचेके दूहोमें किया गया है :

साटी चावळ, भैस-दुध, घर शिळवंती नार ।
चौथी पीठ तुरगरो, सुरग-निसाणी च्यार ॥
नाज पुराणो, घी नयो, आग्याकारी नार ।
पथ तुरी चढ चालणो, पुन्न-तणा फळ च्यार ॥
विद्या, अर वर नार, सपत गेह, सरीर-सुख ।
माग्या मिलै न च्यार, पूरब पूरा दत्त विन ॥

खानेको उत्तम चावल मिलें, भैसका दूध हो, नया घी हो, घरमें संपत्ति हो, शरीर नीरोग हो, विद्या प्राप्त हो, पतिव्रता सुशीला स्त्री हो और सवारीको घोड़ा हो तो फिर क्या कहना। यदि ये प्राप्त हैं तो घाघके शब्दोंमें—उहॉं छॉंडि इहँवै वैकूँठा ।

लूखो भोजन, भू सुवण, घर कळखारी नार ।
चौथा फाट्या कापड़ा, नरक-निसाणी च्यार ॥
कालर खेत, कसूत हळ, घर कळखारी नार ।
मैला जिणरा कापड़ा, नरक-निसाणी च्यार ॥
लोक चुगल काना लग्या, घूघू बोल्यो गेह ।
भायासूं मेळप नही, विपत लिखी विध तेह ॥

रूखा भोजन मिले, जमीनपर सोना पड़े, कपड़े फटे और मैले हों, खेत ऊसर हो, हल सीधा चलनेवाला न हो, चुगलखोर कानोंसे लगे रहें, घर पर उल्लू बोले, भाइयोंसे मेल न हो और सबसे बढ़कर स्त्री कर्कशा

और रातदिन कलह करनेवाली हो तो गृहस्थ-जीवन नरकके जीवनसे किस कदर कम है !

जीवन-साफल्यके विषयमें राजस्थानी भावना क्या है, यह इस दूहेसे मालूम होगा :

जलम अकारथ ही गयो, भड़-सिर खग्ग न भग्ग ।
तीखा तुरी न माणिया, गोरी गळै न लग्ग ॥

अेक संस्कृत कवि कहता है—

न ध्यानं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसार-विच्छित्तये
स्वर्ग-द्वार-कपाट-पाटन-पटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ।
नारी-पीन-पयोधरोरु-युगल स्वप्नेऽपि नालिंगितं
मातुः केवलमेव यौवन-वनच्छेदे कुठारा हि ते ॥

दोनो भावनाओका अंतर स्पष्ट है। संसार में आनेपर भक्तिभाव और भोग-विलास ही जीवनका उद्देश्य नही है। भोग-विलास भी जीवनकी अेक नैसर्गिक आवश्यकता है, पर जीवन इतने ही उद्देश्यमे केन्द्रित नही किया जा सकता है। देशके लिअे सैनिक-वेषमे तैयार रहना भी हमारा कर्त्तव्य है, अतः अेक वीरका हृदय भोगाकांक्षामें भी "तीखा तुरी न माणिया" की याद किये बिना नही रह सकता। श्लोकमें ईश्वर-ध्यान और रमणी-भोगसे वंचित जीवनको व्यर्थ जीवन बताया है, पर यहॉ तो पहली असफलता "भड़ सिर खग्ग न भग्ग", दूसरी असफलता "तीखा तुरी न माणिया", और तीसरी "गोरी गळै न लग्ग" बताई गई है तथा ईश्वरभजनका नाम तक नही लिया गया है। वीर राजस्थानके लिअे वीरता ही भक्ति रही है। "भड़ सिर खग्ग न भग्ग" में राजस्थानकी सारी भावनाअें केन्द्रित हैं। इन वीरोंके लिअे युद्ध ही स्वर्गद्वार है :

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्ग-द्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रिया पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥

: ७ :

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" भारतका मूलमंत्र-सा रहा है। परिवारके शिशु, तरुण और वृद्ध सबके मुँह पर अेक ही बात मिलेगी—"जग झूठा सारा सांइया" और शास्त्रोमें संसार में "पद्‌मपत्रमिवाम्भसा" रहनेका ही आदेश मिलेगा। राजस्थानी काव्यधारामें भी यह शान्ति मिलेगी। राजस्थानी-काव्योमे शान्त रस भी अन्य रसोंकी तरह लालित्यपूर्ण मिलेगा। अेक दो उदाहरण ही आपके सामने रखे जाते हैं—ये ही माधुर्य-परिचय देनेमें पर्याप्त होगे :

> पान झडंता देखकर, हँसी ज कूंपलियाह।
> मो वीती तुझ वीतसी धीरी बापड़ियाह ! ॥

वृक्षके पत्तोंको झड़ते देखकर कोंपलें हँस पड़ीं। उन्हें हँसते देखकर पत्ते कहते हैं—अरी अबोध कोंपलो, क्या हँसती हो, जरा ठहर जाओ, जो हमपर बीत रही है वही तुमपर भी शीघ्र बीतनेवाली है। दूसरोकी विपत्तिमें सांसारिक जनोंको प्रसन्नता होती है। उस समय उन्हें यह ध्यान नही रहता कि कभी हम भी इस विपत्तिमें फँस सकते हैं।

वर्त्तमानकालीन क्षणिक वैभवमें फूलकर मनुष्य जानते हुअे भी वास्तविकताको भूल जाता है। इस बातको अन्योक्ति-रूपमें कैसे सुंदर ढंगसे समझाया है :

> गहरी लाली देखकर फूल गुमान भयाह।
> कितरा बाग जहानमे लग-लग सूख गयाह ॥

समयके फेरसे मनुष्यकी अवस्थामे जो परिवर्त्तन हो जाता है, उसका कैसा सजीव और करुणा पूर्ण चित्र इन दूहोंमें अंकित किया गया है :

> तन भर सोनो पहरती, मोत्या मरती भार।
> अेक दिन अैसो आयग्यो, घर-घररी पिणियार ॥
> महिपत देता मोज घर बैठा घोड़ा घणा।
> रोट्या-केरो रोज निजरा देख्यो, नोपला ! ॥

भावै नही ज भात, लागै विजण विडावणा।
रीरावै दिन रात रोट्या कारण, राजिया ! ॥

जो सोने और मोतियोंके आभूषणोंसे लदी रहती थी, वह आज घर-घर भटकनेवाली पनिहारी है। जिनको राजा लोग घर बैठे रीझ बख्शते थे उनके यहाँ आज रोटियों तकके लाले पड़े हैं। जिनको स्वादिष्ट व्यंजन भी अच्छे नही लगते थे, वे आज सूखी रोटियोंके लिअे आजिजी करते फिरते हैं।

संसार के अस्थायी नश्वर जीवनका रूपक कितना स्पष्ट चित्रित किया गया है :

नदी-किनारे देखियै, सम्मन, सब ससार ।
कइ उतरे, कइ ऊतरै, (कइ)बुगचा बाध तयार ॥

सारा ससार नदी-किनारेका यात्री-समाज है, जिसमेंसे कुछ नदीको पार कर चुके हैं, कुछ कर रहे हैं और कुछ अपने-अपने बुगचे बाँधकर पार जानेको तय्यार खड़े हैं—नावकी बाट जोह रहे हैं।

यौवनापगम पर वृद्धावस्थाका भयंकर रूप देखकर प्राणी पुकार उठता है :

हा ! हा ! जोबन ! जाय मत, मै वरजत हूँ तोय ।

जब यौवनरत्न चला गया तो फिर कोई बात भी नहीं पूछता ! उस समय सहारा देनेवाली केवल लकड़ी ही रह जाती है :

आव, सुहागण लाकड़ी ! तेरा पडिया काज ।
माता दी आसीसडी, सो दिन आया आज ॥

मातापर झुँझलाहट आती है। न जाने क्या जानकर उसने दीर्घायु की आशीष दी थी।

अेक बुढ़िया अपनी कथा कहती है :

यहि अँगना, यही देहरी, यही ससुरको गाव ।
दुलहिन-दुलहिन टेरता, बुढ़िया पड़गयो नाव ॥

यही ऑगन है, यही देहली है, यही वह ससुरका गॉव है जिसमें मैंने नव-वधूके रूपमें प्रवेश किया था और जहाँ मै दुलहिन कहकर पुकारी गयी थी । दुलहिनके नामसे पुकारते-पुकारते आज मैं बुढ़ियाके नामसे पुकारी जाने लगी हूँ । कितनी करुण कथा है !

बचपनके साथियोसे वियुक्त अेक भावुक हृदय उनकी स्मृतिसे ही करुणा-विह्वल हो उठता है :

आसी सावण मास, वरखा-रुत आसी बळे ।
साईनारो साथ वळे न आसी, वीझरा ! ॥

यह सावनका महीना फिर लौट आयगा, वर्षा भी फिर आ जायगी, पर जिन साथियोंके संग बचपनमें खेले-कूदे हैं उनका संग जीवनमें फिर नहीं आयगा ।

दूहेमें कितनी वेदना, कितनी करुणा, कितनी विह्वलता और कितनी हृदय-वेधकता भरी है, इसे भुक्तभोगीके सिवाय कौन जान सकता है !*

---

* प्रस्तावना के बीच-बीच के कुछ अंश श्री रामनिवास हारीत के लिखे हुअे है ।

अनुक्रमणिका

—:❀:—

राजस्थानरा दूहा

१. विनय

सदा भवानी दाहणी, सुनमुख रहो गणेस
पाच देव रिच्छया करो ब्रह्मा विष्णु महेस

राजस्थानरा दूहा

१. विनय

१—भगवानकी स्तुति

सिल ऊधरती सारि, नाठो झीवर नाव लै।
महिमा चलण मुरारि! देखे दसरथराव-उत ।॥ १ ॥
किरि कूटियै कपाळ, त्रीकम! तूँ विमुखाँ तणा।
घडी-घडी घडियाळ वाजै, वसदेराव-उत ॥ २ ॥
धायो, धावताँह गरुड़ै ही माठो गणै।
ग्रह उग्राहण ग्राह वारण वसदेराव-उत ॥ ३ ॥

१—भगवानकी स्तुति

१—हे राजा दशरथके पुत्र भगवान् श्रीराम! आपके चरणोकी महिमा देखकर और शिला (शिला बनी हुई अहल्या) के उद्धारकी बात याद करके केवट नाव लेकर भाग खडा हुआ (यह सोचकर कि चरणोको छूकर जब शिला स्त्री बन गयी तो काठकी बनी नावके लिए ऐसा होना क्या असंभव है, और यदि मेरी नाव स्त्री बन गयी तो फिर मैं अपना और अपने परिवारका पेट कैसे पालूँगा)।

२—हे राजा वसुदेवके पुत्र भगवान् त्रिविक्रम! जो तुमसे विमुख हैं उनका माथा अवश्य ही कूटने योग्य है जैसे घडी-घडीके बाद घडियालका घंटा कूटा जाता है (बजाया जाता है)।

३—हे राजा वसुदेवके पुत्र! ग्राहसे ग्रस्त हाथीकी पुकार सुनकर उसे बचानेके

दीनानाथ दयाल ! तूँ जोइ आधख आपरो ।
कॉइ अम्ह समो कृपाळ । देखै, दसरथराव-उत ! ॥ ४ ॥
आयो महिमा आण त्हारी, रघुकुळका तिलक ! ।
पोत भयो पाखाण दीखै, दसरथराव-उत ! ॥ ५ ॥
तूँबी ही तारण समथ जळ ऊपर पाखाण ।
ताहि तारियै, जग-तरण ! तइ केहा वाखाण ? ॥ ६ ॥
जद मैं थाँनै जाणिया राम ! गरीबनिवाज ।
मणि-माणक मूँघा किया, सूँघा जळ-त्रिण-नाज ॥ ७ ॥

लिए तुम दौड़े और दौडते समय शीघ्रगामी गरुडको भी तुमने मदगामी समझा ।

४—हे राजा दशरथके पुत्र, हे दीनोके नाथ ! हे दयालु ! तुम अपने प्रभुत्व की ओर देखा । हे कृपालु ! हमारी ओर क्या देखते हो ? (अपनी महानताका ध्यान करके हमारा उद्धार कर दो, हमारे दुर्गुणोकी ओर मत देखो क्योकि ऐसा करनेसे हमारा उद्धार असभव हो जायगा) ।

५—हे रघुकुलके तिलक और राजा दशरथके पुत्र श्रीराम ! तुम्हारी महिमासे पत्थर भी नावकी भॉति तैर गये थे, इसी तुम्हारी महिमाका ध्यान करके मै तुम्हारे पास आया था, पर मुझे जान पड़ता है कि पत्थरका नाव बनना तो दूर रहा, मेरी नाव ही तुम्हारे पास आनेपर पत्थर बन गयी है (प्रेमपूर्ण उपालभ) ।

६—हे श्रीराम ! तुमने जल पर पत्थर तैरा दिये तो यह कौन बड़ा काम किया ? तूँबी भी जल पर पत्थर तैरानेकी सामर्थ्य रखती है । हे जगतके तारनेवाले ! यदि उन्हे तैरा भी दिया तो क्या बडाई ? (बडाई तो तब है जब मुझ जैसे पापीको भी तारो) ।

७—हे राम ! तब मैने तुमको दीनोका पालन करनेवाला समझा, जब मैने देखा कि तुमने मणि-माणिक आदि धनवानोके कामकी चीजोको महँगा बनाया है

२—गंगाजीकी स्तुति

काया लाग्यो काट सिकलीगर सुधरै नही ।
निरमळ होय निराट तव भेटचा, भागीरथी ! ॥ १ ॥
ताहरउ अदभुत ताप मात ! सॅसारे मानियउ ।
पाणी-मुॅहडै पाप जो तूँ जाळै, जान्हवी ! ॥ २ ॥
कीया पाप जकेह जनम-जनममे जूजुआ ।
तै भॉजिया तकेह भेळा ही, भागीरथी ! ॥ ३ ॥
पुळियै मग पुळियाह दरस हुवॉ अदरस हुवॉ ।
जळ पैठॉ जळियाह मदा क्रम, मदाकिनी ! ॥ ४ ॥
जव-तिल जितरो जाय हेक कणूको हाडरो ।
मुवॉ पछै ही माय ! भेळै गत, भागीरथी ! ॥ ५ ॥

और दीनोके कामकी आवश्यक वस्तुओ जैसे जल, अनाज, घास आदिको सुलभ और सस्ता किया है ।

२—गंगाजीकी स्तुति

१—हे भागीरथी ! शरीरमे लगा हुआ मायाका जग सिकलीगरसे साफ नही हो सकता परन्तु तुझसे भेटनेपर वह जग बिलकुल साफ हो जाता है ।

२--हे माता जाह्नवी ! तेरे अद्भुत प्रतापको समस्त संसारने मान लिया है क्योंकि तू केवल पानीके द्वारा पापोको जलाती है (पानीसे जलाना यह एक अद्भुत बात है) ।

३ —हे भागीरथी ! मैने जो पाप अलग-अलग जन्मोमे अलग-अलग किये थे उन सबको तूने अेक ही साथ नष्ट कर दिया ।

४—हे मदाकिनी ! जब मै तुम्हारी ओर चला तो मेरे पाप भी अपने रास्ते लगे, जब तुम्हारा दर्शन हुआ तो वे अदृश्य हो गये, और जब मै तुम्हारे जलमे घुसा ता वे जल गये ।

५—हे माता भागीरथी ! जौ या तिल जितना अेक हड्डीका टुकडा भी यदि तुम्हारे पानी मे चला जाय तो वह, मरनेके बाद भी, सद्गति दे देता है ।

गगा-जळ गुटकीह निरणै ही लीधो नही ।
भव-भवमे भटकीह भूत हुवा, भागीरथी ! ॥ ६ ॥
जिण थारै तट जाय उदर भरे पीधो उदक ।
मिनख जिके फिर माय ! आया नह जननी-उदर ॥ ७ ॥
नारायण---पग---नीर मानूँ किम मदायणी ! ।
सॉपड जेथ सरीर हर कोइ नारायण हुवै ॥ ८ ॥
दूधॉ वरणॉ पाणियॉ मजण करसी देह ।
वॉका, उण दिन वरससी दूधॉ–हदा मेह ॥ ९ ॥१६॥

३—करणीजीकी स्तुति

बडकै डाढ वराह, कडकै पीठ कमट्ठरी ।
धड़कै नाग धराह, बाघ चढै जद वीसहथ ॥ १ ॥

६—हे भागीरथी ! गगा-जलका अेक घूॅट प्रातःकाल भोजनके पूर्व जिन्होने नही लिया वे जन्म-जन्ममे भटककर अन्तमे भूत होते है ।

७—हे माता ! जिन मनुष्योने तुम्हारे तटपर आकर पेट भरकर तुम्हारा पानी पी लिया वे मनुष्य फिर माताके उदरमे नही आये (उनका ससारमें फिर जन्म नही हुआ; वे आवागमनके दुःखसे छूट गये) ।

८—हे मदाकिनी ! मै तुम्हे नारायणके चरणोका जल कैसे मान लूॅ, जहॉ शरीरसे स्नान करके हरकोई मनुष्य नारायण हो जाता है ।

९—वॉकीदास कहता है कि जिस दिन गगाके दुग्धवर्ण जलमे शरीर स्नान करेगा उस दिन मेरे यहॉ दूधका मेह बरसेगा ।

३—करणीजीकी स्तुति

१—जब बीस हाथोवाली देवी बाघपर चढती है तो वाराहकी डाढे तडक जाती है, कच्छपकी पीठ कड़कने लगती है और शेषनाग तथा पृथ्वी डगमगाने लगते है ।

करनळ किणियाणीह, धणियाणी जगळ-धरा ।
आळस मत आणीह, वीसहथी, लाजै विड़द ॥ २ ॥
आई विखमी वार, जे ऊपर करसी नही ।
सरणाई साधार कुण जग कहसी, करनळा ! ३ ॥
सुणियाँ साद सतेज आई ! आगळ आँवता ।
जगदब ! अब क्यो जेज करी इती तैं, करनळा ! ४ ॥
देवी देसाणेह, धर वीकाणे तूँ धणी ।
जोगण जोधाणेह, मानीजै मेहास-धू ! ॥५॥२१॥

२—हे जागल देशकी स्वामिनी देवी करणी ! आलस्य मत लाना, नही तो हे बीस भुजाओवाली ! तेरा विरद लज्जित होगा।

३—हे माता करणी ! सकट की अवस्था आ गयी, उसपर यदि तू सहायता नही करेगी तो तेरी शरणको संसारमे कौन साधार (आधारवाली) कहेगा ?

४—हे माता करणी ! शब्द (पुकार) को सुननेपर तू पहले तो सदा तुरन्त ही आती थी । हे जगदम्बा ! अब तूने इतनी देर क्यो की ?

५—हे माता करणी ! तू देशनोकमे देवी के रूपमे, वीकानेरकी भूमिमे स्वामिनीके रूपमे, और जोधपुर-राज्यमे योगिनीके रूपमे मानी जाती है (पूजी जाती है) ।

---

२. नीति

१--मनस्वी पुरुष

एकइ वन्न वसतडा, एवड अतर काय ।
सिघ कवड्डी ना लहै, गयवर लाख विकाय ।। १ ।।
गयवर गळै गलथ्थियो, जहॅं खचै तहॅं जाय ।
सिघ गळथ्थण जे सहै, तो दह लाख विकाय ।। २ ।।
जिण मारग केहर वुवो, लागी वास तिणॉह ।
ते खड ऊभा सूकसी, नह चरसी हिरणाह ।। ३ ।।
कथा करक न छोडियै, हिरण किसा घी खाय ? ।
आक वटूकै पवन भख, घोडॉ आगळ जाय ।। ४ ।।
भूँडण तो भूँडा जिणै, हिरणी जिणै सुगठ्ठ ।
पान खडक्कै उठ चलै, थागड चालै थठ्ठ ।। ५ ।।

१--मनस्वी पुरुष

१—सिंह और हाथी एक ही वनके रहनेवाले हैं, फिर इतना अन्तर क्यो ? सिहका तो अेक कौडी भी मोल नही होता और हाथी लाखोमे बिकता है ?

२—हाथीके गलेमे बधन पड़ा रहता है जिससे वह जिधर खीचा जाय उधर ही चला जाता है। यदि सिह अैसे गलेके बंधनको सह सके तो वह एक क्या दस लाखमे बिके !

३—जिस मार्गसे सिह अेक बार भी गया है और जिस घासको उसकी गन्ध लग गयी है, उस मार्गवाले और उस घासवाले खेत खडे-खडे ही सूखेंगे, हिरन उन्हे नही चरेंगे (उनको तो उधर देखनेकी भी हिम्मत नही होगी) ।

४ – हे क्त ! अपनी कडक मत छोडो। हरिनोको देखो, वे कौन धी खाते है, आक और वायु ही उनका भोजन है। पर फिर भी जब दौड़ते हैं तो घी खानेवाले घोड़ोसे भी आगे निकल जाते है।

५—भूँडण—शूकरी। भूँडा—कुरूप। जिणै—जनती है। सुगठ्ठ—सुरूप।

हूँ जाण्यो, धोळो मुयो, खाली हुयग्यो वग्ग ।
वाडै उणहिज वाछड़ू , औरूँ तॉडण लग्ग ॥ ६ ॥

सिर नह सीगी सचरी , पगॉ न ठेठर बंध ।
दूध पिवतै वाछड़ू , दियो महाभड कंध ॥ ७ ॥

हाथळ-बळ निरभै हियो, सरभर नको समथ्थ ।
सीह अकेला सचरै, सीहॉ केहा सथ्थ ? ॥ ८ ॥

कारण कटक न कीध, सखरा चाहीजै सुपह ।
लंक विकट गढ लीध, रीछ-वॉनरा, राजिया ! ॥ ९ ॥

लावा-तीतर लार, कर हाका भागे किता ।
सिघॉ-तणी सिकार, कोइक जाणै, किसनिया ! ॥१०॥

२—महापुरुष

वडा वडाई ना करै, वडा न बोलै बोल ।
हीरा मुखसूँ ना कहै, लाख महारा मोल ॥ १ ॥

खडकै—खुडकनेपर ही । थागड इ०—शानके साथ निर्भीक होकर धीरे-धीरे चलते है ।

६—धोळो—उत्तम जातिका बैल । वग्ग—वर्ग, बाड़ा । उणहिज इ०—उसीका बछडा । औरूँ—और भी (अधिक) । तॉडण—दहाडने ।

७—नह—नही । सीगी—सींग । ठेठरबन्ध—पैरकी ठठरी या हड्डी का बॅधना । महाभड—बडा योद्धा ।

८—हाथळ—हथेली । सरभर इ०—बराबरी करनेमे कोई समर्थ नही । सचरै—घूमते है । केहा—कैसे । सीहॉ—सिहोंके ।

९—कारण इ०—सेना (विजयका) कारण नही होती, मालिक वीर होने चाहिए । देखो लका जैसे दुर्गम गढको साधारण रीछ-बदरोने फतह कर लिया ।

१०—हाका—शोर । किता—कितने ही, बहुत-से । तणी—की ।

२—महापुरुष

१—महारा—मेरा ।

तन चोखा, मन ऊजळा, भीतर राखै भाव ।
किणका बुरा न चीतवै, ताकूँ रग चढाव ॥ २ ॥
धनकूँ ऊँडा नह धरै, भीतर राखै भान ।
भागी फौजाँ भेडवै, तिणकूँ रग चढान ॥ ३ ॥
रहणा इकरगाह, कहणा नहि कूडा कथन ।
चित ऊजळ चगाह, भला ज कोइक, भैरिया ! ॥ ४ ॥
काछ दृढा, कर वरसणा, मन चगा, मुख मिट्ठ ।
रण-सूरा, जग-वल्लभा, सो मै विरळा दिट्ठ ॥ ५ ॥
कतरण, सीवण, केत़टण, लै दरजी चित चोर ।
रजधानी तबू रचै, तें नरनायक और ॥ ६ ॥
पूरा सहजै गुण करै, गुण ना आवै छेह ।
सायर पोखै, सर भरै, दाण न माँगै मेह ॥ ७ ॥
हाथी हीडत देख, कूकर लव-लव़ कर मरै ।
वडपण-तणै विवेक, क्रोध न आणै, किसनिया ! ॥८॥१८॥

२—भीतर—हृदयमे । भाव—सद्भाव । किणका इ०—किसीका बुरा नही सोचते । रग चढाऩ—धन्य-धन्य कहो ।

३—ऊँडा—गहरा (गाड़कर) । भागी इ०—भागी हुई सेनाओंको फिर लडनेके लिअे तैयार करे ।

४ - इकरंगाह—एकरस । कूड़ा—झूठ । भला इ०—अैसे भले पुरुप कोई एकाध ही होते हे ।

५—काछ दृढा—लगोटके पक्के, पक्के ब्रह्मचारी । कर वरसणा—दानी । वल्लभा—प्यारे । विरळा—बिरले ।

७ पूरा—पूरे मनुष्य । छेह—अन्त । गुण—उपकार । सायर—सागर । दाण—कर । मेह—मेघ ।

८—हीडत—झूमता हुआ । लव़-लव—कुत्तेकी आवाज । वडपण-तणै—

३—सज्जन

तरवर, सरवर, सतजन, चोथो वरसण मेह ।
परमारथरै कारणै च्यारा धारी देह ॥ १ ॥
तरवर कदे न फळ भखै, नदी न सीचै नीर ।
परमारथरै कारणै साधाँ धरचो सरीर ॥ २ ॥
तखत विराज्या जानरा, सत विराज्या खाट ।
केवळकूबो यूँ कहै, दोनाँमे कुण घाट ? ॥ ३ ॥
दरसण जाताँ साधकै जेता दीजै पाँव ।
पैड-पैड असमेद जिग फळै स मनको भाव ॥ ४ ॥
सज्जण थोडा हंस ज्यूँ, विरळा कोइ दीसत ।
दुरजण काळा नाग ज्यूँ महियळ घणा भमत ॥ ५ ॥
निज गुण ढाँकण,नेक नित, परगुण गिण गावत ।
अैसा जगमे सुजण जण, विरळा ही पावत ॥ ६ ॥

बड़प्पनके । आगै—हृदयमे लाता है । किसनिया—कविका नाम ।

३—सज्जन

१ वरसण—बरसनेवाला । च्यारों—चारोंने ।

२—भखै—खाते हैं । सीचै—पान करती हैं । साधाँ—साधुओंने ।

३—तखत—सिहासनपर । जानराय—भगवान् । केवळकूबो—कविका नाम । दोनोंमे इ०—दोनोंमे कौन घटकर है ।

४—जाताँ—जाते हुए । पैड-पैड—पग-पगपर । असमेद जिग इ०—अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है ।

५—महियळ—पृथ्वीपर । घणा—बहुत । भमंत—घूमते हैं ।

६—ढाँकण—ढकनेवाले, छिपानेवाले । गिण—गिन-गिनकरके । अैसा—ऐसे । सुजण—सज्जन । पावत—मिलते हैं ।

दुरजणरी किरपा बुरी, भलो सुजणरी त्रास ।
जद सूरज गरमी करै, जद वरसणरी आस ।। ७ ।।२५।।

४--सच्चा मित्र

साँचो मित्र सचेत, कहो, काम न करै किसो ।
हर अरजनरै हेत, रथ कर हॉंक्यो, राजिया ! ।।१ ।।
सगा सनेही और नर, सुखमे मिलै अनेक ।
विपत पड्यॉं दुख वॉंट लै, सो लाखॉं मे अेक ।। २ ।।
मित ज ओगण मितका, अनत नही भाखत ।
कूप छॉंह ज्यूँ आपणी, हीयेमे राखत ।। ३ ।।२८।।

५--संगतिका फल

जैसो सगत बैठिये, तैसी इज्जत थाय ।
सिर पर मखमल सेहरै, पनही मखमल पाँय ।। १ ।।२९।।

७—जद्—जब । जद्—तब ।

४—सच्चा मित्र

१—किसो—कौनसा । हर—हरि, कृष्ण ।

२—और—दूसरे । मिलै—मिलते है । पड्यॉं—पडने पर ।

३—मित—मित्र । ज – अवधारणसूचक अव्यय । अनत—अन्यत्र । कूप इ०—जैसे कुॅआ अपनी छायाको अपने ही भीतर रखता है वैसे ही सच्चे मित्र मित्रके अवगुणोको हृदयमे ही रखते है, किसीके सामने प्रकाशित नही करते ।

५—संगतिका फल

१—थाय—होती है । सेहरे इ०—मुकुटमे मखमल लगा होता है तो सिर पर रहता है, जूतीमे लगा होता है तो पैरोमें ।

६—सत्संगति

संगत कीजै साधकी, हठ कर कीजै मोह ।
करम कटै, काळू कहै, तिरै काठ सँग लोह ॥१ ॥
मळयागिर मँझार, हर कोइ तरु चदण हुवै ।
सगत लहै सुधार, रूँखाँनै ही, राजिया ! ॥ २ ॥३१॥

७—कुसंगति

ओछेको सँग-साथ, अहमद, तजो अँगार ज्यूँ ।
तातो जाळै हाथ सीरो कर काळो करै ॥ १ ॥
पुन्न गया परवार, सज्जन-साथ छुट्या जदै ।
दुरजण-जणरी लार रोता फिरवैं, राजिया ! ॥ २ ॥
कहो,नफो किण काढियो लुच्चो पलै लगाय ?
हीग-तणै सँग हालियो म्रगमद मजो गमाय ॥ ३ ॥

६—सत्संगति

१—मोह—प्रेम । करम—पूर्व-संचित कर्म । काळू—कविका नाम । तिरै—तर जाता है ।

२—मळयागिर—मलयाचल, जहाँ चंदन बहुत होता है । रूँखाँनै ही—पेडोंको भी ।

७—कुसंगति

१—सीरो—ठंढा, बुझा हुआ ।

२—पुन्न इ०—पुण्य नष्ट हो गये । जदै—जब । लार—पीछे । फिरवै—फिरते हैं ।

३—नफो—लाभ । म्रगमद—कस्तूरी, हीगके साथ रहनेसे कस्तूरीकी सुगंध दब जाती है ।

सट्ठ-सभामे बैठतॉं पत पडितरी जाय।
एकण वाडै किम वड़ै रोझ गधेड़ो, गाय ॥ ४ ॥३५॥

८—दुर्जन

मुख ऊपर मीठास, घट मॉंही खोटा घडै।
इसडासूँ इखळास राखीजै नहि राजिया ! ॥ १ ॥
मिळियॉं अत मनवार, वीछडियॉं भाखै बुरी।
लानत दे ज्यॉं लार रजी उडावो राजिया ! ॥ २ ॥
मतलबरा पाजी कर जोड्यॉं विनती करै।
विन मतलब राजी बोलै नहि बै, बाघजी ! ॥ ३ ॥
रज्जब, पारस परसकै मिटगो लोह-विकार।
तीन वात तो ना मिटी वॉंक, धार अर मार ॥ ४ ॥३६॥

९—कृतघ्न

कीधोडो उपगार गर क्रतघण मानै नही।
लानतियॉं ज्यॉं लार रजी उडावो, राजिया ! ॥ १ ॥

४—पत—प्रतिष्ठा। पडितरी—पडितकी। अेकण—अेक ही। वडै—भीतर जावे, रहे। रोझ—गायकी किस्मका एक जानवर।

८—दुर्जन

१—घट इ०—हृदयमे बुरी बातें सोचते रहे। इसड़ॉसूँ इ०—अैसोसे मित्रता का संबंध नही रखना चाहिए।

२—मिळियॉं—मिलनेपर। अत मनवार—बहुत-सी मनुहार करते हैं। ज्यॉं लार—उनके पीछे। रजी इ०—धूल उछालो।

३—कर इ०—हाथ जोडे हुअे।

४—लोह—लोहा, हथियार। वॉंक—टेढ़ापन। मार—मारनेकी शक्ति।

९—कृतघ्न

१—कीधोड़ो—किया हुआ। क्रतघण—कृतघ्न।

खोदा ! अन-जळ खाय खळ तिणरी खोटी करै ।
जडाँ-मूळसूँ जाय राम न राखै, राजिया ! ।। २ ।।
उणही ठाम अरोग भाजणरी मनमे भणै ।
आ तो वात अजोग, राम न भावै, राजिया ।। ३ ।। ४२।।

१०—कुमित्र

गिरसूँ पडियै धाय, जाय समदाँ डूबियै ।
मरियै महुरो खाय, मूरख मित्र न कीजियै ।। १ ।।
सपतमे ससार हर-कोई हेतू हुवै ।
विपत पडयाँरी वार नैण न निरखै, नाथिया ! ।।२ ।।
सुधरीमे सौ वार मदत करै मन-मोडिया ।
विगडीमे इक वार कोइ न रैवै, किसनिया ! ।।३।।
पळ-पळ मे करै प्यार पळ-पळमे पळटै परा ।
अै मुतलबरा यार, रहजे अळगो, राजिया ! ।। ४ ।।
पळ-पळमे करै प्यार, पळ-पळमे पळटै परा ।
लानत दे ज्याँ लार रजी उडावो राजिया ! ।। ५ ।।

२—खोदा—अे खुदा । अन-जळ—अन्न-जल । तिणरी—उसीकी । खोटी—बुराई । राखै—रक्षा करता है, बचाता है ।

३—उणही—उसी । ठाम—पात्र, बर्त्तन । आरोग—भोजन करके । भाजणरी—तोड़ डालनेकी । आ—यह । वात—बात । अजोग—अनुचित । भावै—अच्छी लगती है ।

१०—कुमित्र

१—गिरसूँ—पहाडसे । समदाँ—समुद्रोमे । महुरो—जहर ।
२—हेतू—हितकारी, प्रेमी, मित्र । वार—समय ।
३—मदत—सहायता । रैवै—(साथ) रहता है ।
४—पळटै परा—बदल जाते हैं । मुतलब—स्वार्थ । अळगो—दूर ।

सुखमें प्रीत सवाय, दुखमे मुख टाळा दिवै ।
जे के कहसी जाय राम-कचेडी राजिया ? ॥ ६ ॥४८॥

११—ओछे पुरुष

मिणधर विख अणमाव, मोटा नह धारै मगज ।
वीछू पूँछ वणाव राखै सिरपर राजिया ! ॥ १ ॥
गहवरियो गजराज मद-छकियो चालै मतै ।
कूकरिया बेकाज रोय भुसै क्यूँ राजिया ! ॥ २ ॥
मद विद्या धन मान ओछा से उकळै अवस ।
आधणरै उनमान रहै क विरळा राजिया ! ॥ ३ ॥५१॥

१२—अविवेकी पुरुष

कुन्नण पीतळ कूँत अेक रीत कर आदरै ।
है उण ठाकुर-हूँत भाखर सखरा, भैरिया ! ॥ १ ॥

६—सवाय—सवाई, अधिक । मुख इ०—मुख छिपा लेते हैं । जे इ०—वे ईश्वरकी कचहरीमें जाकर क्या जवाब देंगे ।

११—ओछे पुरुष

१—मिणधर—मणिधर, सॉप । विख—जहर । अणमाव—अनमाप, बहुत । नह—नही । मिणधर इ०—सॉपोके बहुत विष होता है पर तो भी वे उसे मस्तक पर नही रखते, उधर तुच्छ बिच्छू थोडे-से विषवाली पूँछको सॅवारकर सिरपर रखे रहता है ।

२—गहवरियो—मस्त, गंभीर । मतै—स्वेच्छापूर्वक । चालै—चलता है । बेकाज—व्यर्थ । भुसै—भोकते है ।

३—से—वे । उकळै—उबल पडते है । आधण इ०—अदहन के अनुसार ।

१२—अविवेकी पुरुष

१--कुन्नण इ०—सोने और पीतल (के मोल) को ऑककर जो दोनोकी अेकही-सी कदर करता है उस ठाकुरसे पत्थर ही अच्छे ।

खळ गुळ अणकूँताँ अेक भाव कर आदरै ।
ते नगरी-हूँताँ रोही आछी राजिया ! ॥ २ ॥

गुण-ओगण जिण गाँव सुणै न कोई साँभळै ।
मच्छ-गळागळ माँय रहणो मुसकल राजिया ! ॥ ३ ॥

सुध-हीणा सिरदार बुध-हीणा राखै मिनख ।
अस आँधो असवार राम रुखाळो राजिया ! ॥ ४ ॥

सतहीणा सिरदार मतहीणा राखै मिनख ।
अँध घोडी असवार राम रुखाळो राजिया ! ॥ ५ ॥

नान्हा मिनख नजीक, उमरावाँ आदर नही ।
ठाकर जिणनै ठीक रणमे पड़सी राजिया ! ॥ ६ ॥५७॥

१३—मूर्ख

पाणीमे पाखाण भीजै पर छीजै नही ।
मूरख आगै ग्यान रीझै, पर बूझै नही ॥ १ ॥

२—खळ-गुळ—खली और गुड़ । अणकूताँ—बिना जाँचे हुअे ही । हूँताँ—अपेक्षा । रोही—जगल ।

३—सुणै, साँभळै—सुनता है । मच्छ गळागळ—जहाँ बलवान दुर्बलोको सताते हैं । रहणो—निवास । मुसकल—मुश्किल ।

४—हीणा—हीन । मिनख—मनुष्य, सेवक । अस०—अैसे अधे असवार-का रक्षक राम ही है ।

६—नान्हा-छोटे । नजीक-पास (रहते हैं) । उमरावाँ—उमरावोंका, सच्चे सरदारो का । जिणनै—उसको । ठीक पडसी—पता लगेगा, मालूम होगा ।

१३—मूर्ख

१—पाणी—पानी । छीजै—घटता है । बूझै—समझता है ।

मूरखकूँ पोथी दिवी वाँचणकूँ गुण-गाथ ।
जैसे निरमळ आरसी दी आँधैकै हाथ ।। २ ।।
मूरखनै समझावताँ ग्यान गाँठरो जाय ।
कोयलो होय न ऊजळो, सौ मण साबण लाय ।। ३ ।।
काग पढायो पीजरै, पढग्यो च्यारूँ वेद ।
समझायो समझै नही, रह्यो ढेढ-रो-ढेढ ।। ४ ।।
हिये मूढ जो होय, की सगत ज्याँरो करै ? ।
काळै ऊपर कोय रंग न लागै राजिया ! ।। ५ ।।
आवै वुसत अनेक हद नाणो गाँठै हुयाँ ।
अकल न आवै एक क्रोड रुपइयाँ किसनिया ! ।। ६ ।।
वडा भया तो क्या भया, जे बुध उपजी नाँय ।
सुसै सिंघ, काळू कहैं, डारचा कूवै माँय ।। ७ ।।६४।।

१४—उदारता

कहा लकपत ले गयो, करण गयो कहा खोय ?
जस जीवण, अपजस मरण कर देखो सब कोय ।। १ ।।

२—दिवी—दी । आरसी—दर्पण ।

३—गाँठको—अपना । सौ मण इ०—सौ मन साबुन लगानेसे भी ।

४—ढेढ—अेक जाति जो प्रायः भोलेपन एव मूर्खता के लिअे प्रसिद्ध है, अतः मूर्ख ।

५—की—क्या । ज्याँरो—उसका ।

६—वुसत—वस्तुएँ । नाणो—पैसा, धन । गाँठै हुयाँ—पासमें होनेसे । क्रोड़—करोड ।

७—बुध—बुद्धि । सुसै—खरगोशने सिंहको भी कुअेमे डाल दिया (हितोपदेश की प्रसिद्ध कथाकी ओर संकेत) ।

१४—उदारता

१—लकपत—रावण । करण—प्रसिद्ध दानी कर्ण ।

नाम रहदा, ठाकराँ । नाणा नही रहद ।
कीरत-हदा कोटडा पाडचा नॉय पडद ॥ २ ॥
दीया वुसत अनूप है, दिया करो सब कोय ।
घरमे धरा न पाइयै, जे कर दिया न होय ॥ ३ ॥६७॥

१५---कजूस

बावन आखरमे वडो नन्नो आखर सार ।
दद्दो तो जाणूँ नही, लल्लै आखर प्यार ॥ १ ॥
सूमण पूछै सूमसूँ, काहे मुख्ख मलीन ? ।
का गाँठीसे गिर पडचा, का काहूको दीन ? ॥ २ ॥
ना गाँठीसे गिर पडचा, ना काहूको दीन ।
देवत देख्या ओरकूँ, ज्यासूँ मुख्ख मलीन ॥ ३ ॥
कीडी पण पावै नही अ-दताराँ घर आय ।
और घरासूँ आणियो, जिको गमाडै जाय ॥ ४ ॥

२--रहंदा--रहता है । ठाकरॉ--हे ठाकुर साहब । हंदा--के । कोटड़ा--किले । पाड़्या इ०--गिरानेसे भी नही गिरते ।

३--दीया--दिया हुआ, दान । दिया--दान, दीपक ।

१५--कंजूस

१--नन्नो--नकार, याचकको इनकार कर देना । दद्दो--दकार, देना । लल्लो--लकार, लेना ।

२--सूमण--कजूसकी स्त्री ।

३--देवत इ०--दूसरेको दान करते देखा । ज्यॉसूँ--उससे ।

४--अदतारॉ--कजूसोके । और--दूसरोके । आणियो--लायी । जिको--वह । गमाड़ै--खो बैठती है । जाय--कजूसके यहाँ जाकर ।

'दियो' सबद सुणतां दुसह तन-मन लागै लाय ।
सूम दियो न करै सदन परब दियाळी पाय ॥ ५ ॥७२॥

१६—परोपकार

घर-कारज सीलावणा, पर-कारज समरथ्थ ।
ज्यॉनै राखै सॉइया आडा दे-दे हथ्थ ॥ १ ॥
मर ज्याऊँ, मॉगूँ नही, निज स्वारथरै काज ।
परमारथरै कारणै मोय न आवै लाज ॥ २ ॥
पछिनके पीयेनते, कहा घटत है नीर ?
खरची लछमी ना घटै, सनमुख जो रुघवीर ॥ ३ ॥७५॥

१७—मधुर भाषण

उपजावै अनुराग, कोयल मन हरखित करै ।
कडवो लागै काग, रसनारा गुण राजिया ! ॥ १ ॥
सुक-पिक लगै सवाद, भल थोडो ही भाखणो ।
व्रथा करै वकवाद, भेक लवै ज्यूँ भैरिया ! ॥ २ ॥

५—लाय—ज्वाला, आग । सदन—घरमे । परब—त्यौहार । दियाळी—दिवाली ।

१६—परोपकार

१—घर इ०—अपने काममे देर करनेवाले । समरथ्थ—तुरत करनेवाले ।

२—ज्यॉनै—उनको । सॉइया—परमात्मा ।

३—पीयेनतें—पीनेसे । लछमी—लक्ष्मी । सनमुख—सानुकूल । रुघवीर—श्रीराम ।

१७—मधुर भाषण

१—कडवो—कटु । काग—कौवा । रसना—जिह्वा, बोली ।

२—सवाद—रुचिकर, स्वादिष्ट । भल—भले ही, चाहे । भेक—मेंढक । लवै—बोलते हैं ।

काागा किसका धन हरै, कोयल किसकूँ देय ?।
मीठो वचन सुणायकर जग अपणो कर लेय ।। ३ ।।
पाटा पीड उपाव तन लागाँ तरवारियाँ ।
वहै जीभरा घाव, रती न ओखद राजिया ! ।। ४ ।।

१८—आदर-भाव

आवत मुख विगसै नही, जावत नहि कुमळाय ।
सम्मन, अैसै नीचकै, नीच हुवै सो जाय ।। १ ।।
आवत ही जो हॅस मिलै, जावत देवै रोय ।
टूटी वाकी झूँपडी सम्मनका घर सोय ।। २ ।।
आव नही, आदर नही, नही भगति, नहि प्रेम ।
हॅस कुसळा पूछै नही, खडा न रहियै, खेम ।। ३ ।।
दादू, आदर-भावका मीठा लागै मोठ ।
विण आदर व्यंजन बुरा, जीमणवाळा ठोठ ।। ४ ।।
आदर करै अपार, तो भोजन भाजी भली ।
आणै मन अहँकार, कडवा घेवर किसनिया ! ।। ५ ।।

४—पाटा इ०—शरीरमे तलवार (का घाव) लगनेपर मलहम-पट्टीसे पीड़ाका उपाय हो सकता है, परन्तु वे जो जीभ के घाव हैं उनकी रत्तीभर भी दवा नही।

१८—आदर-भाव

१—विगसै—खिल जाता है। कुमळाय—कुम्हलाता है ।

३—आव—आवभगत । कुसळा—कुशलक्षेम। खेम—कविका नाम ।

४—मोठ—अेक साधारण अन्न । व्यंजन—पकवान । जीमणवाळा इ०—उनके जीमनेवाले मूर्ख हैं ।

५—भाजी—मामूली सागपातका भोजन । आणै—मनमे अहंकार लावे तो।

हंसा तो तब लग चुगै, जब लग देखै लाग ।
लाग-विहूणा जे चुगै, हस नही ते काग ।। ६ ।।
उठै न आदर-आव, हित चित वात नह्‌वै हुलस ।
परत न दीजै पॉव्, मन तूटॉ-घर, मोतिया ! ।।७।।८६।।

१९—धन-महिमा

धनवाळॉरै धाम जॉण विना जावै स जन ।
निरधणियॉरो नाम कोइ न पूछे, किसनिया ! ।। १ ।।
कोडी विन कीमत नही, सगा न राखै साथ ।
हुवै ज नाणो हाथमे, वैरी बूझै वात ।। २ ।।
दोलतसू दोलत वधै, दोलत आवै दोर ।
जस होवै सब जगतमे, जोबन आवै जोर ।। ३ ।।
दाळद घर दोळो हुवै, परणी नावै पास ।
रुपिया होवै रोकडा, सोरा आवै सॉस ।। ४ ।।
कळजुगमे कळदार विन भायॉ पडियो भेव् ।
जिण घर माया जोरमे, दरसण आवै देव ।। ५ ।।

६—लाग—प्रेम । विहूणा – बिना, रहित ।

७—हित—प्रेम । हुलस—आनदित होकर । परत—प्रत्यक्ष, भूलकर भी । मनतूटॉ—जिनके मनमे प्रेम नही रह गया है उनके ।

१६ —धन-महिमा

१—जॉण—जान-पहचान । निरधणियॉरो—निर्धनोका ।

२—कोडी—धन । सगा—संबधी, भाईबन्धु । हुवै–यदि हो । नाणे–रुपया ।

४—दाळद - दारिद्रय । दोळो हुवै—चारो ओरसे घेर लेता है तो । परणी—स्त्री । नावै (न आवै)–नही आती है । रोकड़ा–नकद । सोरा–सुखपूर्वक ।

५—कळदार—कलदार, रुपया । भायॉ—भाइयोमे । भेव—भेद, फर्क ।

रुपियाँ विन रागाँ करै, हाजर जोडै हात ।
अेक अधेली आडमे, बोळो सुण ले वात ॥ ६ ॥
घरधारी घबराय नै, भणिया माँगै भीक ।
नाणो ले प्रभु-नाँवरो ठरै काळजो ठीक ॥ ७ ॥
बिविध वणाय-वणाय जुगत घणी रचियो जगत ।
कीधी वुसत न काय रुपिया सरसी, राजिया! ॥ ८ ॥
बँध बाँध्या छुडवाय, कारज मनचीता करै ।
कहो चीज है काय, रुपिया सरसी, राजिया! ॥ ९ ॥
गोडो पूछै, गोड़िया ! किसो भलेरो देस ?
सपत होय तो घर भलो, नही भलो परदेस ॥१०॥९६॥

२०—प्रारब्ध

सुण कूँभा, रावण कहै, आण भराणा अक ।
पाँवाँ पडियाँ ना रहै लाखाँ वाताँ लक ॥ १ ॥

६—रागाँ करै—दूसरो के सामने गीत गाते है तो भी कोई नही सुनता । अधेली—अठन्नी । बोळो—बहरा ।

७—घरधारी—घरबारी, गृहस्थी । ने—और । भणिया—पढे हुअे । भीक—भीख । ठरै—शीतल होता है । काळजो—कलेजा ।

८—जुगत—युक्तियाँ । कीधी—की, बनाई । सरसी—समान ।

९—बँध—बंधन । मनचीता—मन द्वारा सोचे हुअे । काय—कोई ।

१०—किसो—कौन-सा । भलेरो—भला । संपत—धन । नही—नही तो ।

२०—प्रारब्ध

१—कूँभा—कुंभकर्ण, रावणका छोटा भाई । आण इ०—होनहार आ पहुँची है । पाँवाँ पडियाँ—पैरो पडनेसे । लाखाँ वाताँ—निश्चयही, लाख उपाय करने से भी ।

हरी लिखाया, वेह लिख्या, लिख-लिख घाल्या अक ।
राई घटै न तिल वधै, रह, रे जीव, निसक ।। २ ।।
नहचै होय निसक, चित नह कीजै चळ-विचळ।
अै विधनारा अक राई घटै न, राजिया ! ।। ३ ।।

सम्मन, संपत-विपतमे जे झूरै ते कूर ।
मासा घटै न तिल वधै जे विध लिख्या अंकूर ।। ४ ।।
उद्दम करो अनेक, अथवा अण-उद्दम करो ।
होसी निहचै हेक राम करै सो, राजिया ।। ५ ।।

अणहोणी होवै नही, होणी हो सो होय ।
लाख सैणप अर क्रोड बुध कर देखो सब कोय ।। ६ ।।
सो वैरी कटवण मिलै, मस्तक लिख्या सो होय ।
लेख लिख्याकूँ, बाळका ! मेट न सक्कै कोय ।। ७ ।।

हिकमत करो हजार, गढपतियाँ जाँचो घणा ।
धीरज, मिलसी, धार करम-प्रवाणै,किसनिया !।। ८ ।।

२—हरी—भगवान । वेह—विधि, विधाता । घाल्या अंक—लेख डाले ।

३—नहचै—निश्चय । नह—नही । चळ-विचळ—विचलित । अै—ये ।

४—कूर—नीच । मासा—अेक तोलेका बारहवाँ हिस्सा । अँकूर-अंक,लेख ।

५—उद्दम—पुरुषार्थ । अण-उद्दम इ०—उद्योग न करो । होसी—होगा । हेक—अेक ।

६—सैणप—सयानपन, चतुराई । क्रोड—करोड । बुध-बुद्धिमानी ।

७—सो—सैकड़ो । कटवण—बुरा करनेवाले ।

८—हिकमत—युक्ति । घणा—बहुत । धीरज इ०—भाग्यके अनुसार मिल ही जायगा अतः धीरज रखो ।

सोनो घडै सुनार, कदोई खाजा करै ।
भोगै भोगण-हार करम-प्रवाणै,किसनिया ! ॥ ९ ॥
दाख भखे मुख पकत है, होत कागकूँ रोग ।
भागहीणकूँ ना मिळै भली वुसतको भोग ॥१०॥
काँ कासी, काँ कासमिर, कहाँ जिला गुजरात ? ।
दाणो-पाणी परसरा ! बाँह पकड ले जात ॥११॥
परालबधका पावणा, देख दईका खेल ।
भम्भीखणनै लक, अर हडूमाननै तेल ॥१२॥१०८॥

२१—उद्योग

राम कहै सुगरीवनै, लका केती दूर ?
आळसियाँ अळघी घणी, उद्दम हाथ, हजूर ॥ १ ॥
उदैराज, उद्दम कियाँ, सब कुछ होवै त्यार ।
गाय-भैंस कुळमे नही, दूध पिवै मजार ॥ २ ॥११०॥

२२—गरज (स्वार्थ)

हुती गरज मन और था, मिटी गरज मन और ।
उदैराज, मनकी प्रकृति, रहै न अेकी ठौर ॥ १ ॥

९—कदोई—हलवाई ।

१२—परालबध इ०—प्रारब्धसे प्राप्ति होती है । दई—विधाता । भम्भीखड—वभीषण । हडूमान इ०—हनुमानजीके तेल-सिंदूर चढाते हैं ।

२१—उद्योग

१—आलसियो इ०—आलसियोके लिअे बहुत दूर है और उद्यम करनेवालोके लिअे हाथहीके पास है ।

२—कियाँ—करने से । त्यार—तय्यार । मंजार—मार्जार, बिल्ली ।

२२—गरज

१—हुती इ०—(जब गरज) थी तब । प्रकृति—स्वभाव । एकी—एक ही ।

मतलबरी मनवार, चुपकै लावै चूरमो ।
मतलब विन मनवार राब न पावै, राजिया ! ॥ २ ॥
गरज-दिवाँणी गूजरी अब आयी घर कूद ।
सावण छाछ न घालती, जेठ परूसै दूध ॥ ३ ॥११३॥

२३—अवसर-नाश

समझदार सूजाण नर औसर चूकै नही ।
औसररो ओसाण रहै घणा दिन, राजिया ! ॥ १ ॥
बधु विदेसाँ उठ गया, तरुणी तज्यो सनेह ।
कृसी नास, पसु मर गया, (अब) दूधाँ वरसो मेह ॥ २ ॥
आधो रहग्यो ऊँखळी, आधो रहग्यो छाज ।
साँगर-सट्टै धण गयी, (अब) मधरो-मधरो गाज ॥३॥

२—मनवार—मनुहार । चूरमो—अेक मिठाई । चुपकै—चुपचाप । राब—राबडी, मट्ठे मे आटा डालकर पकाया हुआ अेक भोजन । पावै—पिलाता है ।

३—गरज-दिवाँणी—गरज से दीवानी बनी हुई । गूजरी—अहीरिन, ग्वालिन । छाछ – मट्ठा । घाल्ती—डाल्ती, देती । परोसै—परोसती है, देती है ।

२३—अवसर-नाश

१—ओसर—अवसर । ओसाण—अहसान । घणा—बहुत ।

२—तरुणी—स्त्री । अब इ०—जब इतनी बाते हो चुकी तब फिर चाहे दूधका ही मेह बरसे तो भी क्या लाभ ?

३—ऊँखळी—ओखलीमे । छाज—शूर्प । साँगर—शमी पेड़की फलियाँ, साधारण निकृष्ट खाद्य । सट्टै—बदले । साँगर इ०—अकालमे मैंने तो साँगरियोके लिअे पत्नीको बेच दिया अब, हे बादल, चाहे तू मीठे स्वरसे गरज, मुझे क्या लाभ ?

घर छूटा, पथी मुवा, वाळा गया वदेस ।
अब भल वूठा मेहडा, व्रसत काह करेस ? ।। ४ ।।११७।।

२४--नशेकी निंदा

१—तमाखू

हे कंता ! कॉई करै, हाय, तमाखू हेत ।
दिन-ऊगॉई टाटमे, दोय टटॉकी देत ।। १ ।।

२—दारू (शराब)

आम फळै परवारसूँ, महू फळै पत खोय ।
ताको रस जे कोई पियै, अकल कठॉसूँ होय ? ।। २ ।।
मद पीतॉ मुजरो करै, ईंको कोण विचार ?
अकल कहै, जी ठाकरॉ ! जाती करूँ जुहार ।। ३ ।।
बुध्ध भ्रष्ट, व्याकुळ वचन, तन नही पावै पोख ।
इण दारूमे कोण गुण, दाम लगै अर दोख ? ।। ४ ।।

४—मुवा—मर गये । वाला—प्यारे । वदेश—परदेश । वूठा—वरसा । काह करेस—क्या करेगा ।

२४—नशेकी निंदा

१—कॉई—क्या । ऊगॉई—उगते ही । टाटमे इ०—दो टके व्यर्थ ही नाश कर देते हो ।

२—परवारसूँ—परिवारके साथ । महू—महुआ । पत—पत्ते । ताको रस—महुवेके रससे शराब बनता है । कठॉसूँ—कहॉसे ।

३—पीतॉ—पीते समय । मुजरो—जुहार, अभिवादन । ईंको—इसका । जाती—जाती हुई, बिदा लेती हुई ।

४—पोख—पोषण, पुष्टि । दारू—शराब । अर—और । दोख—दोष, हानि ।

तन छोजै, जोबन हटै, घटै वयस, धन, धर्म ।
मदगत पसगत अेक-सी, ज्यॉमे हया न शर्म ।। ५ ।।
दारू-परदारा दुहूँ है तन-धनरी हॉण ।
नर ! सॉप्रत देखो नजर नफो और नुकसाँण ।।६।।१२३।।

२५—हिंसाकी निंदा

जीव मार हिसा करै, खाता करै वखाण ।
पीपा, परतक देख ले थाळीमे समसाण ।। १ ।।
खुस खाणा है खीचडी, माँहे टुकियक लूण ।
मॉस पराया खायकै गळा कटावै कूण ।।२।।१२५।।

२६—परस्याँ विना

नीर-तीर तडफै पड्यो, धीर न धारै मीन ।
निकट, तऊ पल है विकट परस्यॉ विना, प्रवीण ? ।। १ ।।
ग्रीखम गिर लाग्या जरन सरवर निकट पुलीन ।
बूझैगो कैसे विपिन परस्यॉ विना, प्रवीण ? ।। २ ।।

५—वयस—उम्र । पस-गत—पशुकी हालत । हया—लज्जा ।
६—हॉण—हानि-कारक । सॉप्रत—प्रत्यक्ष । नफो—लाभ ।

२५—हिंसाकी निंदा

१—खाता—खाते हुए । पीपा—कविका नाम । परतक—प्रत्यक्ष । समसाण—मसान ।
२—खुस—सुखका । लूँण—नमक । कूँण—कौन ।

२६—परस्यॉ विना

१—निकट जल—पास है तो भी । पल है विकट—क्षणक्षण कठिनतासे बीतता है । परस्यॉ विना—बिना छुअे ।
२—गिर—पहाड । पुलीन—किनारा । विपिन—वन (की अग्नि) ।

गगा, जमना, सरसुती लहर त्रिवेणी लीन ।
निकट गया, पातक रया परस्यॉ विना, प्रवीण ॥ ३ ॥
श्रीमडळ, वीणा, मुरज, धरचा सरस रसभीन ।
मधुरे सुर वाजै नही परस्यॉ विना, प्रवीण ॥ ४ ॥
लोह-पुज इतको धरचो, इत पारस-मणि दीन ।
सो कचन कैसे वणै परस्यॉ विना, प्रवीण ॥ ५ ॥
अमरितको भाजण निकट भरचो धरचो, नही पीन ।
यूॅ देख्यॉ अमर न भया परस्यॉ विना, प्रवीण ॥ ६ ॥
केसर, चदण, कुमकुमा, भरचा कटोरा तीन ।
अग रग लागै नही परस्यॉ विना, प्रवीण ॥ ७ ॥
भोजन लाया थाळ भर कर पकवान नवीन ।
तऊ छुधा भाजै नही परस्यॉ विना, प्रवीण ॥ ८ ॥
निकट जुडी-मुहराधरचा, काम-भुजॅग डस लीन ।
विख व्याप्यौ, उतरै नही परस्यॉ विना, प्रवीण ॥ ९ ॥१३४॥

२७—अन्योक्तियाँ

हसा ! सरवर ना तजो, जे जळ खारो होय ।
डाबर-डाबर डोलताँ भला न कहसी कोय ॥ १ ॥

३—रया—रह गये ।

५—इतको—इधर । दीन—दी, रखी ।

६—पीन—पिया । यूॅ इ०—यो केवल देखनेसे ।

७—कुमकुमा—कुंकुम । भर्‌या—भरे । अग इ०—अंग में रंग आप ही नही लग जाता ।

९—भुजॅग—सॉप । व्याप्यो—व्याप्त हुआ ।

२७—अन्योक्तियाँ

१—जे—यदि, यद्यपि । डाबर—तलैया । कहसी—कहेगा ।

माळी ग्रीखम मॉय, पोख घणो, द्रुम पाळियो ।
जिणरो जस किम जाय अत घण वूठाँ ही, अजा ! ॥ २ ॥
दूध-नीर मिळ दोय एक जिसी आक्रत हुवै ।
करै न न्यारा कोय राजहस विन, राजिया ! ॥ ३ ॥
हसा था सो उड गया, कागा भया दिवान ।
जा, बामण ! घर आपणै, सिघ कैरा जजमान ? ॥ ४ ॥
भ्याड, जोख,झख,भेक, वारिजकै भेळा वसै ।
इसकी भँवरो एक रसकी जाणै, राजिया ! ॥ ५ ॥
जायो तूँ जिण देस, जळ ऊँडा, थोथा थळा ।
भँवरपणारो भेस रळयो कठासूँ, राजिया ! ॥ ६ ॥
कबुतर, तूँ अदभूत, घायल ज्यूँ घूमत फिरै ।
वनमे थोड़ा रूँख किण कारण कूवै पडै ॥ ७ ॥
सूवा, सेमळ देखकै सभी गमायी बुध्ध ।
फूल देखकै रम रह्या, फळकी रही न सुध्ध ॥ ८ ॥

२—ग्रीखम—ग्रीष्म ऋतु । पोख इ०—बहुत पुष्ट करके । जिणरो—उसका । जाय—नष्ट हो । अत इ०—(बादमे) बहुत वर्षा होनेपर भी । आजा—हे अर्जुनसिह ।

३—जिसी—जैसी, समान । आक्रत—आकृति, रूप ।

४—हसा—हस जो पहले दीवान था । बामण—हे ब्राह्मण । आपणे—अपने । कैरा—किसके ।

५—भ्याड़—भिड़ । जोख—जोक । झख—मछली । इसकी—प्रेमी । अेक—केवल अेक ही । रसकी जाणै—रसकी कदर कर सकता है ।

६—जायो इ०—जिस देशमे तू जनमा है वहाँ तो पानी गहरा और जमीन थोथी है, यह रसिकताका रूप तूने कहाँसे प्राप्त किया ।

भूख दूख संकट सहै, सहै विड़ाणा भार।
हरीदास, मौनी बळद कासूँ करै पुकार ? ॥ ९ ॥

घर आयी, निरभै भयी, डाव पड़्याँ यूँ होय।
हरीदास, ता सारकूँ पासा लगै न कोय ॥१०॥

लोहा जळसूँ धोइयै, तब लग काटी खाय।
हरीदास, पारस मिल्याँ मूँघै मोल विकाय ॥११॥

पय कर मीठो पाक जो अमरित सीचीजियै।
उर कडवाई आक रच न मूकै, राजिया ! ॥१२॥

अरहट कूप तमाम ऊमर लग न हुवै इतो।
जळहर अेकी जाम रेळै सब जग, राजिया ! ॥१३॥

मन मैला, तन ऊजळा, बुगला कपटी रंग।
तिणसूँ तो कागा भला तन-मन अेकौ रंग ॥१४॥

तन उजळा, मन साँवळा बुगला कपटी भेख।
इणसे तो कागा भला, बाहर - भीतर अेक ॥१५॥

९—विड़ाणा—पराये। मौनी—चुप रहनेवाला। बळद—बैल। कासूँ—किससे।

१०—निरभै—निर्भय। डाव—दाँव। सार—चौसरकी गोटी। लगै—पहुँचता है।

११—काँटी—काँट, जंग। मिल्याँ—मिलनेसे। मूँघै—महँगे।

१२—पय कर—दूधके मीठे पाक बनाकर यदि अमृतसे सींचा जाय तो भी आक भीतरकी कटुता को जरा भी त्याग नही करता।

१३—जळहर—मेघ। अेकी जाम—अेक ही पहरमे। रेळै—बहा देता है।

१४—साँवळा—काला। भेख—वेश, रूप। इणसे—इनसे।

दादू, हँस मोती चुगै मानसरोवर न्हाय ।
फिर-फिर बैसे बापडा काग करकाँ आय ।।१६।।
हरिया जाणै रूँखड़ा उस पाणीका नेह ।
सूका काठ न जाणई कबहूँ वूढा मेह ।।१७।।
मान-सरोवर माँय जळ प्यासा पीवै आय ।
दादू, दोस न दीजियै, घर-घर कहण न जाय ।।१८।।१५२।।

२८—सामान्य नीति

१

साँई ! इण संसारमे भाँत-भाँतका लोग ।
सबसूँ रिळमिळ चालियै, नदी - नाव संजोग ।। १ ।।
जुगमे मिलणा अजब है, मिल विछड़ो लत कोय ।
विछड़्याँ मिलणा दुलभ है राम करै जद होय ।। २ ।।

१६—बापड़ा—बेचारे । करकाँ—हड्डियो या अस्थिपंजरपर ।
१७—उस—अर्थात् जो बरसता है । जाणई—जानता है (गुण या महत्वको) ।
१८—प्यासा इ०—जिसे प्यास होती है वह स्वय आकर पानी पी लेता है ।

२८—सामान्य नीति

१—इण—इस । रिळमिळ—हिलमिलकर । नदी-नाव-संजोग—संसारमे सारे प्राणियोका साथ अैसा है जैसा नदी पार करनेके लिअे तटपर अेकत्र यात्रियोका; उनमे कोई कहींसे आता है और कोई कहीसे, थोडी देरके लिअे नावमें सबका साथ हो जाता है पर पार पहुँचते ही फिर सब अलग-अलग हो जाते हैं ।

२—जुगमे—संसारमे । अजब—अद्भुत बात । विछड्याँ—बिछुडनेपर । दुलभ—दुर्लभ ।

दरसण-परसण देह लग, सज्जण मिलियै धाय ।
घट छूटॉ, काळू कहै, कोण मिलैगो आय ? ।। ३ ।।
मिलणा जोग सॅजोगका, अपणै वस न वसाय ।
जद गोविद किरपा करै, जद ही मिलियै धाय ।। ४ ।।
खाया सोई खरचिया, दीया सो ही सथ्थ ।
जसवत, धरिया ही रह्या माल विराणै हथ्थ ।। ५ ।।
खाणा-पीणा खरचणा अैस - कुसी आराम ।
करणा हो सो कर लेवो काळॉ केसॉ काम ।। ६ ।।
ऊजड खेडा फिर वसै, निरधणियॉ धन होय ।
वीत्या दिन नह वाडै, मुवा न जीवै कोय ।। ७ ।।
जलम अकारथ ही गयो, भड-सिर खग्ग न भग्ग ।
तीखा तुरी न माणिया, गोरी गळै न लग्ग ।। ८ ।।
इण हिदवाणै मॉयनै, खाणो-पीणो खूब ।
आखर नह रहणो अठै, मर ज्याणो, महबूब ।। ९ ।।

३—देह लग—जब तक शरीर है तभी तक । सज्जण—सज्जनसे । घट छूटॉ—शरीर छूटनेपर । कोण—कौन ।

४—अपणे इ०—अपने वशकी बात नही । जदही—तभी ।

५—धरिया इ०—धरे ही रहे । विराणे—पराये ।

६—अैस—अैशो-आराम । कुसी—खुशी । करणा इ०—जो कुछ करना है सो वृद्धत्व आनेके पूर्व ही कर लो । काळा केसॉ—जब तक केश काले हैं तब तक ।

७—ऊजड इ०—उजड़े गॉव । निरधणियॉ—निर्धनोंके । वावड़ै—लौटते हैं । वीत्या—बीते हुओ । मुआ—मरे हुओ ।

८—अकारथ—व्यर्थ । भड-सिर—योद्धाओके सिरपर तलवार नही तोडी । तीखा तुरी—तेज घोड़े । माणिया—भोगे, आनंद उठाया । गोरी—सुन्दरी ।

९—हिदवाणे—हिदुस्तानमे । आखर—अंतमे । नह—नही ।

धरम घटायाँ धन घटै, धन घट मन घट जाय ।
मन घटियाँ महमा घटै, घटत-घटत घट जाय ।।१०।।
विद्या वाणी हर-भगति हठ कर मिलै न कोय ।
धीरम, सहजै पाइयै जो धरि आगिलि होय ।।११।।
सत मत छोडो, हे नराँ, सत छोड्याँ पत जाय ।
सतकी बाँधी लिच्छमी फेर मिलैली आय ।।१२।।
झूठेकी कुछ पत नही, साजन ! झूठ न बोल ।
लाखपतीका झूठसे दो कोडीका मोल ।।१३।।
कहत भली मानत बुरी, यही जगतकी रीत ।
रज्जब, कोठी गारकी ज्यूँ धोवै त्यूँ कीच ।।१४।।
माखी बैठी सहद पर, पख गया लपटाय ।
पाँख हिलावै सिर धुणै, लालच बुरी बलाय ।।१५।।
अवनी रोग अनेक, ज्याँरा विध कीना जतन ।
इण प्रकृतीरी अेक रची न ओखद, राजिया ! ।।१६।।
समन, परायै व्रागमे दाख तोड खर खाय ।
अपणो कछू न व्रीगडै, असही सही न जाय ।।१७।।

१०—घटायाँ—घटानेसे । घटियाँ—घटनेसे । घटत इ०—घटते-घटते सब कुछ घट जाता है ।

११—हठकर—अपने आप । आगिलि—जो पहलेकी रखी हो, यदि पूर्व-संस्कार सचित हो ।

१२—पत—प्रतिष्ठा, विश्वास । लिच्छमी—लक्ष्मी । मिलेली—मिलेगी ।

१४—गार—कीचड ।

१६—अवनी—पृथ्वीपर । ज्याँरा—उनके । विध—विधाताने । इण इ०—पर इस स्वभावकी अेक भी दवा नही बनाई ।

खूब गधेड़ो खाय पैलॉरी व्राड़ी परे ।
आ अणजुगती आय रडकै चितमे, राजिया ! ॥१८॥

चंदण पड्यो चमार-घर नित उठ कूटै चाम ।
चदण विचारो क्या करै, पड़्यॉ नीचसूँ काम ॥१९॥

डूंगर जळती लाय जोवै सारो ही जगत ।
प्राजळती निज पाय रती न सूझै, राजिया ! ॥२०॥

ऊँचै गिरवर आग जळती सौ देखै जगत ।
पण जळती निज पाग रती न सूझै, राजिया ! ॥२१॥

कळह करयो मत कामणी घोडॉ घी देतॉह ।
आडा कदेयक आवसी वारडली वहतॉह ॥२२॥

आक वटूकै, पवन भख, तुरियॉ आगळ जाय ।
हूँ तनै पूछूँ, सायबा ! हिरण किसा घी खाय ? ॥२३॥

राज, रखै तो च्यार रख, मत राखी चाळीस ।
अै चीळीसूँ भागणा, अै च्यारूँ चाळीस ॥२४॥

१८—पैलॉरी—उनकी, तीसरे लोगोकी जिनसे हमारा कोई संबध नहीं । परे—सामने, उस ओर । अणजुगती—अनुचित बात । रडकै—खटकती है ।

२०—डूगर—पहाड़पर जलती आगको सारा ससार देखता है पर अपने पैरोंके पास जलती हुई किसीको जरा भी नही दिखाई देती ।

२२—हे कामिनी ! घोड़ोंको घी देते समय तू कलह मत करना, व़ार चलते समय ये कभी काम देंगे । वार—चोर-डाकुओका पीछा करना ।

२३—पत्नी ऊपरके कथनका उत्तर देती है—हे पति ! मै तुमसे पूछती हूँ, हिरन कौन घी खाते है ? वे तो आकके पत्तो और हवापर ही गुजारा करते हैं और फिर भी घोडोसे आगे निकल जाते हैं ।

२४—राज—हे राजा । राखी—रखना । भागणा—भागनेवाले । चाळीस—चालीसके वराबर ।

वचन नृपत अविवेक, सुण छीजै स्याणा मिनख ।
अपत हुवाँ तरु अेक रहै न पछी, राजिया ! ॥२५॥
कही न मानै काय जुगती-अणजुगती जठे ।
स्याणाँनै सख पाय रहणो चुपको, राजिया ! ॥२६॥
नदी-नीर अर कृपण-धन हर-कोई हर लेत ।
बळियारी नृप-कूपकी, गुण विन बूँद न देत ॥२७॥
हियो हुवै जो हाथ, तो कुसँगी केता मिळो ।
चनण भुजगाँ साथ कळो न लागै, किसनिया ! ॥२८॥
सीख सरीराँ ऊपजै, दिवी न आवै सीख ।
अणमाँग्या मोती मिलै, माँगी मिलै न भीख ॥२९॥
धीरे-धीरे, ठाकराँ ! धीरे सब कुछ होय ।
माळी सीचै सौ घडा, रुत आयाँ फळ होय ॥३०॥
सोच करै सो सूर है, कर सोचै सो कूर ।
सोच करयाँ मुख नूर है, कर सोच्याँ मुख धूर ॥३१॥

२५—वचन—राजाके अविवेक-भरे वचनोको सुनकर बुद्धिमान् घटने लगते हैं (अविवेकी राजाकी सभाको धीरे-धीरे छोड़ देते है) जैसे पेड़के पत्रहीन होनेपर उसपर अेक भी पक्षी नही रहता ।

२६—काय—कोई भी । जुगती—युक्तिसगत या उचित बात । जठे-जहाँ । स्याणाँने इ०—समझदारोको शाति धारण करके चुप रहना चाहिए ।

२७—बळियारी—बलिहारी है । त्रप—राजा । गुण—सद्गुण, रस्सी । बूँद—थोडा-सा भी द्रव्य, जलकी बूँद ।

२८—हियो इ०—यदि हृदय वशमे हो । केता—कितने हो । चनण—चदन । कळो—कलक, दोष ।

३१—सोच करै—जो सोच-विचारकर काम करता है । कूर—नीच । नूर—तेज, शोभा ।

चदणरी चुटकी भलो गाडो भलो न काठ ।
चातर तो अेक ज भलो, मूरख भला न साठ ।।३२।।
जण-जणरो मुख जोय, नहचै दुख कहणो नही ।
काढ न दे वित कोय रीरायाँसूँ, राजिया ! ।।३३।।
वाँका रह्ज्यो वालमा वाँका आदर होय ।
वाँका वनका लाकडा काट न सक्कै कोय ।।३४।।
घणा सरल वणियै नही देखो ज्यूँ वणराय ।
सीधा-सीधा काटताँ वाँका तरु व्रच ज्याय ।।३५।।
जबर विरोधीअगनजळ, लै निज काज लुहार ।
जबर विरोधी मत्रियाँ सुपह काज लै सार ।।३६।।
पड़वै पोढताँह करड़ावण सै कोइ करै ।
धोराँमे धँसताँह, आँसू आवै, ईलिया ।।३७।।
कहणी मीठी खाँड-सी, करणी विख-सी होय ।
जे कहणी करणी हुवै, विख ही अमरित होय ।।३८।।

३२—गाडो इ०—काठकी भरी हुई गाडी भी अच्छी नही । चातर—चतुर ।

३३—जण-जणरो इ०—प्रत्येक आदमीकी ओर देखकर निश्चय ही अपना दुख नहीं कहते फिरना चाहिअे । दीनतापूर्वक रोनेसे कोई धन निकालकर नही दे देता ।

३४—वाका—टेढे । वालमा—हे प्यारे ।

३५—सरल—सीधे । वणराय—वनराजि, जंगल ।

३६—जबर—प्रबल । अगनजल—अग्नि और पानी । लै इ०—अपने काममे लाता है । मत्रियाँ—मत्रियोसे । सुपह—अच्छा मालिक । लै सार—बना लेता है ।

३७—पड़वे इ०—महलोमे सोते हुअे तो सभी अभिमान करते हैं पर जब टीबोमे चलना पड़ता है तो आँसू निकल आते है ।

कहणी प्रभु रीझै न कछु, रहणी रीझै राम ।
सपनैरी सो मोहरसूँ कोडी सरै न काम ।।३९।।
लाज रखै तो जीव रख, लज विन जीव न रख्ख ।
साँई, तोसूँ वीनती, दोऊँ भेळी रख्ख ।।४०।।
लाजाँ सपत पाइयै, लाजाँ मोटा मान ।
लाज-विहूणा मानवी, ज्याँरा लाँबा कान ।।४१।।
लीह नही, लज्जा नही, नही रग, नहि राग ।
ते माणस इम छडियै जिम अधारै नाग ।।४२।।
कदे न भाजै काय आमाँरी तिस आमल्याँ ।
छोकरियाँ घर छाय, नार न आणै, नाथिया ! ।।४३।।
वडा भया तो क्या भया, सबसे वडा खजूर ।
बैठणकूँ छाँया नही, फळ लागै अत दूर ।।४४।।
मायामिलीतोक्याभया, हिडदा भया कठोर ।
नो नेजा पाणी चढचा, तोय न भीजी कोर ।।४५।।

३९—रहणी—रहनेका ढंग । सपनैरी इ०—सपनेमे पाई हुई सैकड़ो मुहरोसे अेक कौडीका काम भी नही निकल सकता ।

४०—साँई—हे परमात्मा । भेळी—अेक साथ । दोऊँ—दोनो ।

४१—लाजाँ—लज्जासे । मानवी—मनुष्य । ज्याँरा इ०—उनके लबे कान हैं (वे गधे है) ।

४२—लीह—मर्यादा (का ध्यान) । माणस—मनुष्य । इम—अैसे । अंधारे—अधेरेमे ।

४३—कदे इ०-कोई आमकी प्यास इमलीसे कभी नही बुझ सकती, इसी प्रकार यदि अबोध लडकियोसे ही घर (का काम) चल सके तो कोई स्त्रीको क्यों लावे ?

४५—हिडदा—हृदय । नेजा—भाले, लबाईका अेक नाप । तोय—तो भी । कोर—छोर ।

रंदोही होवे मती, मती वसूलो, मित्त ! ।
होवे करवत सारिसो ब्रांटण-खाटण चित्त ॥४६॥

टामण-टामण टोटका कर देखो सै कोय ।
धधै चालै पीवरै आपै ही सब होय ॥४७॥

हुन्नर करो हजार स्याणप चतराई सहित ।
हेत कपट विवहार रहै न छानो, राजिया ! ॥४८॥

सुण-सुण मीठी बोलगत बैठ न वैरी पास ।
दही भरोसै, वावळा खाये कदे कपास ॥४९॥

सूनैमे मत चीज रख, ले ज्या चोर-चकार ।
खाऊ है धन-जीवका सूनो और उजाड़ ॥५०॥

टूटा मत रह टोळसे राव भीडकै ब्रीच ।
एक अकेलै मिनखकूँ सूझै ऊँच न नीच ॥५१॥

४६—रदोही रदा नामक बढईका औजार जो छिली लकड़ीको दूसरी तर्फ फेंक देता है (केवल परमार्थी) । वसूलो—बसूला नामका बढईका औजार जो छिली लकडीको अपनी ओर फेंकता है (स्वार्थी) । होवे मती—मत होना । मित्त—हे मित्र । होवे—होना । करवत—आरा नामका औजार जो छिली लकड़ीको दोनों ओर फेंकता है । सारिसो—समान । ब्रॉटण—बाँटने और खानेवाला ।

४७—टामण-कामण—वशीकरण जादू । टोटका—टोना । कर देखो इ०—सब कोई करके देखलो, उससे पति वशमे नही होता, परन्तु यदि स्त्री पतिके कथनानुसार चले तो सब वशीकरण अपने-आप हो जाते है ।

४८—हुन्नर—हुनर । स्याणप—सयानप । छानो—छिपा हुआ ।

४९—बोलगत—बातें । वावळा—हे बावले । खाये कदे इ०—कभी कपास न खा बैठना । दही भरोसे कपास खावणो—धोखा खाना ।

५०—लेज्या—ले जाय । खाऊ—खानेवाले ।

५१—टूटा—अलग । टोळ—टोली, मडली । राव—हे राव । भीड़—विपत्ति । ऊँच-नीच—भला-बुरा, कर्तव्याकर्तव्य ।

वाड करी छी खेतनै, व़ाड खेतनै खाय।
राजा डडै रैतनै, कूकै किणपर जाय? ॥५२॥
स्याणा तो है भोत-सा, सबसूँ स्याणा छोह।
हीणा देख हो चोगणा, ठाढेपै कम होह ॥५३॥
पडत ओर मसालची, दोऊँ उळटी रीत।
ओर दिखावै चाँनणो, आप अँधेरे वीच ॥५३॥
तीतरपखी वादळी, विधवा काजळ-रेख।
बा वरसे बा घर करै, यामे मीन न मेख ॥५५॥
आगे मिळै न अन्न, रक पछै पावै रिजक।
मैला ज्यॉरा मन्न रहै सदा ही, राजिया! ॥५६॥
वॉस चढी नटणी कहै, होत न नटियो कोय।
मै नटकर नटणी भयी, नटै सो नटणी होय ॥५७॥

५२—वाड—झरबेरीके काटोका घेरा। खेतनै—खेत (की रक्षा) के लिअे। खेतनै—खेतको। डडै—दड देता है। रैतनै—प्रजाको। कूकै—पुकार करे। किणपर—किसके आगे।

५३—भोत-सा—बहुत-से। छोह—क्रोध। हीणा—कमजोर। हो—होता है। ठाढे पै—जबर्दस्तपर।

५४—पडत—पडित। ओर—और, दूसरोको। चॉनणो—प्रकाश।

५५—तीतरपखी—तीतरके पखोके समान। व़ादळी—बदली। बा—वह। घर करै—नया पति करती है। मीन न मेख—कुछ भी फर्क नही।

५६—आगे इ०—जिनको पहले तो खानेको भी न मिलता हो और पीछे धनसंपत्ति या जागीर मिल जाय, अैसे लोगोके मन सदा ही मैले (इतराये) रहते है।

५७—वॉस—बॉसपर खेल दिखाती हुई। नटण—नटकी स्त्री या स्त्री-नट। होत इ० —पास होते हुअे कोई इनकार मत करो। नटकर—इनकार करके।

मायासूँ माया मिळै, मिळै नीचसूँ नीच ।
पाणीसूँ पाणी मिळै, मिळै कीचसूँ कीच ॥५८॥

हित कर हसाँ, कोयलाँ, साधू सगत पास ।
कागाँ, कुताँ, कुमाणसाँ प्रीत तजो, प्रिथुदास ॥५६॥

काळी भोत कुरूप कस्तूरी काँटै तुलै ।
सक्कर वडी सुरूप, नरजाँ तूलै, नाथिया ! ॥६०॥

तुलै जो परबत तोल, मोल नही मूरख-तणो ।
वडै मिनखरा बोल नग-नग भारी, नोपला ! ॥६१॥

हरदी जरदी ना तजै, खटरस तजै न आम ।
असली गुणकूँ ना तजै, गुणकूँ तजै गुलाम ॥६२॥

उपजै ज्याँही खात है कायर कूर कपूत ।
अै परदेसाँमे खपै सायर न्हार सपूत ॥६३॥

ऊँडा जळ सूकै अवस, नीलो वन जळ ज्याय ।
चुगल-तणा पग-फेरसूँ वसती ऊजड ज्याय ॥६४॥

---

५९ — हित कर—इनसे प्रेम करो । प्रिथुदास—महाराज पृथ्वीराज (बीकानेर) ।

६०—भोत—बहुत । काँटा – छोटा तराजू जिसपर बहुमूल्य वस्तुअे तोली जाती हैं । नरज—बड़ा तराजू ।

६१—तुलै—चाहे तोलमें पर्वतके बराबर तुलें तो भी मूर्खके वचनोका कोई मोल नही होता और बडे मनुष्योंके बोल नग जितने हो तोभी भारी (बहुमूल्य) होते हैं ।

६२ — जरदी—पीलापन । खटरस—खट्टापन । गुण—अपनी विशेषता । गुलाम—दोगला ।

६३— ज्याँही—वही । अै—ये । खपै—गुजारा करते हैं । सायर—शूर ।

६४—ऊँडा—गहरे । अवस—अवश्य । नीळा—हरेभरे । पगफेर—आगमन । वसती—बस्ती ।

रोग, अगन, अर राड़, जाण अलप कीजै जतन ।
व्रधियाँ पछै विगाड़ रोक्यौ रुकै न, राजिया ।।६५।।
पहली कियाँ उपाव्र दव, दुसमण, आमय दटै ।
प्रचँड हुवाँ वस वाव रोभा घालै, राजिया ।।६६।।
खेती-पाती वीनती, परमेसुररो जाप ।
परहाथाँ ना कीजियै, निडर कीजियै आप ।।६७।।
दुखिया आगै दुख कह्यो, आधो दुख ले लेय ।
सुखिया आगै दुख कह्यो, हँस-हँस ताळी देय ।।६८।।
सुख-सपत अर औदसा, सब काहूको होय ।
ग्यानी काटै ग्यानसूँ, मूरख काटै रोय ।।६९।।
समझूनै चिता घणी, मूरखनै नहि लाज ।
भलै-बुरै की खबर नहि, पेट भरणसूँ काज ।।७०।।
तुळसी तहाँ न जाइयै जलम - भोमकै गाँव ।
गुण-औगुण जाणै नही, धरै पाछलो नाँव ।।७१।।

६५—अगन—अग्नि । अर—और । राड—झगडा । अलप—अल्प, थोड़े हो तभी । वृधियाँ—बढ जानेपर । रोक्यो—रोकनेपर भी ।

६६—पहली—पहले । कियाँ—करनेसे । दव—अग्नि । आमय—रोग । दटै—दबते हैं । प्रचड इ०—वायुके प्रकोपसे प्रचंड होनेपर । रोभा—टीस ।

६७—परहाथाँ—दूसरेके द्वारा । आप—स्वय ।

६८—कह्यो—कहा । ताळी देय—ताली बजाता है ।

६९—ओदसा—बुरी दशा । काटै—दुखके दिनोके बिताता है ।

७०—समझूने—समझदार को ।

७१—जलमभोम—जन्मभूमि । पाछलो नाँव—बचपनका अनादर-सूचक ओछा नाम लेकर पुकारते हैं (स्वामी रामदासजी अपने पुराने गाँव मे पहुँचे तो लोग चिल्ला उठे—अरे रामलो आयो रे रामलो आयो) ।

लोग चुगल कानाँ लग्या, घूघू बोल्यो गेह ।
भायाँसूँ भेळप नही, विपत लिखी विधि तेह ।।७२।।
सम्मन, पूँछ ज स्वानकी सरै न अेकौ काज ।
माँखि उडावणकी नही, ढकै न तनकी लाज ।।७३।।
मूसा नै मजार हितकर बैठा हेकठा ।
सब जाणै ससार रस नह रहसी, राजिया ! ।।७४।।
निस-दिन निरभै नीद सपनैमे आवै न सुख ।
दुनियामे नर दीन करजैसूँ हुवै, किसनिया ! ।।७५।।
कहणी जाय निकाम आछोडी आणी उगत ।
दामाँ-लोभी दाम, रँजै न वाताँ, राजिया ! ।।७६।।
भावै जहाँ छिपाइये, साँच न छाँनो होय ।
सेस रसातळ, गगन धू, परगट कहियै सोय ।।७७।।
आवै नही इलोळ, बोलण-चालणरी विविध ।
टीटोडयाँरी टोळ राजहसरी, राजिया ! ।।७८।।

७२—चुगल—चुगलीखोर । कानाँ लग्या—कान लगेहुअे । घुघू—उल्लू । गेह—घरमे । भायाँसूँ इ० —भाइयोसे प्रेम नही । तेह—वहाँ, उसके लिअे ।

७३—स्वान-कुत्ता । अैकौ—अेक भी । सरै—बनता है । माँखि—मक्खियाँ ।

७४—चूहा और बिल्ली प्रेम करके अेक-साथ बैठे है पर यह बात सारा संसार जानता है कि उनका प्रेम अत तक नही निभेगा ।

७५—निरभै—निर्भय । सुख—सुखसे । करजैसूँ—ऋण लेनेसे ।

७६—दामोके लोभीके आगे अच्छी-अच्छी उक्तियाँ लाकर कही हुई बात भी व्यर्थ जाती है । वह तो दामसे ही रीझता है, बातोसे नही ।

७७—छाँनो—गुप्त । धू—ध्रुव । परगट इ०—तो भी वे प्रकट रहते हैं ।

७८—आवै इ०—टिटिहरियोकी मंडलीमे किसीको राजहसका-सा बोल-चालका ढंग नही आ सकता ।

जगमे दोठो जोय, हेक प्रगट विवहार म्हे ।
काम न मोटो कोय, रोटी मोटी, राजिया ! ॥७९॥
लिछमी कर हरि लार, हरनै दध दीधो जहर ।
आडबर इधकार राखै सारा, राजिया ! ॥८०॥
धोबो मुट्ठी धान मॉगै ज्यॉनै ना मिलै ।
पट काढै पकवान ना-ना करतॉ, नाथिया ! ॥८१॥
आछा हुवै उमराव, हियाफूट ठाकर हुवै ।
जडिया लोह जडाव, रतन न फाबै, राजिया ! ॥८२॥
रीझ्यॉ देय न मोज, चूक्यॉ चट चेतो करै ।
ज्यॉ ठाकररी चोज रती न आवै, राजिया ! ॥८३॥
गुण विन ठाकर ठीकरो, गुण विन मीत गँवार ।
गुण विन चदण लाकड़ी, गुण विन नार कु-नार ॥८४॥
चौसठ दीवा, हे सखी, बारा रवी तपत ।
घोर ॲधारो तिण घरै, जिण घर सुत न रमंत ॥८५॥

७९—जोय—देखकर । दीठो—देखा । हेक—अेक । म्हे—हमने ।

८०—हरि—विष्णु । लार—पीछे । हरने—शिवको । दध—उदधि, समुद्र । इधकार—खयाल, सम्मान ।

८१—जो मॉगता है उसे धोबा या मुट्ठी भर धान भी नही मिलता पर ना-ना करनेवालेके लिअे लोग झटपट पकवान निकालकर लाते हैं ।

८२—जडिया ई०—लोहेमे जडे हुअे रत्नोकी तरह शोभा नही देते ।

८३—जो रीझनेपर इनाम नही देता पर कोई भूल होनेपर तुरत सावधान हो जाता है, उस ठाकुरके लिअे दिलमे रत्ती भर भी प्रेम नही होता ।

८४—ठीकरो—ठिकरा । लाकड़ी—साधारण लकडीके बराबर ।

८५—चौसठ—चौसठ । दीवा—दीपक । बारा रवी—बारह सूर्य । रमंत—खेलता है ।

(२)

मिरग न वाज्यो वायरो, अदरा न वूठ्यो मेह ।
जोबन न जायो बेटडो, तीनूँ हारी देह ॥८६॥

नीद न आवै तीन जण, कहो सखी, ते क्याह? ।
प्रीत-विछोया, बहु-रिणा, खटकै वैर हियाह ॥८७॥

रण चढ्ढण, ककण बँधण, पुत्र वधाई चाव ।
अै तीनूँ दिन त्यागरा, कहा रक, कहा राव ॥८८॥

ध्रम जातॉ, धर पलटतॉ, त्रिया पडतॉ ताव ।
अै तीनूँ दिन मरणरा, कहा रक, कहा राव ॥८९॥

मॉग्या मिळै न च्यार पूरब पूरा दत्त विन ।
विद्या, अर वर नार, सपत गेह, सरीर सुख ॥९०॥

८६—मृग-नक्षत्रमे हवा नही चली, आर्द्रा-नक्षत्रमे पानी नही बरसा और यौवन-अवस्थामे पुत्र उत्पन्न नही किया तो ये तीनो व्यर्थ ही हुअे ।

८७—तीन मनुष्योको निद्रा नही आती । हे सखी, कहो वे कौन हैं । अेक तो प्रेमका विरही, दूसरा बहुत कर्जवाला, और तोसरा जिसके हृदयमे बैर खटक रहा है ।

८८—क्या रंक और क्या राजा—सबके लिअे ये तीन दिन दान करनेके हैं—(१) जब युद्धके लिअे चढना हो, (२) जब विवाह-कंकन बँधे और (३) जब पुत्रोत्त्पतिकी बधाई तथा उत्सव होते हों ।

८९—क्या रक और क्या राजा—सबके लिअे ये तीन दिन मरणके है—(१) जब धर्म जाता हो, (२) जब अपनी जमीन हाथसे जाती हो, और (३) जब स्त्रीपर विपत्ति पड़ती हो ।

९०—पूरब इ०—पूर्वके पूरे सुकृतोके बिना । दत्त—दान । वर—अच्छी

नाज पुराणो, घी, नयो, आग्याकारी नार।
पथ तुरी चढ चालणो, पुन्न-तणा फळ च्यार ॥९१॥

साठी चाव़ळ, भैस दुध, घर सिळवती नार।
चौथी पीठ तुरंगरी, सुरग-निसाणी च्यार ॥९२॥

लूखो भोजन, भू सुवण, घर कळहारी नार।
चोथा फाटचा कापडा, नरक-निसाणी च्यार ॥९३॥

कालर खेत, कसूत हळ, घर कळखारी नार।
मैला जिणरा कापडा, नरक-निसाणी च्यार ॥९४॥

मीठा बोलण, नवि चलण, परओगण ढकि लीन।
तीन्यूँ चगा, नानका, चौथो हत्थाँ दीन ॥९५॥

धन, जोबन, अर ठाकरी, तिण ऊपर अविवेक।
औ च्यारूँ भेळा हुवै, अनरथ करै अनेक ॥९६॥

९१—तुरी—घोड़ा। पुन्न-तणा—पुण्यके।

९२—दुध—दूध। सिळवती—शीलवती, सुशीला। पीठ—अर्थात् सवारी। सुरगनिसाणी—स्वर्गके लक्षण।

९३—लूखो—रूखा। भू इ०—पृथ्वीपर सोना। कळियारी—कलहशीला। फाट्या—फटे हुअे।

९४—कालर—ऊसर। कसूत—सीधा न चलनेवाला। कळखारी—कलह करनेवाली। कपडा—कपड़े। निसाणी—चिन्ह।

९५—नवि चलण—नम्र होकर चलना। पर इ०—दूसरेके दोषोको छिपा देना। तीन्यूँ इ०—नानक कहते हैं कि तीनो अच्छे हैं। हत्थाँ दीन—हाथसे देना।

९६—ठाकरी—ठकुराई, प्रभुता। भेळा—अेकत्र।

सीतळ, पातळ, मद गत, अलप अहार, निरोस ।
अै तिरियाँमे पाँच गुण, अै तुरियाँमे दोस ॥९७॥

(३)

बळता तो दीपक भला, टळता भला विघन्न ।
गळता तो वैरी भला, वळता भला सुदिन्न ॥९८॥

चावळ तो चडियो भलो, पड़ियो भलो ज मेह ।
भाग्यो तो वैरी भलो, लाग्यो भलो ज नेह ॥९९॥

रिण तूटा सूरा भला, फाटा भला कपास ।
भागा भला अबोलणा, लागा चदण-वास ॥१००॥

माता तो मैंगळ भला, ताता भला तुरग ।
जाता तो वैरी भला, राता भला ज रंग ॥१०१॥

बैगण तो काचा भला, पाकी भली अनार ।
प्रीतम तो पतळा भला, जाडा जाट - गिँवार ॥१०२॥

काचर, केळो आम फळ, पीव़, मित्र, परधान ।
इतरा तो पाका भला, काचा कोइ न काम ॥१०३॥

९७—सीतळ—शीतल स्वभाव । पातळ—पतला होना । गत—चाल । निरोस—रोष न आना । अै—ये । तिरियाँ—स्त्रियो । तुरियाँ—घोड़ो ।

९८—बळता—जलते हुअे । टळता—दूर होते हुअे । गळता—नाश होते हुअे । वळता—लौटते हुअे । सुदिन्न—अच्छे दिन ।

९९—चड़ियो—चढ़ा हुआ (शुभ अवसरोंपर चावल चढ़ाया जाता है) ।

१००—रिणतूटा—युद्धमे हत या आहत । अबोलणा—शत्रु । वास—सुगध ।

१०१—माता—मस्त । मेंगळ—हाथी । ताता—तेज । राता—लाल ।

१०२—जाडा—मोटे ।

१०३—काचर—कचरी । केळो—केला । पीव़—पति । परधान—कामदार, दीवान । इतरा—इतने । पाका—पक्के, बड़ी उम्र के, दृढ-स्नेही, वृद्ध, अनुभवी ।

केळो, केरी, कामणी, पीव मिंत्र, परधान ।
इतरा तो पाका भला, काचा नावै काम ॥१०४॥
पाणी, राणी, पगरणी, पासो, पिसण, पळेव ।
इतरा तो पतळा भला, सत भाखै सहदेव ॥१०५॥
सेल, अरिगण, पाँगरण, पतळा भला ज अेह ।
इतरा तो जाडा भला, रूँख, कडँूबो, मेह ॥१०६॥
जवड़ी, चूडी जायफळ, विडँग, सुपारी, वैण ।
इतरा तो भारी भला, साह, धणी, अर सैण ॥१०७॥
कान, आँब, मोती, करम, गढ, तड़, ढोल, भँडार ।
अै फूटा किण कामरा ताल, तोप, तरवार ॥१०८॥
खतर खेत खल काकड़ी, दाडम भरम कपास ।
फाटाँ फूल गुलाबरो, आत सुगधी वास ॥१०९॥
मोडा, टोडा, बाकरा, चोथी विधवा नार ।
इतरा तो भूखा भला, धाया करै खुवार ॥११०॥

१०४—केरी—कच्चा आम । काचा—कच्चे । नावै—नही आते ।

१०५—पाणी—पानी । राणी—रानी । पिसण—दुष्ट, शत्रु ।

१०६—सेल—भाला । जाडा—मोटे, गहरे, घने । कडँूबो—कुटुंब ।

१०७—साह—सहूकार । धणी—मालिक । सैण—मित्र ।

१०८—करम—भाग्य । किण इ०—किस कामके ।

१०९—भरम—भ्रम, अज्ञान ।

११०—मोडा—सिर मुँडाये हुअे साधु । टोडा—ऊँट । बाकरा—बकरे । इतरा—इतने । धाया—पेट भरे हुअे । खुवार—खराबी, सत्यानाश ।

(४)

सरवर सारू जळ रहै, पिड सारू परकत्त ।
कर सारू कीरत रहै, मन सारू बरकत्त ॥१११॥

सोना व़ाया न नीपजै, मोती न लागै डाळ ।
रूप उधारा ना मिलै, भूल्या फिरो, जमाल ॥११२॥

चितामें बुध परखियै, टोटै परख त्रियाह ।
सगा कु-वेळॉ परखियै, ठाकर गुन्हो कियॉह ॥११३॥

भूख न जाणै भावतो, प्रीत न जाणै जात ।
नीद न जाणै साथरी, ज्यॉ सूता त्यॉ रात ॥११४॥

देणो भलो न बापरो, बेटी भली न अेक ।
पैडो भलो न कोसरो, साहब राखै टेक ॥११५॥

सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवणरी वात ।
जोबण-छायी धड भली, तारॉं छायी रात ॥११६॥

१११—सारू—प्रमाण, अनुसार । परकत्त—प्रकृति । कर—हाथ, दान । बरकत्त—बरकत ।

११२—व़ाया—बोनेसे ।

११३—बुद्ध—बुद्धि । टोटै—धन-नाशके समय । सगा—संबंधी । कु-वेळॉ—आपत्तिके समयमे । ठाकर—मालिक । गुन्हो—अपराध करनेपर ।

११४—भावतो—अन्न अच्छा लगने वाला है या नही । साथरी—सेज । सूता—सोये ।

११५—देणो—देना, ऋण । पैडो-चलना । साहब-परमात्मा । टेक—इज्जत ।

११६—सोरठियो—सोरठराग का । मरवण—ढोला-मारवणीकी । व़ात—कहानी । छाई—भरी हुई । धण—स्त्री ।

सोरठियो दूहो भलो, घोड़ो भलो कुमेत ।
नारी तो नवली भली, कपडो भलो सुपेत ।।११७।।

रागाँ मीठी सोरठी, चौपड़ मीठी सार ।
सेजाँ मीठी कामणी, रण मीठी तलवार ।।११८।।

छाजैरी बैठक बुरी, पर-छावणरी छाँय ।
धोरैरो रसियो बुरो, नित उठ पकडै बाँय ।।११९।।

ग्यारस, गोरी, गगजळ, भोजन भला ज खीर ।
वसबो तो व्रतको भलो, मरबो गगा-तीर ।।१२०।।

नितरो भलो न वरसणो, नितरी भली न धूप ।
नितरो भलो न बोलणो, नितरी भली न चूप ।।१२१।।

मोराँ विन डूंगर किसा, मेह विन किसी मलार ? ।
त्रियाँ विना तीजाँ किसी, पिव विन किसा तिवार ? ।।१२२।।

कत विना काँइ कामणी, सरवर विन काँइ नीर ? ।
सास विना काँइ सासरो, खाँड विना काँइ खीर ? ।।१२३।।

क्या पाणीका बुदबुदा, क्या बाळूकी भीत ? ।
क्या ओछैका आसरा, क्या दुरजणकी प्रीत ? ।।१२४।।

११७—कुमेत—स्याही लिये लाल रगका घोड़ा । नवली—नवयुवती । सुपेत—सफेद ।

११८—सोरठी—सोरठ राग । चौपड—चौसर । सार—गोटे ।

११९—पर-छाँवण—दूसरेके छाजनकी । धोरैरो—पासका । रसियो—प्रेमी । बाँह—हाथ । सासरो—ससुराल ।

१२०—ग्यारस—अेकादशी । गोरी—स्त्री ।

१२२—डूँगर—पहाड़ी । किसी—कौन-सी, क्या । मलार—अेक राग । तीजाँ—सावणकी तीजोंके त्यौहार । सासरो—ससुराल । १२३—क इ—क्या ।

जळरी सोभा कमळ है, दळरी सोभा फील।
धनरी सोभा धरम है, कुळरी सोभा सीळ ॥१२५॥
भँवरोव्याकुळ मध विना, कोयल विना वसत।
तियव्याकुळदरसणविना, जीव विना भगव त ॥१२६॥
विना वसीलै चाकरी, विना सुपारी पान।
अै तीनूँ फीका लगै, अर विन ढाल जवान ॥१२७॥
नारी-मडण नाहलो, धरती-मडण मेह।
पुरखाँ मडण धन सही, यामे नहि सदेह ॥१२८॥
ज्याँका ऊँचा बैसणा, ज्याँका खेत निवाण।
ज्याँका वैरी क्या करै, ज्याँका मीत दिवाण ॥१२९॥
डाढ खटक्कै काँकरो, फूस खटक्कै नैण।
कहियो खटकै आकरो, विछड्यो खटकै सैण ॥१३०॥
साध सरावै सो सती, जती जोखता जाण।
रज्जब, साँचे सूररो, वैरी करै वखाण ॥१३१॥
हस तरंतो परखियै, पाणी नदी वहत।
सोनो कसी परक्खियै, माणस वात कहत ॥१३२॥

१२५—दळ—सेना। फील—हाथी। सीळ—सदाचरण।
१२६—मध—मधु, पुष्परस। दरसण—प्रियतमका दर्शन।
१२७—वसीला—सिफारिश करनेवाला। जवान—युवा योधा।
१२८—मडण—शोभा। नाहलो—पति।
१२९—बैसणा—बैठना, स्थान। निवाण—नीचा। ज्याँका—उनका। दिवाण—दीवान, प्रधानमन्त्री।
१३०—काँकरो—कंकर। आकरो—कठोर। सैण—मित्र।
१३१—जोखता—स्त्री। जती इ०—यती वही है जिसे स्त्री सराहे। वखाण—तारीफ।
१३२—तैरता हुआ। कसी—कसौटी।

डूम न जाणै देव-जस, सूम न जाणै मोज ।
मुगल न जाणै गउ-दया, चुगल न जाणै चोज ॥१३३॥
वड़ बुगलैसूँ वीगडै, वानरसूँ वण-राय ।
गाँव कु-ठाकर वीगड़ै, वंस कपूताँ जाय ॥१३४॥
रोळ विगाडै राजनै, मोल विगाड़ै माल ।
सनै-सनै सरदाररी, चुगल विगाडै चाल ॥१३५॥
सूरज-वैरी गहण है, दीपक - वैरी पौन ।
जीको वैरी काळ है, आताँ रोकै कोण ? ॥१३६॥
मितरसूँ अतर नही, वैरीसूँ नहि नेह ।
प्रीतमसूँ पडदो नही, जिण निरखी सब देह ॥१३७॥
चदह वैरी वादळो, जल—वैरो सेव्राळ ।
माणस-वैरी नीदड़ी, माछाँ वैरी जाळ ॥१३८॥
ठग कामेती, ठोठ गुर, चुगल न कीजै सैण ।
चोर न कीजै पाहरू, ब्रहसपतीरा वैण ॥१३९॥

१३३—डूम—शृंगार रसके गीत गानेवाली अेक नीच जाति । देव-जस—भक्तिरसके भजन । मुगल—मुसल्मान । चोज—सुभाषित ।

१३४—वड—बड़का पेड़ । वणराय—जगल । जाय—नष्ट होता है ।

१३५—रोळ—शासनप्रबंधका अभाव । मोल—मोलभाव ।

१३६—गहण—ग्रहण । पोन—पवन । आताँ—आते हुअे ।

१३७—अतर—फर्क, दुराव । पड़दो—पर्दा, छिपाव ।

१३८—सेवाळ—सेवार घास । माणस—मनुष्य । माछाँ—मछलियोका ।

१३९—कामेती—कामदार, प्रधान, दीवान । ठोठ—मूर्ख । सैण—मित्र । पाहरू—पहरेदार । ब्रहसपती—बृहस्पति । वैण—कथन ।

घोड़ाँ दूभर भादवो, भैसाँ दूभर जेठ ।
मरदाँ दूभर पीसणो, नारी दूभर पेट ॥१४०॥
वाताँ रीझै वाणियो, रागाँसूँ रजपूत ।
बामण रीझै लाड़वाँ, बाकळ रीझै भूत ॥१४१॥
रागाँरो पति कान्हड़ो, धरतीरो पति इद ।
ताराँरो पति चद्रमा, सतन पति गोविद ॥१४२॥

(५)

विद्या,भळपण,समँद-जळ, ऊँच तणो-आकास ।
ऊतर-पंथ, र देवगत, पार नही प्रिथुदास ॥१४३ ॥
सरणाई सुहडाँह, केसरि-केस,भुजग-मणि ।
चढत हाथ मुवाँह सती-पयोधर,कृपण-धन ॥१४४॥
साध, सती, अर सूरमा, ग्यानी, अर गजदत ।
उळट पूठ फेरै नही, जो जुग जाय अनत ॥१४५॥

१४०—दूभर—असह्य । भादवो—भाद्रपदका महीना । पेट— गर्भ ।

१४१—वाणियो—बनिया । रागाँसूँ—गानेसे । बामण—ब्राह्मण । लाडवाँ—लड्डुओ से ।

१४२—इंद—इंद्र ।

१४३—भलपण—भलाई । समँद—समुद्र । ऊँच इ०—आकाशकी ऊँचाई । ऊतरपंथ—उत्तरदिशाका मार्ग । देवगत—भाग्य की गति । पार इ०—इनका कोई पार नहीं ।

१४४—वीरोका शरणग्रहण, सिहके बाल, साँपकी मणि, पतिव्रताके स्तन और कंजूसका धन—इतनी चीजे इनके मरनेके बाद ही दूसरोके हाथ चढ़ सकती हैं (दूसरो को मिल सकती हैं) ।

१४५—उल्ट इ०—चाहे अनंत युग बीत जायँ तो भी पीछे नही हटते ।

सिघ-सॅगम, सुपुरस-वचन, कदळि फळै इकसार ।
तिरिया तेल, हमीर हठ, चढै न दूजी वार ॥१४६॥
वेस्या नेह, जुवार धन, काती अबर छार ।
पाछल पौर, अऊत घर, जात न लागै वार ॥१४७॥
पूनम चाँद, कुसुंभ रॅग, नदी-तीर द्रुम-डाळ ।
रेत भीत, भुस लीपणो, अ थिर नही, जमाल ॥१४८॥
दुतिया चाँद, मजीठ रॅग, साध-वचन—प्रतिपाळ ।
पाहण रेख, र करम-गत, अै नहि मिटत, जमाल ॥१४९॥
आँधो नाग, अभागियो, मदवो, मायादार ।
परत न चालै पाधरा, समझावो सौ वार ॥१५०॥
लोहा, लकडा, चामडा, पहलाँ किसा वखाण ?
वहू, वछेरा, डीकरा, नीमटियाँ परवाण ॥१५१॥
जाँट, जॅवाई, भाणजा, रैबारी, सोनार ।
इतरा कदे न आपणा, कर देखो व्यवहार ॥१५२॥

१४६—तिरियातेल—स्त्रीके विवाहके समय तेल चढाया जाता है । हम्मीर—रणथभौर का सुप्रसिद्ध चौहानवशीय राजा । हठ चढणो—हठ पकडना ।

१४७—जुवार—जुवारी । काती—कार्तिक महीना । पाछल पोहर—पिछला पहर, सध्या । अऊत—कुपुत्र । जात—नाश होते ।

१४९—पाहण रेख—पत्थरपर बनाई हुई लकीर । करम-गत—कर्मोकी गति ।

१५०—अभागियो—अभागा मनुष्य । मदवो—नशेबाज । मायादार—धनवान । परत—भूलकर भी । पाधरा—सीधे ।

१५१—डीकरा—बच्चे । नीमटियाँ इ०—अत तक अच्छे रहे तो प्रशसाके योग्य हैं, पहले प्रशसा करने से क्या ?

१५२—जॅवाई—जामाता, दामाद । रैबारी—ऊँट चरानेवाली अेक जाति । आपणा—अपने ।

पासो, भैंसो, अगन, जळ, ठग, ठाकर, सोनार।
इतरा होय न आपणा, अज, वानर, कूँभार ॥१५३॥
आसक, नट-साधन, सती, सूराँ सहबो सेल।
अडापड़ीकी वात नहि, खराखरीको खेल ॥१५४॥
आटो-कूटो, घी, घडो, छूटाँ केसाँ नार।
विना तिलक बामण मिळै, निहचै खूटो काळ ॥१५५॥
काचो पारो, ब्रह्म-रस, सिव-निर्मायळ खाय।
नाथ कहै, रे बाळका! जड़ामूलसूँ जाय ॥१५६॥
विद्या, बिदु, सनेह, धन, नाखो अै न कुठाम।
अै उण ठोड़ाँ नाखिये, जे आवै फिर काम ॥१५७॥
क्या कामण, क्या कवितरस, क्या धानुख्ख सराँह?।
लोयण, मन, तन लागताँ, सीस न धुणियै ज्याँह ॥१५८॥

१५३—पासो—चौसरकी गोट। अज—बकरा।

१५४—आसक—प्रेमी। सेल—भाले।

१५५—निहचै—निश्चय ही। खूटो काळ—आयु समाप्त हो गई।

१५६—ब्रह्म-रस—ब्राह्मणका धन। सिव-निर्मायळ—शिवजीके चढा हुआ भोग आदि। जाय—नाश हो जाता है।

१५७—बिदु—वीर्य। नाखो—डालो। कुठाम—अयुक्त स्थानमे।

१५८—वह कामिनी क्या जिसके आँखोमे लगते ही सिर न धुनना पड़े, वह कविता क्या जिसके मनमे लगते ही सिर (आनन्दके मारे) न धुनना पड़े, और वह धनुषका बाण क्या जिसके लगते ही सिर (पीड़ाके कारण) न धुनना पड़े।

सेराँ, मदवाँ, घायलाँ, गळती माँझळ रात ।
घोड, चिड़ाँ, पारेवडाँ, तिस लागै परभात ॥१५९॥
चाकर,चकव्वो,चतर-नर, निस-दिन रहत उदास ।
खर, घघ्घू, मूरख, पसू, सदा सुखी, प्रिथुदास ॥१६०॥

(६)

चगा माढू घर रह्याँ, अै तिन अवगुण होय ।
कपड़ा फाटै, रिण वधै, नाँव न जाणै कोय ॥१६१॥
जोबन दरब न खट्टिया ज्याँ परदेसाँ जाय ।
गमिया यूँ ही दीहडा मिनख-जमारै आय ॥१६२॥
दीयेका गुण तेल है, दीया मोटी वात ।
दीया जगमे चानणा, दीया चालै साथ ॥१६३॥
जो मत पाछे सचरै, सो मत पहली होय ।
काज न विणसै आपणो, दुरजण हँसै न कोय ॥१६४॥

१५९—गळती इ०—मध्यरात्रि बीतते समय । चिड़ाँ—पक्षियोको । पारेवड़ाँ—कबूतरोको । तिस—प्यास ।

१६०—मिलाओ दूहा सामान्य नीति न० ७०

१६१—स्वस्थ पुरुषके घर पडे रहनेसे ये तीन हानियाँ होती हैं—(१) कपड़े फटते हैं, (२) ऋण बढता है, और (३) कोई नाम भी नही जानता (इसलिये घर मे न पडे रहकर परदेश जाना चाहिये) ।

१६२—जिन्होने परदेश जाकर युवावस्थामे धन नही कमाया उन्होने मनुष्य-जन्म लेकर दिन योही (व्यर्थ) गँवा दिया ।

१६३—दीया—(१) दीपक (२) दिया हुआ (दान किया हुआ) । चानणा—प्रकाश, उजाला । साथ इ०—मरनेके बाद साथ चलता है ।

१६४—जो बुद्धि बादमे जाकर (काम बिगड़ने पर) आती है वह यदि पहले ही आ जाय तो न अपने कार्यका नाश हो और न शत्रु हँसी करे ।

भूम परक्खो, हे नराँ ! कहा परक्खो वीद ? ।
भुँय विन भला न नीपजै कण,तृण,तुरी, नरीद ।।१६५।।३१७।।
।।३३८।।

१६५—हे मनुष्यो, भूमि (स्त्री) की परीक्षा करो, वर की क्या परीक्षा करते हो (वरके लिअे परीक्षा करके अच्छी कन्या ढूँढो, कन्याके लिअे अच्छे वरको ढूँढनेकी आवश्यकता नही—यदि कन्या अच्छी है तो वर चाहे जैसा हो ! क्योंकि जबतक भूमि अच्छी नहीं होगी तबतक उससे उत्पन्न अनाज, घास, घोडा और मनुष्य भी अच्छे नही हो सकते (अच्छे अनाज और घासके लिअे अच्छी भूमिकी आवश्यकता है और अच्छे घोडे और मनुष्यके लिअे माताका अच्छा होना आवश्यक है) । भूमि—क्षेत्र, खेत, माता ।

———

३. वीर

१—सामान्य

जननी ! जण अहडा जणे, कै दाता कै सूर ।
नातर रहजे बॉझडी, मती गमाजे नूर ॥ १ ॥
इळा न देणी आपणी, रण-खेतॉ भिड जाय ।
पूत सिखावै पालणै मरण-वडाई माय ॥ २ ॥
हूॅ बळिहारी राणियॉ, जाया वस छतीस ।
सेर सलूणो चूर ले सीस करै वगसीस ॥ ३ ॥
आहव नै आचार वेळ्यॉ मन आघो वधै ।
समझ कीरती सार, रॅग छै ज्यॉनै, राजिया ! ॥ ४ ॥
झालर वाज्याँ भगतजन, बंब वज्याँ रजपूत ।
अेतॉ ऊपर ना उठै, आठूॅ गॉठ कपूत ॥ ५ ॥

१—सामान्य

१—हे जननी ! यदि पुत्र जने तो अैसा जनना, जो या तो दाता हो या शूरवीर; नही तो बॉझ रहना पर निकम्मे पुत्रको जनकर अपने यौवनको नष्ट न करना ।

२—अपनी जमीन किसीको न देना और रणक्षेत्रमे भिड़ जाना—इस प्रकार माता पलनेमे ही (झूलते हुअे) पुत्रको मरने की महिमा सिखाती है ।

३—मै राजपूत-रानियो—वीरनारियो—पर बलिहारी जाता हूॅ जिन्होने छत्तीस वशके राजपूत वीरोको जन्म दिया जो नमकके साथ सेर चून लेकर अपना सिर मालिकके लिअे दे देते हैं ।

४—युद्ध और सदाचार पालनके समय जिनका मन, इन्हीको कीर्त्तिका सार समझकर, आगे बढ़ता है उनको धन्य है ।

५—झालरके बजनेपर भक्त-जन और युद्धका नगारा बजनेपर राजपूत उठ बैठते हैं । इतनेपर जो नही उठते वे पूरे कपूत हैं ।

सिघाँ देस-विदेस सम, सिघाँ किसा वतन्न ?
सिघ जका वन संचरै, वै सिघाँरा वन्न ।। ६ ।।
केहर कुभ विदारियो, गज-मोती खिरियाह ।
जाणे, काळै जळदसूँ ओळा ओसरियाह ।। ७ ।।
केहर हाथळ घाव कर कुजर ढिगलो कीध ।
हसाँ नग, हरनूँ तुचा, दाँत किराताँ दीध ।। ८ ।।
सादूळो वन सचरै करण गयदाँ नास ।
प्रबळ सोच भँवराँ पडै, हँसाँ होय हुलास ।। ९ ।।
घाल घणा घर पातळा आयो थहमे आप ।
सूतो नाहर नीद सुख, पोहरो दियै प्रताप ।।१०।।

६—सिहोके लिअे देश और विदेश बराबर हैं। सिहोके कौन-से स्वदेश होते है ? सिह जिन वनोमें पहुँच जाते हैं वे ही वन सिहोके स्वदेश हो जाते हैं।

७—सिहने हाथीका कुभस्थल फोड़ दिया जिससे गजमोती बिखर पडे। अैसा जान पडता है मानो काले बादलसे ओले बरसने लगे हो।

८—सिंहने अपनी हथेलीसे घाव करके हाथीका ढेर कर दिया और हंसों-को मोती, महादेवजी को गज-चर्म और भीलोको गजदत दिये।

९—गजेन्द्रोका नाश करनेवाला शार्दूल (सिह) वन मे फिर रहा है। भँवरोको भारी चिता होने लगी है और हंसोको हर्ष हो रहा है (भँवरे मद-जलके लोभसे हाथीके माथेको घेरे रहते हैं—हाथीके मरनेसे उन्हे मद-जल नही मिलेगा इसलिअे वे चितित हो रहे हैं; और हंसोको मोती मिलेगे इसलिअे वे हर्षित हो रहे हैं)।

१०—बहुत-से घरो को पतला बनाकर (अर्थात् बहुत-से जीवोको मारकर) सिह अपने घरमें आया और सुखपूर्वक निद्रा मे सो रहा। उनका पहरा स्वय उसका प्रताप देने लगा (उसके प्रतापसे भय खाकर कोई शत्रु उसे हानि

गाज इतै, ऊखेळ गज ! मॉझळ दळ तरु-मूळ ।
जागै नह थहमें जितै सज हाथळ सादूळ ॥११॥

राहब ! उट्ठ, कमाणगर ! मूँछ मरोड, म रोय ।
मरदॉ मरणा हक्क है, रोणा हक्क न होय ॥१२॥

कटकॉ तबल खुड़क्किया, होय मरद्दॉ हल्ल ।
लाज कहै मर जीवडा, वैस कहै घर चल्ल ॥१३॥

इक कर वैस विलग्गियै, इक कर लग्गिय लाज ।
वय कह जोगिणपुर चलहु, लाज कहै भिड़ राज ! ॥१४॥

अण-विस्वासी जीवडा ! कायर ! किम दौड़ैह ? ।
मरसी कोठै लोहरै, ऊबरसी चौडैह ॥१५॥

पहुॅचानेके लिअे नही आ सकता—सच्चे वीरको पहरेदारोकी कोई आवश्यकता नही होती ।)

११—हे उद्धत हाथी, यहॉ पेड़के नीचे पत्तोके बीचमे तू तब तक गरजता रह जब तक अपनी गुफामें वह सिंह, हथेलीको ऊँचा करता हुआ, नही जाग उठता है (उसके जागते ही तेरा गरजना बन्द हो जायगा) ।

१२—हे धनुषधारी राहब ! तू उठ और अपनी मोछमे बल दे, रो मत क्योकि मर्दोंके लिअे मरना उचित है, रोना उचित नही ।

१३—सेनामे नगाडे बज उठे और वीरोमे हल्ला हो रहा है । इस समय लोक-लज्जा तो यह कहती है कि, अरे जीव, प्राण दे दे पर जीवन (की माया) कहती है कि अरे ! घर चला चल ।

१४—अेक ओर जीवनकी आशा लगी है और अेक ओर लोकलज्जा लगी है । जीवनकी आशा कहती है कि दिल्ली वापिस लौट चलो और लज्जा कहती है कि अरे ! तुम भिड़ जाओ ।

१५—हे विश्वास-हीन जीव, अरे कायर, क्यो दौड़ता है ? लोहेकी कोठीमे

काची गार किलै, साँचा माँहे सूरमा ।
भेळचा - केम भिळै, राजाँ कोप्याँ राजिया ! ।।१६।।

कारण कटक न कीध, सखरा चाहीजै सु-पह ।
लक विकट गढ लीध रीछ-वानराँ राजिया ।।१७।।

सूरा सोइ पिछाणियै, लड़ै धरमकै हेत ।
पुरजा-पुरजा कट पडै, कदे न छोडै खेत ।।१८।।

कृपण जतन धनरो करै, कायर जीव-जतन्न ।
सूर जतन उणरो करै, जिणरो खाधो अन्न ।।१६।।

नर,जिणसिर गालबनही दुसमणरा सौ दाव ।
बे-पढियाँ ही, वाँकला, बै पढियाराँ राव ।।२०।।

जाकर भी मरना पडेगा; और खुलेमे रहकर भी बच सकता है (या, यहाँ युद्धमे यशरूपी देह पाकर स्पष्ट ही बच जायगा) ।

१६—किला चाहे कच्चो गारसे ही बना हो पर यदि भीतर रहनेवाले सच्चे शूरवीर हैं तो. वह राजाओके कुपित हो (कर चढाई कर) ने पर भी, किस प्रकार विध्वस्त हो सकता है ?

१७—सेनाका कुछ कारण नही (सेना चाहे जैसी हो), उसके स्वामी शूरवीर होने चाहिअे । देखा, लका जैसे विकट किलेको साधारण रीछ-बन्दरोने ले लिया ।

१८—उसे ही शूर समझना चाहिअे जो धर्मके लिअे लड़ता है और जो, चाहे पुर्जे-पुर्जे होकर कट पड़े तो भी, युद्धक्षेत्रसे नही भागता ।

१९—कजूस अपने धनकी रक्षाका यत्न करता है और कायर अपने जीवकी रक्षाका । पर शूरवीर उसकी रक्षाका यत्न करता है जिसका अन्न उसने खाया है (शूर प्राण देकर भी नमकका बदला चुकाता है) ।

२०—बाँकीदास कहते हैं कि अैसे मनुष्य, जिनपर शत्रुका दाँव नही विजय पाता, बिना पढ़े हुअे ही पढ़े हुओके राजा हैं ।

जसवंत गरुड न उड्डही ताळी त्रिजड़ तणेह ।
हाँकळिया ढूला हुवै पछी अवर पुणेह ॥२१॥

भूँडण तो भूँडा जणै, हिरणी जणै सुगट्ठ ।
पान खडक्कै उठ चलै, थागड चालै थट्ठ ॥२२॥

दस जूता, दस जूतणा, दस पाखती वहत ।
अैक धवळा वायरा खेचाताण करत ॥२३॥

गाधारी सौ जनमिया, कुता पॉच जणेह ।
वै पॉचूं रण जीतिया, घणचक काह करेह ? ॥२४॥

दिन-दिन भोळो दीसतो, सदा गरीबी सूत ।
काकी कुजर कॉटतॉ जाणवियो जेठूत ॥२५॥

२१—जसवतसिह कहते हैं कि तलवार की धमक होनेपर भी गरुड़ पक्षी नही उड़ता पर दूसरे पक्षी हॉक लगाते ही भयभीत हो जाते हैं।

२२—शूकरी कुरूप पुत्रोको जनती है और हिरनी सुन्दर सतानको जन्म देती है पर ये (हिरनीके बच्चे) पत्तेका खुड़का होते ही भाग छूटते हे और ये (शूकरीके बच्चे) बडी शानके साथ धीरे-धीरे चलते हैं (सुन्दर किंतु कायर संतानसे कुरूप किंतु वीर संतान कही अच्छी)।

२३—दस बैल जुते हुअे हैं, दस जोतनेको हैं और दस पासमे खाली चल रहे हैं। इतना होनेपर भी एक धवले बैलके बिना सब खीचातान ही कर रहे हैं (काम ठीकसे नही होता)।

२४—गाधारीने सौ पुत्र जने और कुन्तीने केवल पॉच। पर उन पॉचोने ही युद्धमे विजय पाई। व्यर्थ भीड़से क्या लाभ ?

२५—जेठका लड़का अपनी चाचीको प्रतिदिन भोलाभाला और गरीब स्वभावका दिखाई देता था परतु आज उसे हाथियोको काटता हुआ देखकर चाचीने उसकी वास्तविकताको जाना।

ढोल सुणंताँ मंगळी, मूँछाँ मूँह चढंत ।
चॅवरीमे पोछाणियो, कॅवरी मरणो कत ॥२६॥

ग्रीव् नमाडैं देखणो, करणो शत्रु सिराँह् ।
परणताँ धण परखियो, ओछी ऊमर नाह् ॥२७॥
मैं परणती परखियो, तोरणरी तणियाँह् ।
घर-धण लाँबी पहरताँ, पहरै घण जणियाँह् ॥२८॥

मैं परणंती परखियो, मूँछाँ भिडियो मोड ।
जासो सुर्ग न अेकलो, जासी दळ सजोड़ ॥२९॥

मै परणती परखियो, नाह् भरै वळ नाड ।
पडै न रणमे अेकलो, पडती केता पाड ॥३०॥

२६—मागलिक विवाह-वाद्यको सुनकर वरकी मोछे भौहो से जा लगती हैं, अैसे पति को देखकर वधूने विवाह-मडपमे ही जान लिया कि वह मरनेवाला (प्राणोकी पर्वाह न करनेवाला) है ।

२७—वर गर्दन नीची करके देखनेवाला और शत्रुओंको विजय करनेवाला है। अैसे वरको देखकर वधूने विवाहके समय ही जान लिया कि वह कम आयु-वाला है (युद्धमें पीछे हटनेवाला नही, अतः शीघ्र ही मारा जायगा) ।

२८—मैने विवाहके समय तोरणकी तणियोमे ही पतिकी परीक्षा कर ली कि यदि उसकी घरवाली लॉबी नामका शोक-वस्त्र पहनेगी तो पहननेवाली वह अकेली ही नही होगी और भी बहुत-सी स्त्रियाँ उसे पहनेगी (अर्थात् वह अकेला नही मरेगा, कइयोको मारकर मरेगा) ।

२९—मैने विवाह के समय देखा कि पतिका मोड (विवाह का मौर) मूँछोसे लगा हुआ है अतः मैंने जान लिया कि वह स्वर्ग जाते समय अकेला नही जायगा, दल सजाकर जावेगा (युद्धमें कितनोको मारकर मरेगा) ।

३०—मैने विवाह के समय देखा कि पतिके माथेमे बल पड़े रहे हैं अतः

मैं परणंती परखियो, साजन साचै मन्न ।
खाग-तणै बळ खावसी, अधपतियाँरो अन्न ॥३१॥

मैं परणती परखियो, वागाँ माँहि सनाह ।
लायो साथ लिखायकर ओछी ऊमर नाह ॥३२॥

सखी ! हमीणै कथरी पायी आ परतीत ।
हारयो घराँ न आवसी, आसी ओ रणजीत ॥३३॥

सखी, हमीणै कथरी पूरी या परतीत ।
कै जासी सुर-द्रगडै, कै आसी रण जीत ॥३४॥

सखी, हमीणै कथरी, उरसाँ खाग अडै ।
पर-दळ ऊभाँ नह पडै, पर-दळ जीत पडै ॥३५॥

मैने जान लिया कि (युद्धभूमिमे) वह अकेला नहीं गिरेगा किंतु कितनोको गिराकर तब गिरेगा ।

३१—मैने विवाहके समय ही पतिकी परीक्षा कर ली कि वह सच्चे मन-वाला है और अपनी तलवारके बलसे राजाओंका अन्न खावेगा ।

३२—मैने विवाहके समय पतिकी परीक्षा की । वह वरके जामेके भीतर कवच पहने था । अतः मैने जान लिया कि पति साथमे थोड़ी आयु लिखाकर लाया है ।

३३—हे सखि ! मैने अपने पतिका यह विश्वास पा लिया है कि वह हारा हुआ घर कभी नही आवेगा, आवेगा तो युद्धको जीतकर ही आवेगा ।

३४—हे सखि ! पति का यह पूरा भरोसा है कि या तो वह स्वर्ग जायगा या युद्धको जीतकर ही घर आवेगा ।

३५—हे सखि ! मेरे पतिकी तलवार छातीसे भिड रही है । जब तक शत्रु-की सेना खड़ी है तब तक वह नही गिरेगा, वह शत्रुकी सेना को जीतकर ही युद्धभूमिमे गिरेगा ।

नाह न आणी नीदमे अेडी ठोड अँगूठ ।
सो, सजनी ! किम देयसी, पर-दळ भिडियाँ पूठ ॥३६॥

सखी ! तम्हीणा कथनै घेरयो घणाँ जणाँह ।
सिर वहुराँ, मुख मगणाँ, वैरी चहूँ वळाँह ॥३७॥

वित वहुराँ, दत मंगणाँ, वैरी खाग-झळाँह ।
साराँनै चूकावसी, जे ऊभो कुसलाँह ॥३८॥

भाभी ! देवर अेकलो, सोचीजै न लगार ।
मूझ भरोसो नाहरो, फौजाँ ढाहणहार ॥३९॥

अह भग्गा पारक्कड़ा, तो सखि ! मूझ पियेण ।
अह भग्गा अम्हे-तणा, तो तिह जूझ पडेण ॥४०॥

३६—पतिने नींदमे भी अँगूठेकी ठौरपर अेड़ी नही दी । हे सखी ! वह, शत्रुकी सेनासे भिड़नेपर, पीठ कैसे देगा ?

३७—हे सखी ! तुम्हारे कतको बहुत लोगोने घेर लिया है—सिरको महाजनोने, मुखको याचकोने, और बैरियोने चारो ओरसे ।

३८—(ऊपरवाले दूहेका उत्तर) यदि वह कुशलपूर्वक खड़ा रहा तो सबको चुका देगा—महाजनोको धनसे, याचकोको दानसे, और शत्रुओको खडगकी ज्वालाओसे ।

३९—(देवरानीका कथन जेठानीके प्रति) हे भाभी ! यह मत सोचना कि देवर अकेला है । मुझे अपने पतिका पूरा भरोसा है कि वह सेनाओका समूल विध्वंस करनेवाला है ।

४०—हे सखी ! यदि शत्रुओके सैनिक भागे है तो मेरे पतिके कारण । और यदि हमारे सैनिक भागे हैं तो अवश्य ही वह युद्धमे वीरगतिको प्राप्त हुआ है ।

जो मूवा तो अत भला, जो उबरचा ता सार ।
बेहुँ प्रकारॉ, हे सखी ! मादळ घूमै वार ।।४१।।

ढोल वजतॉ, हे सखी ! पति आयो मुझ लेण ।
वागॉ ढोलॉ हूँ चली पतिरो वदलो देण ।।४२।।

साई सूँ सॉची रहूँ, वाज, वाज, रे ढोल ! ।
पंचनमे मोरी पत रहै, सखियनमे रह बोल ।।४३।।

पथी ! एक सॅदेसडो बाबलनै कहियाह ।
जायॉ थाळ न व्रज्जिया, टामक टहटहियाह ।।४४।।

धीर नगारो राजरो गह भरियो गाजै ।
दोख्यॉरा मन औधकै, सोख्यॉरा छाजै ।।४५।।

४१—युद्धमे पति यदि मर गया तो बहुत अच्छा है और यदि बच गया तो फिर क्या कहना । हे सखी ! दोनो प्रकार से द्वारपर हाथी घूमेगे (उत्सव होगा) ।

४२—हे सखी ! विवाहके समय पति ढोल बजाता हुआ मुझे लेने आया था । आज मै उसका बदला चुकानेके लिअे ढोल बजाती हुई उसके साथ जा रही हूँ (सती होनेके लिअे) ।

४३—हे ढोल ! तू बारबार बज, मै अपने स्वामीके प्रति सच्ची रहूँ, पॉच लोगोमे मेरी प्रतिष्ठा रहे, और सखियोमे मेरा नाम रह जाय ।

४४—हे पथिक ! मेरा अेक छोटा-सा सदेशा पितासे जाकर कह देना कि मे जन्मके समय तो तुमने थाली भी नही बजाई थी पर आज मेरे लिअे मोटे-मोटे ढोल बज रहे है । (इस प्रकार तुम्हारा नाम भी मैने समुज्ज्वल किया है ।)

४५—पत्नीका कथन वीरके प्रति—तुम्हारा गभीर नादवाला नगाड़ा गम्भीर स्वरसे गरज रहा है जिसको सुनकर शत्रुओके मन चौक उठते हैं और मित्रोके मन उल्लसित होते हैं ।

कंता ! रिणमे पैसताँ तू मत कायर होय ।
तुम्हे लज्ज, मुझ मेहणो, भलो न भाखै कोय ।।४६।।

सूरा ! रणमे जायकै लोहा करो निसक ।
ना मुझ चढै रँडापणो, ना तुझ चढै कळंक ।।४७।।

भागे मत तूँ कंथडा ! तो भाग्ये मुझ खोड ।
मोरी संग सहेलड़्याँ, ताळी दे मुख मोड़ ।।४८।।

अमल कचोळाँ ऊझलै, हौदाँ केसर रंग ।
पीव ! जकै घर जाँवताँ सीस न लीजै सग ।।४६।।

कंथा ! रणमे पैसिकै काँइ जुवै छै साथ ? ।
साथी थारै तीन है,–हियो, कटारी, हाथ ।।५०।।

४६—हे कंत ! रणमे प्रवेश करते समय तुम कायर मत हो जाना। इससे तुम्हें लज्जा उठानी पड़ेगी, मुझे ताना मिलेगा, और कोई भी इसे अच्छा नहीं बतावेगा।

४७—हे शूर ! रणमे जाकर निःशंक होकर हथियार चलाओ जिससे न तो मुझे वैधव्य भोगना पड़े और न तुम्हे कलक लगे।

४८—हे प्यारे कंत, तुम युद्धभूमिमे जाकर मत भागना। तुम्हारे भागने से मुझे कलक लगेगा—मेरी साथ की सहेलियाँ मुख फिरा-फिराकर ताली बजावेगी (मेरा उपहास करेगी)।

४९—कटोरेमे अफीम उछल रहा है और हौदोमे केशरिया रग; हे प्रियतम ! उस घरको (युद्धभूमिको) जाते समय सिरको साथमे नही लेना चाहिओ।

५०—हे कत ! रणमे प्रवेश करके अब साथको क्या देखते हो ? तुम्हारे तीन बड़े भारी साथी हैं—वीर हृदय, कटारी और कटारी चलानेवाला हाथ।

२—वीर क्षत्राणीका उपालंभ

मतवाळा ही पोढग्या, सुधबुध दोन्ही भूल।
पर-हाथाँरा हो गया, यो हिड़दामे सूळ ॥ १ ॥
दुसमण देसाँ लूँटकर, लै ज्यावै परदेस।
राजन! चुडल्याँ पहर लो, धरो जनानो भेस ॥ २ ॥
तनपर साड़ी ओढ़कर, महलाँ बैठा जाय।
अन्यायी दिन-दिन अठै जोर जमाना जाय ॥ ३ ॥
दूध लजायो मायरो, कीनो देस गुलाम।
कै सलाम खुद झेलता, कर दिया खुद्द सलाम ॥ ४ ॥
कहाँ गई वा वीरता, कहाँ रजपूती शान ?।
टुकडाँरा मोजात हो, खो बैठ्या अभिमान ॥ ५ ॥
रजपूती सत खो दियो, सतहीणा सरदार।
पतहीणा रजपूत हो, मतहीणा भरतार ॥ ६ ॥
पराधीन भारत हुयो, प्यालाँरी मनवार।
मात्रभूम परतन्त्र हो, वार-वार धिरकार! ॥ ७ ॥

२—वीर क्षत्राणीका उपालम्भ

१—पोढग्या-सो गये। पर-हाथाराँ—पराधीन। हिड़दा—हृदय। सूळ—दुःख।

३—महलाँ—महलोमे, जनानेमे। जोर इ०—अपनी प्रबलता और प्रभुता जमाते जाते है।

४—मायरो—माताका। का—या तो। झेलता—स्वीकार करते थे। कर इ०—स्वय सलाम करने लगे।

५—मोजात—मुहताज।

७—हुयो—हुआ। प्यालाँरी—शराबके प्यालोकी। मनवार—मनुहारसे (शराब पीते-पिलाते हुअे)। मात्रभूम—मातृभूमि। धिरकार—धिक्कार।

तीतर लवा बटेर अर, सुस्सा सूर सिकार।
इणहाँ रजपूती नही, नाम सिघ रखणार ॥ ८ ॥
विष खावो, कै शरण लो, सरवरियारी थाह।
कै कठाँ विच घाल लो घाघरियारी घाह ॥ ९ ॥
वीरपणो धारण करो या कायरता छोड।
वैरी लोहो मान ले, मूँडो लेवै मोड ॥१०॥
वस्त्र कसूमल पहर लो, कसो कमर तलवार।
बरछी और कटार ले, हुवो तुरँग-असवार ॥११॥
पाछा फिर मत झाँकज्यो, पग मत दीज्यो टार।
कट भल जाज्यो खेतमे, पर मत आज्यो हार ॥१२॥
सीज राजरी होय, तो हूँ भी चालूँ साथ।
दुसमण भी फिर देख ले म्हाँरा दो-दो हाथ ॥१३॥
यो सुवाग खारो लगै, जद कायर भरतार।
रडापो लागै भलो, होय सूर सिरदार ॥१४॥६४॥

८—इणहाँ—इनमे। नाम इ०—तुम तो 'सिह' यह नाम धारण करनेवाले हो (राजपूतोके नामोके अतमे 'सिह' पद होता है)।

९—सरवरिया इ०—सरोवरकी गहराईमे। कै—अथवा। घाल लो—डाल लो। घाघरिया इ०—लहँगा पहन लो।

१०—लोहो मान लै—लोहा मान ले, पराजय मान ले। मूँडो इ०—मुख मोड़ लें, पीठ दिखा दे।

११—कसूमल—कुसूमी रंगके।

१२—भल—भले ही, चाहे। खेतमें—रणक्षेत्रमे। आज्यो—आना।

१३—सीख—आज्ञा। राजरी—आपकी। हूँ—मै। दो-दो हाथ—दो-दो हाथ करना, वीरताका युद्ध।

१४—यो इ०—जब पति कायर हो तो वह सौभाग्य भी बुरा लगता है पर यदि वह शूरवीर हो तो वैधव्य भी अच्छा है।

३—विशेष वीर

(क)—*उदयपुर (मेवाड)*

१ – महाराणा प्रतापसिंह

माई, अेहा पूत जण, जेहा राण प्रताप ।
अकबर सूतो औधकै, जाण सिराणै सॉप ॥ १ ॥
धर वॉकी, दिन पाधरा, मरद न मूकै माण ।
घणॉ नरिदॉ घेरियो रहै गिरदॉ राण ॥ २ ॥
पातळ राणा, प्रवाड मल, वॉकी घडा-विभाड ।
खूँदाडै कुण है खुरॉ तो ऊभॉ मेवाड ? ॥ ३ ॥
पातळ पाघ प्रवॉण सॉझी सॉगाहर-तणी ।
रही सदालग, राण ! अकबरसूँ ऊभी अणी ॥ ४ ॥
चोथो चीतोडाह ! वॉटो वाजती-तणो ।
माथै मेवाडाह ! थारै राण प्रतापसी ॥ ५ ॥

३—विशेष वीर

१—हे माता ! अैसे पुत्रोको जन्म दे जैसा राणाप्रताप है जिसके कारण प्रतापी सम्राट् अकबर सोता हुआ चौक पडता है मानो सिरहाने सॉप आ बैठा हो ।

२—उसकी भूमि अत्यन्त विकट है, उसके दिन सानुकूल है, वह वीर अपने मानको नही छोडता, वह राणा अनेक राजाओसे घिरा हुआ पहाड़ोमे रहता है ।

३—विकट सेनाओका नाश करनेवाले अद्‌भुतकर्मा वीर राणा प्रताप ! तेरे खड़े हुअे मेवाडको कौन खुरोमे रौद सकता है ?

४—सॉगाके वंशज प्रतापकी पगडी ही सच्ची और प्रामाणिक है जो अकबर के सामने सदैव सीधी खडी रही ।

५—हे चित्तोडवाले ! बजती हुई घडियालका चौथा भाग (पावघडी अर्थात् पाघड़ी यानी पगड़ी), हे मेवाड़वाले राणा प्रताप ! तुम्हारे ही सिरपर है ।

अइहो अकबरियाह ! तेज तुहालो तुरकडा ! ।
नम-नम नीसरियाह, राण विना सह राजवी ! ॥ ६ ॥

सह गावडियै साथ अेकण वाडै वाडियो ।
राण न मानो नाथ, ताँडै साँड प्रतापसी ॥ ७ ॥

पहु गोधळिया पास, आळूधा अकबर अणी ।
राणो खिमै न रास प्रघळो साँड प्रतापसी ॥ ८ ॥

महाराज पृथ्वीराजका पत्र

पातळ जो पतसाह बोलै मुख हूँताँ वयण ।
मिहर पिछम दिस माँह ऊगै कासपराव-उत ॥ ६ ॥

पटकूँ मूँछाँ पाण, कै पटकूँ निज तन करद ।
दीजै लिख, दीवाण ! इण दो महली वात इक ॥१०॥

६—अरे तुर्क अकबर ! तेरा तेज अद्भुत है जो अेक राणाके सिवाय सारे राजा झुक-झुककर तेरे सामनेसे निकले ।

७—अकबरने गायोके सब साथको अेक ही बाडेमे बन्द कर दिया पर राणा रूपी साँडने उसकी नाथ (नाकका बधन) को नही स्वीकार किया और खड़ा हुआ गर्ज रहा है ।

८—बैलोंके समान राजा लोग अकबरके पाशमे बँध गये परन्तु राणा-रूपी जबर्दस्त साँड़ उसकी रस्सीको सहन नही करता ।

९—यदि प्रताप मुँहसे अकबरके लिअे बादशाह यह शब्द कहे तो राजा कश्यपका पुत्र सूर्य पश्चिम दिशामे उदय हो (जैसे सूर्यका पश्चिममे उगना असभव है वैसे ही प्रतापका अकबरको बादशाह कहकर पुकारना असभव है) ।

१०—हे अेकलिंगके दीवान महाराणा ! मै अपनी मूँछोपर ताव दूँ अथवा अपने शरीरपर तलवार चला लूँ ? इन दोनोमे से अेक बात लिख दो ।

महाराणा प्रतापका उत्तर

तुरक कहासी मुख पतै इण तनसूँ, इकलग ।
ऊगै ज्यॉही ऊगसी प्राची वीच पतग ॥११॥
खुसी-हूँत, पीथळ कमध ! पटको मूँछॉ पाण ।
पछटण है जेतै पतो कलमॉ सिर कैवाण ॥१२॥
सॉग मूँड सहसी स को, सम-जस जहर सवाद ।
भड पीथळ, जीतो भलॉ वेण तुरकसूँ वाद ॥१३॥

आढा दुरसा कृत—

अकबर घार अँधार, ऊँघाणा हिदू अवर ।
जागै जग-दातार पोहरै राण प्रतापसी ॥१४॥
अकबर समॅद अथाह, तिहँ डूबा हिदू-तुरक ।
मेवाडो तिण मॉह पोयण-फूल प्रतापसी ॥१५॥

११—भगवान् अेकलिग इस शरीर (अर्थात् जन्म) मे प्रतापके मुखसे अकबरके लिअे तुर्क शब्द ही कहलवायेंगे और सूर्य जहॉ उगता है वही, पूर्व दिशामे, उगेगा ।

१२—हे राठोड पृथ्वीराज ! खुशीसे अपनी मोछोपर ताव दो जबतक यवनोके सिरपर तलवार पछाडनेके लिअे प्रताप जीवित है ।

१३—यह प्रताप अपने माथेपर सॉगका प्रहार सहेगा क्योकि बराबरवालेका यश मनुष्यके लिअे विष जैसा (असह्य) होता है । हे वीर पृथ्वीराज ! तुर्कके साथ वचनोके विवादमे विजयी होवो ।

१४—अकबर घोर अन्धकार है जिसमे दूसरे सब हिदू निद्रा-वश हो गये । परन्तु जगतका दातार राणा प्रतापसिह पहरेपर खडा जाग रहा है ।

१५—अकबर गहरा समुद्र है । उसमे हिदू और मुसलमान सभी डूब गये । परन्तु उस समुद्रमे मेवाड़का राणा प्रतापसिह कमलके फूलकी भॉति ऊपर ही स्थित है ।

अकबरियै इक वार दागल की सारी दुनी ।
अणदागल असवार रहियो राण प्रतापसी ॥१६॥

अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा ।
पुन-रासी परताप! सुजस न जासी, सूरमा ! ॥१७॥

अकबर ! गरब न आँण, हीदू सह चाकर हुवा ।
दीठो कोई दिवाण, करतो लटका कटहडै ? ॥१८॥

मन अकबर मजबूत, फूट हीदवाँ बेखबर ।
काफर—कौम—कपूत पकड़ूँ राण प्रतापसी ॥१९॥

अकबर कीन्हा आद, हीदू नृप हाजर हुवा ।
मेदपाट – मरजाद पग लागो न प्रतापसी ॥२०॥

१६—अकबरने अेक ही बारमे सारी दुनिया (के घोडो) के दाग लगवा दिया परन्तु राणा प्रतापसिह बिना दागे हुअे घोडेपर ही सवार रहा (अकबरने अपने अधीनस्थ सरदारो आदिके घोडोके दाग लगवानेकी प्रथा जारी की थी) ।

१७—अकबर स्वय चला जायगा और दिल्ली भी दूसरोके हाथोमे चली जायगी । पर हे शूरवीर और पुण्यकी राशि प्रतापसिह, तेरा सुयश कभी नही जायगा ।

१८—हे अकबर, तू यह गर्व मत कर कि सब हिदू तेरे चाकर बन गये । क्या किसीने दीवाॅण (महाराणा प्रतापसिंह) को कटहरेके आगे लटके करते देखा है ? (कटहडे—बादशाहके सिहासनके कटहरा लगा रहता था । लटका—तमाशा, ख्याल, झुक-झुककर सलाम करना) ।

१९—असावधान हिन्दुओमें परस्पर फूट है और अकबरका मन दृढ है । वह सोचता है कि काफिरोकी कौममे केवल प्रतापसिह ही कपूत रह गया है (बाकी तो सभी सपूतोकी भाॅति मेरा कहना मानते हैं) । उसे भी पकड़ लूॅ ।

२०—अकबरने याद किये तो सभी हिदू राजा अेक-अेक करके उसके सामने हाजिर हो गये (और अधीनता स्वीकार कर ली) पर मेवाड़का मर्यादास्वरूप राणा प्रतापसिंह उसके पैरो नहीं पडा ।

मेछाँ आगळ माथ निवै नही नर-नाथरो ।
सो करतब समराथ पाळै राण प्रतापसी ॥२१॥
वुहा वडेरा वाट, वाट तिकण वहणो विसद ।
खाग–त्याग–खत्रवाट पूरो राण प्रतापसी ॥२२॥
कदे न नामै कध, अकबर ढिग आवै न ओ ।
सूरज-वॅस सबध पाळै राण प्रतापसी ॥२३॥
अकबर कुटळ अनीत और विटळ सिर आदरै ।
रघुकुळ–उत्तम– रीत पाळै राण प्रतापसी ॥२४॥
लोपै हीदू लाज, सगपण रोपै तुरकसूँ ।
आरज-कुळरी आज पूँजी राण प्रतापसी ॥२५॥
अकबर पथर अनेक कै भूपत भेळा किया ।
हाथ न लागो हेक पारस राण प्रतापसी ॥२६॥

२१—'जो नरोका नाथ है उसका मस्तक म्लेच्छोके आगे नही झुक सकता' इस कर्त्तव्यका पालन केवल समर्थ प्रतापसिह ही करता है ।

२२—जिस मार्गपर बडेरे चले हैं उसी बडे मार्गपर चलना चाहिअे । क्षत्रियोमे इस व्रतका पालन करनेवाला अेक खडग (चलाने) और दान (देने) में पूरा महाराणा प्रतापसिह ही है ।

२३—यह राणा न तो कभी अकबरके पास आता है और न मस्तक ही झुकाता है । प्रतापसिंह सूर्यवशके सम्बन्धका पालन करता है ।

२४—दूसरे बिगडे हुअे राजा अकबरकी कुटिल अनीतिको सिरपर रखकर आदर देते हैं पर राणा प्रतापसिह रघुके कुलकी उत्तम रीतिका पालन करता है ।

२५—हिन्दू लज्जा का लोप करते हैं और मुसलमानके साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित करते हैं । आज आर्य कुलकी पूँजी तो अेकमात्र प्रतापसिह ही (रह गया) है ।

२६—अकबरने अनेक राजारूपी पत्थरोको इकट्ठा कर रखा है । पर पारस पत्थरके समान अेक राणा प्रतापसिह उसके हाथ नही लगा ।

सॉंगो धरम-सहाय बाबरसूँ भिड़ियो विहस ।
अकबर-कदमॉं आय पडै न राण प्रतापसी ॥२७॥
सुख-हितस्याळ-समाज हीदू अकबर-वस हुवा ।
रोसीलो म्रगराज पजै न राण प्रतापसी ॥२८॥
अकबर कूट अजॉंण हिय-फूट छोडै न हठ ।
पगॉं न लागण पाण पणधर राण प्रतापसी ॥२९॥
अकबर हियै उचाट रात-दिवस लागी रहै ।
रजवट - वट - समराट पाटप राण प्रतापसी ॥३०॥
जग जाडा जूझार अकबर-पग चॉंपै अधिप ।
गउ-राखण गुजार पिडमे राण प्रतापसी ॥३१॥
अकबर-कनै अनेक नम-नम नीसरिया नृपत ।
अनमी रहियो अेक पुहमी राण प्रतापसी ॥३२॥

२७—धरमकी सहायताके लिअे महाराणा सॉंगा बाबरसे भिडा था उसी परंपराके पालनके लिअे राणा प्रतापसिह अकबरके पैरोमे आकर नही गिरता ।

२८—सुख-भोगके लिअे हिन्दू राजा गीदड़ोकी भॉंति अकबरके वश हो गये पर रोषवाले सिहकी भॉंति राणा प्रताप उसके फदेमे नहीं आता ।

२९—नीच और मूर्ख अकबरकी हृदय की (ऑंखें) फूट गई हैं जो वह अपना हठ नही छोड़ता । प्रतिज्ञाका पालन करनेवाला राणा प्रतापसिह उसके पैरो पडने-वाला नही ।

३०—अकबरका हृदय रात-दिन उचटा रहता है । राणा प्रतापसिह क्षत्रियोके धर्मके पालन करनेवालोमे पाटवी सम्राट हैं ।

३१—जगतमे जो जबर्दस्त योद्धा हैं अैसे राजा भी अकबरके पैरोकी सेवा करते हैं परन्तु पृथ्वी और गौका रक्षक प्रतापसिह अकबरके हृदयमे निवास करता है (प्रतापके कारण अकबरके हृदयमे सदा चिता बनी रहती है) ।

३२—अकबरके पास अनेक राजा झुक-झुककर निकले । पृथ्वीपर अेक प्रतापसिंह ही उसके आगे नहीं झुका ।

थिर ऋप हिदुस्थान लातरग्या मग लोभ-लग ।
माता भूमी मान पूजै राण प्रतापसी ।।३३।।

ढिग अकबर दळ ढाण अग-अग झगडै, आथडै ।
मग-मग पाडै माण पग-पग राण प्रतापसी ।।३४।।

चीत मरण रण चाय, अकबर-आधीनी विना ।
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवै न प्रतापसी ।।३५।।

गोहिल–कुळ–धन–गाढ लेवण अकबर लालची ।
कोडी दै नह काढ पणधर राण प्रतापसी ।।३६।।

अकबर मच्छ अयाण पूँछ-उछाळन बळ प्रबळ ।
गोहिलवत गहराण पाथोनिधि प्रतापसी ।।३७।।

३३—किसीसे न डिगनेवाले हिन्दुस्तानके राजा लोभके कारण कर्त्तव्यसे भ्रष्ट हो गये । परन्तु राणा प्रताप पृथ्वीको माता मानकर पूजता है ।

३४—महाराणा प्रताप अकबरकी सेनाके सामने दौड़ कर (जाता है और) पहाड़-पहाड़पर उससे भिडता और लड़ता है । प्रत्येक मार्गमे प्रत्येक पैरपर वह उसका मान भंजन करता है ।

३५—राणा प्रतापके चित्त मे सदा यही चाह रहती है कि अकबरकी अधीनता स्वीकार किये बिना रणमे मरण हो जाय । पराधीनतामे दुख पाता हुआ प्रतापसिह फिर नही जीता ।

३६—अकबर गुहिलोतवंशके धनको लेनेके लिअे गहरा लालच करता है । परन्तु प्रतिज्ञाका पालन करनेवाला प्रताप अेक कौड़ी भी निकालकर नही देता ।

३७—अकबर मूर्ख मच्छ है जो प्रबल बलके साथ पूँछ उछालता है परन्तु गुहिलका वंशज प्रतापसिंह गहरा समुद्र है (जो साधारण मच्छके पूँछ उछालनेसे गॅदला नही हो सकता) ।

नित गुधरळावण नीर कुभी सम अकबर क्रमै ।
गोहिल राण गँभीर पण गुधळै न प्रतापसी ॥३८॥
उडै रीठ अणपार, पीठ लगा लाखाँ पिसण ।
वेढीगार वकार पैठो उदियाचळ पतो ॥३९॥
रोकै अकबर राह ले हीदू कूकर लखाँ ।
वीभरतो वाराह पाडै घणा प्रतापसी ॥४०॥
हिरदै ऊणा होत सिर-धूणा अकबर सदा ।
दिन दूणा देसोत पूणो हुवै न प्रतापसी ॥४१॥
कळपै अकबर ! काय, गुण पूँगीधर गोडिया ! ।
मिणधर छाबड़ माँय पडै न राण प्रतापसी ॥४२॥
भागै सागे भाम, अमरत लागै ऊँमरा ।
अकबर-तळ आराम पेखै जहर प्रतापसी ॥४३॥

३८—हाथीके समान अकबर जलको गँदला करनेके लिअे सदा फिरता है परन्तु गुहिलका वशज राणा प्रताप गम्भीर समुद्र है जो हाथीके चलनेसे गँदला नहीं हो सकता । (कुम्भी = मगर या हाथी) ।

३९—हथियारोकी अपार झड़ाफड मच रही है, लाखो शत्रु पीछे लगे हैं, फिर भी युद्ध करनेवाला प्रतापसिह ललकारकर उदयपुरमे प्रविष्ट हुआ ।

४०—अकबर लाखो हिन्दू-रूपी कूकरोको लेकर राणाकी राह रोकता है पर गरजता हुआ वराह प्रतापसिह उनमेसे अनेकोको गिरा देता है और निकल जाता है ।

४१—सिर धुननेवाला अकबर हृदयमे सदा ऊना होता है पर राजा प्रतापसिह प्रतिदिन दूना होता जाता है, कभी पौना नही होता । (ऊना—कम, हतोत्साह) ।

४२—हे रस्सी और पूँगीवाले सँपेरे अकबर, क्यो कष्ट उठाता है ? कितना ही प्रयत्न कर, पर राणा प्रतापरूपी साँप तेरी छबड़ीमे नही पडेगा ।

४३—राणा प्रताप स्त्रीको साथ लिये भागता है और उदुंबर भी उसे

लंघण कर लंकाळ सादूळो भूखो सुवै ।
कुळवट छोड क्रपाळ पैड न देत प्रतापसी ॥४४॥
अकबर मैगळ अच्छ, मॉझळ दळ घूमै मसत ।
पचानन पळ भच्छ पटकै छडा प्रतापसी ॥४५॥
अै जो अकबर-काह सैधव कुजर सॉवठा ।
वॉसै तो वहताह पंजर थया, प्रतापसी ! ॥४६॥
वडी विपत सह वीर वडी क्रीत खाटी वसू ।
धरम-धुरंधर धीर पोरस धिनो प्रतापसी ॥४७॥
जिणरो जस जग मॉहि, जिणरो जग धिन जीवणो ।
नेड़ो अपजस नॉहि, पणधर धिनो प्रतापसी ॥४८॥
अजरामर धन अेह, जस रह ज्यावै जगतमे ।
सुख-दुख दोनूॅ देह सुपन समान, प्रतापसी ॥४९॥

अमृतके समान लगते हैं पर अकबरकी अधीनतामे रहकर आरामको वह विषके समान समझता है ।

४४—प्रतापी सिंहके समान राणा प्रताप लंघन करके भूखा सो जाता है परन्तु कुलका मार्ग छोडकर दूसरे मार्गपर पैर नही रखता ।

४५—अकबर श्रेष्ठ हाथीके समान मस्त होकर दलके अन्दर विचरता है परन्तु मास खानेवाले सिहके समान प्रताप अकेला ही उसे हथेली मारकर गिरा देता है ।

४६—ये जो अकबरके मजबूत घोड़े और हाथी हैं वे, हे प्रताप, तेरे पीछे भागते-भागते अस्थिपंजर-मात्र रह गये हैं ।

४७—वीर राजा प्रतापने बड़ी विपत्ति सहकर पृथ्वीपर बडी भारी कीर्ति अर्जन की । हे धर्मधुरीको धारण करनेवाले धीर प्रताप, तुम्हारा पुरुषार्थ धन्य है ।

४८—उसीका जीवन धन्य है जिसका जगत मे यश है । हे प्रणधर प्रताप, तू धन्य है क्योकि तेरे निकट अपयश नही रहता ।

४९—जगतमे यश रह जाय—यही अजर और अमर धन है । देहमे सुख और दुख तो सपनेके समान अस्थायी हैं ।

चारण सूरायच टापरया कृत—

चेला वस छतीस, गुर घर गहलोतॉ-तणो ।
राजा—राणॉ ! रीस कहतॉ मत कोई करो ॥५०॥
चपो ची तो डा ह पोरस—तणो—प्रतापसी ।
सौरभ अकबरसाह अळियळ आभडिया नही ॥५१॥
माथै मैंगल खाग तै वाही, परतापसी ।
वॉट किया बे भाग गोटी साबू तॉत गत ॥५२॥
सॉग ज सोवरणाह तै वाही, परतापसी ! ।
ज्यो वादळ किरणाह परॉ प्रगट्टी कुजरॉ ॥५३॥
मॉझी मोह मराट पातळ राण प्रवाड मल ।
दुजडॉ किय द्रहवाट, दळ मैंगळ दाणव-तणा ॥५४॥
सहनक-तणा सुजाण, पारीसा पातळ-तणा ।
तै राहविया राण ! अेकण-हूॅता ऊदवत ! ॥५५॥

५०—छत्तीसो वंशोके क्षत्रिय गुलाम हैं, केवल गुहिलोतोका घराना बडा है । यह कहते समय कोई राजा या राणा क्रोध न करता (क्योंकि यह कथन वास्तवमे सत्य है) ।

५१—चित्तौडके स्वामी प्रतापसिंहका पराक्रम चंपेका पेड़ है जिसकी सुगधि-पर अकबर-रूपी भौरा कभी नही आया ।

५२—हे प्रतापसिह ! तूने हाथीके माथेपर तलवार चलाई तो उसके दो टुकडे कर दिये जिस तरह तॉतसे साबुनकी टिकिया कटकर दो टुकडे हो जाती है ।

५३—हे प्रतापसिह ! तूने सुनहरी बरछी चलाई तो वह हाथीके पार जाकर निकली जैसे किरणे बादलको फोड़कर पार निकल जाती हैं ।

५४—अनेक युद्धोको जीतनेवाले और मोहको मारनेवाले प्रतापसिहने तलवारोसे यवनोकी हाथियोकी सेनाको नष्टभ्रष्ट कर दिया ।

५५—अन्य राजा मिट्टीके बर्तनोमे परोसा भोजन करनेवाले (मुसलमान)

ऐही भुजै अरीत, तसलीम ज हीदू-तुरक ।
माथै निकर मजीत परसाद कै प्रतापसी ॥५६॥
रोहे पातळ राण जाँ तसलीम न आदरै ।
हीदू — मुस्सलमाण ऐक नही ताँ दोय है ॥५७॥
चौकी चीतोड़ाह पातळ पडवेसाँ-तणी ।
रहचेवा राणाह आयो पण आयो नही ॥५८॥
निगम निवाण-तणाह, नागद्रहा नरहर ज्युँही ।
रावत-वट राणाह, पिड अणखूट प्रतापसी ॥५९॥

जोधपुर–महाराजा मानसिहजी कृत –

गिर-पुर-देस गमाड भमियो पग-पग-भाखराँ ।
मह ऐंजसै मेवाड, सह ऐंजसै सीसोदिया ॥६०॥

प्रकीर्णक—

वाही राण प्रतापसी वगतर मे वरछीह ।
जाणक झीगर-जाळमे मुँह काढयो मच्छीह ॥६१॥

हो गये । पत्तलोमे परोसा भोजन तो, हे उदयसिंहके पुत्र, अकेले तूने ही रखा है ।

५६—पराक्रममे ऐसी कुरीति हो गई है कि हिन्दू तुरकोके आगे झुककर सलाम करने लगे है। ऐक प्रतापसिह ही मसजिदोके ऊपर देवमन्दिर बनवाता है ।

५७—घिरा हुआ राणा प्रताप जबतक झुककर सलाम करना स्वीकार नही करता तभीतक हिन्दू और मुसल्मान ऐक न होकर दो हैं (नही तो सभी मुसल्मान हो जाते) ।

५८—प्रतापसिह शत्रुओको काटनेके लिऐ तो आया पर उनकी चौकी देनेको नही आया ।

६०—महाराणा प्रताप अपने पहाड़, देश और नगरको गँवाकर पहाड़ोमे पैर-पैरपर भटकता फिरा, जिससे आज मेवाड़ अत्यन्त गर्व करता है और सारी सीसोदिया जाति घमड करती है ।

६१—राणा प्रतापने कवचमे जो बरछी चलाई तो वह कवचको फाडकर

वाही राण प्रतापसी वरछी लचपच्चाँह ।
जाणक नागण नीसरी, मुँह भरियो बच्चाँह ॥६२॥
पातळ घड़ पतसाहरी अेम विधूंसी आण ।
जाण चढी कर-वदराँ, पोथी वेद – पुराण ॥६३॥
हीदू हीदूकार राणा से राखत नही ।
अकबर तो अेकार पो सौ करत प्रतापसी ॥६४॥
हिदूपत परताप पत राखी हिदवाणरी ।
सहे विकट संताप सत्य सपथ कर आपणी ॥६५॥

२—बादळ

वादळ जूझण जब चल्यो, माता आयी ताम ।
रे वादळ ! तैं क्या किया, रे बाळक परवाँण ॥६६॥
माता ! बाळक क्यूँ कहो, रोइ न माँग्यो ग्रास ।
जे खग मारूँ साह-सिर, तो कहियौ साबास ॥६७॥

दूसरी ओर अैसे निकली मानो झींगुर मच्छीने जालमेसे मुँह निकाला ।

६२—राणा प्रतापने लपकती हुई बरछी चलाई । वह आँतोके साथ दूसरी ओर इस प्रकार निकली मानो साँपिन, मुँहको बच्चोसे भरकर, बाहर निकली ।

६३—प्रतापसिहने आकर बादशाहकी सेनाको इस प्रकार विध्वस कर दिया मानो वेद-पुराणकी पोथी बन्दरोके हाथ चढ गई हो ।

६४—यदि राणा हिन्दू जाति और हिन्दू धर्मकी रक्षा न करता तो अकबर सारी दुनियाको अेकाकार कर देता (सबको यवन बना लेता) ।

६५—हिन्दूपति प्रतापने हिन्दुओकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की और विकट कष्टोको सहकर भी अपनी प्रतिज्ञा सच्ची की ।

६६—बादल जब जूझनेके लिअे चला तब माता आई और बोली—अरे बादल, तूने यह क्या किया ? अरे तू सचमुच ही बालक है !

६७—बादल उत्तर देता है कि हे माता ! तुम मुझे बालक क्यो कहती हो ?

सिंघ, सिंचाणो, सापुरुस, औ लहुरा न कहाय ।
वडो जिनावर मारिकै छिनमे लेय उठाय ॥६८॥

३—महाराणा अमरसिंह

हाडा, कूरम, राठवड, गोखाँ जोख करंत ।
कहज्यो खानाखाननै, वनचर हुवा फिरत ॥६९॥

तँवराँसूँ दिल्ली गयी, राठोड़ाँ कनवज्ज ।
अमर पयँपै खाननै, सो दिन दीसै अज्ज ॥७०॥

(रहीमका उत्तर)

ध्रम रहसे, रहसे धरा, खिस जासे खुरसाण ।
अमर विसभर ऊपरै, राख नहंचो, राण ! ॥७१॥

मैने तो कभी रोकर खानेको नही मॉगा (जैसे बालक मॉगते है) । मुझे तो, जब मै बादशाहके सिरपर तलवार मारूँ, तभी शाबाश कहना ।

६८—सिह, बाज और सुपुरुष—ये (छोटे होनेपर भी) छोटे नही कहलाते । ये अपनेसे बडे जानवरको मारकर क्षण ही भरमे उसे उठा भी लेते हैं ।

६९—खानखानासे जाकर कहना कि, हाडा, कछवाहे और राठोड़—ये सब रईस आज राजमहलोमे आनन्द कर रहे हैं परन्तु हम वनचर बने हुऍ भटक रहे हैं ।

७०—जिस दिन तॅवरोके हाथ दिल्ली गई और राठोड़ोके हाथसे कन्नौज छूटा वही दिन, महाराणा अमरसिंह खानखानासे कहते हैं कि, आज हमे दिखाई दे रहा है (आज हमारे हाथसे मेवाड़ छूटता दिखाई देता है) ।

७१—धर्म रहेगा, तुम्हारी भूमि भी रहेगी, और यवन नष्ट हो जायँगे । हे राणा अमरसिंह ! कभी नाश न होनेवाले और ससारका पालन करनेवाले परमात्मापर दृढ़ विश्वास रखो ।

४—महाराणा राजसिंह

मालपुरैरो माल, केळपुरै घर-घर कियो ।
सबळ दिलीरो साल, ऊभो राणो राजसी ॥७२॥

(ख) मारवाड

राठोड़ वीरांगनाएँ

राठोड़ाँरी कुळ-त्रिया सीळा गभ न धरत ।
ज्याँ भरतार न भजणा से भँजणा न जणंत ॥७३॥

राव जगमाल

पग-पग नेजा पाडिया, पग-पग पाडी ढाल ।
बीबी पूछै खाननै, जग केता जगमाल ? ॥७४॥

राव अमरसिंह राठोड़

उण मुखसूँ गग्गो कह्यो, इण कर लिवी कटार ।
वार कहण पायो नही, हो गइ जमधर पार ॥७५॥

दुर्गादास राठोड़

जननी ! जण अेहडा जणे, जेहडा दुरगादास ।
मार मँडासो थाँमियो विन थभाँ आकास ॥७६॥

७२—मालपुरेको लूटकर उसका धन केळपुरेके घर-घर मे बाँट दिया अैसा दिल्ली-साम्राज्यका शल्यरूप सबल शत्रु महाराणा राजसिह खड़ा है ।

७३—राठोडोकी कुल-स्त्रियाँ निकम्मे (साधारण) गर्भ धारण नही करती । जिनके पति भागनेवाले नही वे भागनेवाले पुत्रोको जन्म नही देती ।

७४—बीबी खानसे पूछती है कि पग-पगपर भाले गिरे हैं और पग-पगपर ढाले पड़ी हैं, भला कहो तो जगतमे कितने जगमाल हैं ?

७५—उस सलाबतखाने अमरसिहको 'गँवार' कहनेके लिअे मुँहसे 'ग' इतना ही कहा था—वार ये दो अक्षर कहने भी नही पाया था—कि अमरसिहकी कटार उसके शरीरमें पार हो गई ।

७६—हे माता ! पुत्र जने तो अैसा जनना जैसा कि दुर्गादास था—जिसने सिरपर मुँडासा रखकर उसपर बिना खंभोके आधारके ही आकाशको थाम लिया ।

जसवंत कहियो जोय, घर रखवाळो गूदडा ।
सॉचो कीधी सोय आछो आसकरन्न-वत ।।७७।।
बारह मासॉ वीह पाडव ही रहिया प्रछन ।
दुरगो हेका दीह आछत रह्यौ न आसवत ।।७८।।

वळूसिंह चाँपावत

वळू कहै गोपाळरो सतियॉ हाथ सदेस ।
पतसाही घड मोडकर आवॉ छॉ, अमरेस ! ।।७९।।

केसरीसिंह (वखरी)

केहरिया करनाळ, जो न जुडत जयसाहसूँ ।
आ मोटी ॲवगाळ रहती सिर मारू-धरा ।।८०।।

कल्याणसिंह

किलो अणखलो यूँ कहै, आव कला राठोड ! ।
मो सिर उतरै मेहणूँ, तो सिर बंधै मोड़ ।।८१।।

७७—महाराज जसवतसिहजीने जो कहा था कि यह दुर्गादास घरके गूदडो-की रक्षा करनेवाला होगा वह कथन आसकरणके बेटे दुर्गादासने खूब अच्छी तरह सत्य सिद्ध कर दिया ।

७८—पाडव भी बारह महीनो तक भयके मारे छिपे रहे परन्तु आसकरण-का बेटा दुर्गादास जब तक जीता रहा तब तक अेक दिन भी छिपकर नही रहा । (बीह—भय) ।

७९—हे महाराज अमरसिह ! गोपाळदासका बेटा वल्लसिंह सतियोके हाथ सदेश कहलाता है कि बादशाही सेनाको पराजित करके मै आपके पास आ रहा हूँ ।

८०—हे केसरीसिह, यदि तू जयसिहसे न भिड़ता तो मारवाडकी भूमिके सिरपर यह मोटा कलक (सदाके लिअे) रह जाता ।

८१—अणखलो—उदास । कला—कल्याणसिंह । मेहणूँ—व्यंगवचन, कलंक ।

कीरतसिंह

तन झड खागाँ तीख, मार घणा खळ पोढियो।
किरतो नग कोडीक जडियो गढ जोधाणरै ॥८२॥

भीवसिंह

गढ साखी गहलोत, कर साखी पातळ कमध।
मुकन-रुघारी मोत भली सुधारी, भीवडा! ॥८३॥

पहर हेक लग पोळ जडी रही जोधाणरी।
गढमे रोळारोळ भली मचायी, भीवडा! ॥८४॥

आजूणी अधरात महल ज रूनी मुकनरी।
पातळरी परभात भली रुवाडी, भीवडा! ॥८५॥

मुकनूँ पूछै वात, को पातळ! आया करॉ?।
सुरगापुरमे साथ भेळा मेल्या भीवडै ॥८६॥

८२—जिसका शरीर तेज तलवारोसे निहत हुआ और जो बहुत-से शत्रुओं-को मारकर युद्धभूमिमे सोया अैसा कीरतसिंह कोटि मूल्यवाले रत्नके समान जोधपुरके किलेमें जडा हुआ है।

८३—मुकन इ०—हे भीवसिंह! तूने मुकनसिंह और रघुनाथसिंहकी मृत्यु-को खूब सुधारा (खूब अच्छा बदला लिया)!

८४—जोधपुर दुर्गका द्वार अेक घडी तक बन्द रहा। हे भीवसिंह! तूने दुर्गमे खूब रेलपेल मचाई।

८५—आज आधीरातको मुकनसिंहकी पत्नी महलमे रोई। हे भीवसिंह! तूने उसी प्रभातको प्रतापसिंहकी पत्नीको खूब रुलाया।

८६—मुकनसिंह स्वर्गमे प्रतापसिंहसे बात पूछता है कि हे प्रताप! कहो, तुम कब आ गये? प्रतापसिंहने उत्तर दिया कि भीवसिंहने हम दोनोको स्वर्गमें साथ-ही-साथ भेज दिया।

(ग) वीकानेर

राव् कांधल

कमधज राज भतीजरो सज बॉध्यो बळ सार ।
जिणा कॉधळ भॉज्या जबर चौदह भूमी–चार ।।८७।।

पद्मसिंह

अेक घडी आळोच मोहणरै करतो मरण ।
सोह जमारो सोच करताँ हि जातो, करणवत।।८८।।

कुशळसिंह

कुसळो पूछै कोटनै, विलखो किम, वीकाण ! ।
मो ऊभाँ तो पाळटै, भळे न ऊगै भाण ।।८९।।

(घ) जयपुर

महाराजा मानसिंह

जननी ! जण, अैसो जणे, जैसो मान मरद्द ।
खॉडो समँद पखाळियो, काबल बॉधी हद्द ।।९०।।

महाराजा जयसिंह (बड़े)

घट न वाजै देहराँ, सक न मानै साह ।
अेकणहा फिर आवज्यो, माहूरा जयसाह ! ।।९१।।

८७—भतीज—वीकाजी जो कॉधळजीके भतीजे थे ।

८८—हे करणसिंहके पुत्र ! मोहनसिंहकी मृत्युपर यदि तू अेक घड़ी भर भी आगा-पीछा सोचता तो तेरा सारा जीवन सोच करते ही बीतता ।

८९—कुशलसिंह दुर्गसे पूछता है कि हे बीकानेर ! तू क्यो बिलख रहा है ? मेरे खडे हुअे तुझे कोई विध्वस्त कर दे तो फिर सूर्य उदय नही हो सकता ।

९०—हे माता ! पुत्र जने तो अैसा जन जैसा कि मर्द मानसिंह था जिसने अपनी तलवार समुद्रमे धोई और काबुल तक राज्यसीमाका विस्तार किया ।

९१—मदिरोमे घटे नही बजते, मुसलमान शासक भय नही खाते, इसलिअे हे माधवसिंहके बेटे जयसिंह ! अेक बार फिर यहाँ आओ ।

राव शेखाजी (शेखावाटी)

गौड बुलावै घाटवै, चढ आवो सेखा ! ।
थारा लसकर मारणा, देखण अभळेखा ।।९२।।

राव शिव सिंह (सीकर)

वॉस वडा, डेरा वडा, दिनॉ वडेरा होय ।
सेखावत सिवसिहसूॅ करतब वडा न कोय ।।९३।।

सादूळसिंह (खेतड़ी)

सादूळो जगरामरो सिहळ वुरी बलाय ।
राम-दुवाई फिर गयी, लुकती फिरै खुदाय ।।९४।।

जुझारसिंह (खेतड़ी)

डूॅगर वॉको है गुढो, रण-वॉको जूझार ।
अेक ज आगै असुर-गण भॉग्या पॉच हजार ।।९५।।

जोरावरसिंह (खेतड़ी)

वणिया घाव वणाव जोरॉ मोहरॉ ऊपरै ।
जडिया नगॉ जडाव सोनैमे सादूळवत ।।९६।।

९२—हे शेखा ! तुम्हे गौड घाटवेमे वुलाते हैं, तुम चढ़कर आओ तो सही । सुना है कि तुम्हारी सेना मारनेवाली है, हमे भी देखनेकी अभिलाषा है ।

९३—दिनॉ—दिनोमे, अवस्थामे । वडेरा—बड़े । करतब इ०—महान कार्य या पराक्रम करनेमे बड़ा कोई नही ।

९४—जगरामसिहका बेटा सिह-सदृश पराक्रमी शार्दूलसिह बुरी बला है जिसके कारण देशमे रामकी दुहाई फिर गई और खुदाई छिपती फिरती है— हिन्दुओका राज्य स्थापित हो गया और मुसलमान शासक छिपते फिरते हैं ।

९५—डूॅगर—पहाड़ । गुढो—जहॉ जुझारसिहका स्थान था । अेकज— अकेलेने ही । असर—असुर अर्थात् यवन । भॉग्या—पराजित किये ।

९६ —वणिया—बने हैं । सादूळवत—हे सादूळसिंहके पुत्र जोरावरसिह ।

अभयसिंह (खेतड़ी)

खगाँ ज वाँकी खेतडी, भट वाँको अभमाल ।
गढपत राख्यो गोदमे नव-कूँटीरो लाल ॥९७॥

सुलतानसिंह

मन-चायो पायो मरण, हुयी फतेपुर हल्ल ।
रहसी रे सुलतनिया ! गौड! घणा दिन गल्ल ॥९८॥

सावँतसिंह

कळियो जाझा कीचमे रजवट-हदी रथ्थ ।
साँवतिया सुलताणरा, तूँ काढण समरथ्थ ॥९९॥

(ङ) *प्रकीर्णक*

राठोड़ ऊगो

छाती ऊपर सेलडा, माथै ऊपर वाट ।
कहज्यो ऊग भाणेजने, कड-पीजर कहवाट ॥१००॥

९७—अभमाल—अभयसिह । राख्यो इ०—जिसने नवकोटी (मारवाड़) के राजा धोकळसिहको शरण दी ।

९८—हे गौड सुल्तानसिह ! फतहपुरपर आक्रमण हुआ और तूने मनचाही मृत्यु पाई, ससारमे तेरी कथा बहुत दिनो तक रहेगी ।

९९—हे सुल्तानसिहके बेटे सावँतसिह ! राजपूतीका रथ गहरे कीचड़मे फँस गया है, उसे निकालनेमे अब तू ही समर्थ है ।

१००—राजा अनँतरायके यहाँ काठके पिजरेमे कैद किया हुआ राजा कहवाट अपने भाटसे कहता है कि तुम जाकर मेरे भानजे ऊगेको कहना कि तुम्हारा मामा कहवाट काठके पिजरेमे पड़ा है, उसकी छातीपर भाले हैं और माथेपर राह बनी है जिसपर लोग चलते हैं ।

तूँ कहतो ज तिकाय, ताळो ताळाहर-तणो ।
वाळा ! हिवै वजाय अेकण हाथे, ऊगला ! ॥१०१॥

मामा मैंगळ ! साँभळे, दूजो ना जाणाँह ।
चोडै धूपट बाँधनै अणंतराय आणाँह ॥१०२॥

रूकाँ वागी रीठ, भोठ पड़ै माथा भडाँ ।
तोडन मामा-रीठ रीठ आयो दीसै ऊगलो ॥१०३॥

तगा ! तगाई मत करे, बोले मूँह सँभाळ ।
नाहरनै रजपूतने रेकारैरी गाळ ॥१०४॥

रहीम खानखाना

खानाखान नवाबरै खाँडे आग खिवंत ।
जळवाळा नर प्राजळै, त्रणवाळा उबरंत ॥१०५॥१६९॥

१०१—हे वाळा जातिके वीर ऊगा ! जिसके विषयमे तू कहता था वही अपनी ताली अब तू अेक हाथसे बजा ।

१०२—ऊगा उत्तर देता है कि हे मैगळ भाट ! मामासे कहना कि हम दूसरी बात नहीं जानते किंतु सबके सामने अनन्तरायको पगड़ीसे बाँधकर ले आवेंगे ।

१०३—ऊगेके युद्धके समय कहवाट अपने-आपसे कहता है—घोर युद्धकी तलवारे बज रही हैं, योद्धाओंके माथोपर अग्नि बरस रही है, मालूम होता है कि मामाके कष्टको दूर करनेको ऊगा आ पहुँचा ।

१०४—रेकारो—रे, अरे, या तू कहकर पुकारना ।

१०५—खानखाना रहीमकी तलवारमे आग चमक रही है जिसमे जलवाले (पानीदार, सामने युद्ध करनेवाले) आदमी जल जाते हैं और तृण-वाले (मुँहमे तृण लेकर शरणमे आनेवाले) बच जाते हैं ।

४—दानवीर

१—जाम ऊनड़

माई ! अेहा पूत जण, जेहा ऊनड जाम ।
दीधो सातूँ सिध इम, जिम दीजै अेक गाम ॥१॥

२—गोड़ वछराज (अजमेर)

देतो अडब-पसाव दत धिनो गोड वछराज ! ।
गढ अजमेर सुमेरसूँ ऊँचो दीसै आज ॥ २ ॥

३—साँगो

जळ डूबतै जाय साद ज साँगरियै दियो ।
कहज्यो मोरी माय, कविनै देवै कामळी ॥ ३ ॥

४—जगदेव पँवार

इग्यारह इक्काणवै, चैत तीज, रविवार ।
सीस कँकाळी भट्टनै जगदे' दियो उतार ॥ ४ ॥

४—दानवीर

१—हे माता ! अैसा पुत्र उत्पन्नकर, जैसा कि ऊनड़ जाम था, जिसने सिंधके सातों प्रान्त इस प्रकार दान कर दिये जैसे अेक गाँव दान देता हो ।

२—गौड़ बछराज धन्य है जो नित्य अरब-पसावका दान करता था जिसके कारण आज अजमेर गढ सुमेरु पर्वतसे भी ऊँचा दिखाई देता है ।

३—जलमें डूबते हुअे सांगेने आवाज दी कि मेरी माँको जाकर कह देना कि कविराजाको कंबल बनाकर अवश्य दे दे (साँगेने कविराज ईसरदानजीको कंबल देनेकी प्रतिज्ञा की थी पर प्रतिज्ञा पूरी होनेके पूर्व ही डूबनेसे उसकी मृत्यु हो गई) ।

४—संवत् ११९१ की चैत्र-तृतीया रविवारके दिन जगदेव पँवारने अपना सिर उतारकर कंकाली भाटिनीको दानमें दे दिया ।

५—करणसिंह राठोड़ लूणकरणोत

सौ दूजो संसार माटीसूँ गढियो मँडळ ।
तूँ गढियो करतार कायासूँ ही, करणसी ! ॥ ५ ॥

६—महाराज रायसिंह

कोड दरब दीधो कमै, सवा कोड़ पह सीग ।
वीकाणै दाता वडा, उभै हुवा अरडीग ॥ ६ ॥

७—रहीम खानखाना

खानाखान नवाबरो दीठो अेहो दैण ।
ज्यूँ-ज्यूँ कर ऊँचो करै, त्यूँ-त्यूँ नीचा नैण ॥ ७ ॥

खानाखान नवाबरो मोहि अचभो अेह ।
केम समाणो मेर–मन साढ तिहथ्थी देह ॥ ८ ॥

८—किशनसिंह (खेतड़ी)

मेहाँ, मोराँ, मदझराँ राजाँ याही रीत ।
किसन चढाया करहलै, वळे न चढिया भीत ॥ ९ ॥

५––दूसरा सारा संसार मिट्टीके ही द्वारा बना हुआ है परन्तु, हे करणसिंह, तुझे विधाताने शरीरके द्वारा बनाया है (वास्तवमें तू ही सच्चा मानवदेहधारी है)।

६—करमसिहने अेक करोड़का दान किया और प्रभु रायसिहने सवा करोड़का। बीकानेरमे ये दो बड़े जबर्दस्त दानी हुअे।

७—खानखाना रहीमके दान करनेका यह ढग देखा कि ज्यो-ज्यो हाथ ऊँचा करता है त्यो-त्यो नेत्र नीचे होते हैं (दानवृद्धिके साथ विनयकी भी वृद्धि होती है)।

८—खानखाना नवाबके विषयमे मुझे यह अचंभा होता है कि उनका मेरुके समान बड़ा मन साढे तीन हाथकी देहमे कैसे समाया ?

कविया भाग पधारजो, कँवर ज मुरधर देस।
फूलाणी लाखै जिसो सादाणी किसनेस ॥१०॥
थारै जोडै, किसनसी ! जग्गो कँवर अमेर।
अेक-ज हूवो करणरै पदमो वीकानेर ॥११॥

९—महाराणा जगतसिंह (वड़े)

सिंधुर दीधा सात सौ, हैवर छपन हजार।
चौरासी सासण दिया, जगपत जग-दातार ॥१२॥
करणारै जगपत कियो कीरत काज कुरब्ब।
मन जिण धोखो ले मुवा साह दिलीस सरब्ब ॥१३॥
जगतो तो जाणै नही मात-पितारो नाम।
तात-पिता रटतो रहै, निसदिन यो ही काम ॥१४॥
साँइ ! करच्ये पारेवडा जगपतरै दरबार।
पीछोळै पाणी पियाँ, कण चुग्गाँ कोठार ॥१५॥

१०—मुरधरदेस—मारवाड, यहाँ 'जोधपुर' के विशेष अर्थमे प्रयुक्त न होकर 'राजस्थान' के साधारण अर्थमे प्रयुक्त हुआ है। लाखो फूलाणी—कच्छका सुप्रसिद्ध दानी और वीर राजा। सादाणी—सादूळसिहका बेटा।

११—हे किशनसिह ! तुम्हारी जोडीका दानी आबेरका राजकुमार जगतसिंह है या अेक पदमसिह वीकानेरमे करणसिहके यहाँ हुआ था।

१२—जगतके दानी महाराणा जगतसिहने सात सौ हाथी, छप्पन हजार घोड़े, और चौरासी गाँवोके परवाने (अर्थात् गाँव) दानमें दिये।

१३—करणसिहके बेटे जगतसिहने कीर्तिके लिअे वह महान् कार्य किया जिसका धोखा मनमे लिये-लिये ही दिल्लीके सारे बादशाह मर गये।

१४—जगतसिंह माताके पिता यानी 'नाना' का नाम नही जानता (अर्थात् वह कभी ना-ना नही करता)। वह तो रातदिन पिताके पिता यानी 'दादा' का नाम (अर्थात् देना-देना) रटता रहता है।

१५—हे परमात्मा ! हमे जगतसिहके दरबारके कबूतर बनाना जिससे

१०—महाराणा भीमसिह

राणै भीम न रक्खियो दत विन दीहाडोह ।
हय-गयंद देतो हथॉ, मुवो न मेवाडोह ।।१६।।
भीमा ! तूँ भाठो मोटा मगरा मॉयलो ।
कर राखूँ काठो, सकर ज्यूँ सेवा करूॅ ।।१७।।

११—ठाकुर खंगारसिंह (खोरा)

लाडाणो जस लूॅटियो माडाणी जग मॉय ।
कीरत-हदा कोरड़ा जातॉ जुगॉ न जाय ।।१८।।१८७।।
।।५२५।।

पीछोळेमे पानी पीये और राजकीय कोठारमे अन्न चुगते रहे । (पीछोळा—उदयपुर का सुप्रसिद्ध तालाब) ।

१६—महाराणा भीमसिहने अेक भी दिन बिना दानका (जिस दिन दान न किया हो) नही रखा । हाथोसे हाथी और घोड़े दान करता हुआ वह मेवाड़का अधिपति मानो अभी तक नही मरा है ।

१७—हे भीमसिह ! तू बड़े मरुस्थलका पत्थर है जिसे मै अपने पास रखूॅगा और शंकरकी भॉति पूजा करूॅगा ।

४. ऐतिहासिक और भौगोलिक

१—ऐतिहासिक

सामान्य

हाडा गायड-वकडा करतब-वका गोड़ ।
बळ-हठ-वका देवडा रण-वका राठोड ।। १ ।।
उदियापुर चूँडो सिरै, सेखो धर ऑबेर ।
दूदो माँझी मेडतै, वीदो वीकानेर ।। २ ।।
पातळियै अलवर लिवी, माधो रणथभोर ।
रामचद्र लंका लिवी, वखतावर बाघोर ।। ३ ।।

नाग

परमाराँ रूँधाविया, नाग गया पाताळ ।
रह्या बापड़ा आसिया, किणरी झूमै चाल ।। ४ ।।

पँवार

पिरथी बडा पमार, पिरथी परमाराँ-तणी ।
अेक उजीणी-धार, बीजो आबू बैसणो ।। ५ ।।

१—ऐतिहासिक

१—हाडे राजपूत घमासान युद्धमे बॉके होते हैं, गौड़ करतब करनेमें बॉके होते हैं, देवड़ा राजपूत बल और हठमे बॉके होते है, और राठोड़ युद्धमें बॉके होते हैं ।

५—पृथ्वीमे पॅवार राजपूत बडे है, पृथ्वी ही पॅवारोकी है । उनके दो स्थान हैं—अेक आबूमे और दूसरा उज्जैन अेवं धारानगरीमे ।

ज्यॉं पमॉंर त्यॉं धार है, धारा जठै पमार ।
विन पमॉंर धारा नही, धारा विना पमार ॥ ६ ॥

यदुवंशी-चूडासमा

तैं गरुवा गिरनार ! कॉई मन मछर धरचो ? ।
मरतॉं रा' खेगार अेकौ सिखर न ढाळियो ! ॥ ७ ॥
माणेरा ! मत रोय, मत कर रत्ती अखियॉं ।
कुळमे लागै खोय, मरतॉं मॉं न सॅभारजे ॥ ८ ॥
पॉंपणनैं पडतॉंह, कहो तो, कुव्रा भराविये ।
माणेरो मरतॉंह सरीरमे सरणॉं वहै ॥ ९ ॥

यदुवंशी-भाटी

रावळ भोजदे

तोडॉं घड तुरकाणरी, मोड़ॉं खान मजेज ।
दाखै अनमी भोजदे, जादम करै न जेज ॥१०॥

६—जहॉं पॅवार हैं वही धारा है। जहॉं धारा है वहीं पॅवार हैं। पॅवारोके बिना धारा नही और धाराके बिना पॅवार नही।

७—हे गौरवशील गिरनारके पहाड़ ! तूने मनमे यह क्या मत्सर धारण किया जो राव खेगारके मरनेपर अेक भी शिखर नही गिराया (खेगार गिरनारका राजा था।)

८—हे माणेरा ! तू रो मत, रोकर ऑंखोको लाल मत कर, मरते समय माताको कभी याद नही करना चाहिअे, इससे कुलमे कलंक लगता है।

९—जब पलक पडते है तब, कहो तो, कुऍं-के-कुऍं भर दूॅं, माणेरेके मरनेसे शरीरमे धाराऍं बह चली हैं।

१०—घड़—घटा, सेना। तुरकाण—यवन-मंडल। दाखै—कहता है। अनमी—जो किसीके आगे नही झुकता। जादम—यादव, जेसळमेरके भाटी यादव शाखाके राजपूत हैं। जेज—विलंब।

भटियाणी राणी ऊमादे

माण रखै तो पीव तज, पीव रखै तज माण।
दोय-दोय गयंद न बधसी अेकै कबू – ठाँण ॥११॥

कछवाहा

महाराज मानसिह

सबै भौम गोपाळकी, तामे अटक कहा।
जाके मनमे अटक है, सोई अटक रहा ॥१२॥

महाराजा ईश्वरीसिंह

मंत्री मोटा मारिया खत्री केसोदास।
जद ही छोडी, ईसरा ! राज करणकी आस ॥१३॥
ईसर, लेह मिटै नही, जुग-जुग यह गाया।
प्याला केसौदासनै पाया सो पाया ॥१४॥

केसरीसिंह (खंडेला)

वीकानेर सु-वस वसो, दिन-रैण सवाई।
मरज्यो राजा केहरी, बळ जाज्यो बाई ॥१५॥

११—माण—मान, रूठना। बँधसी—बँधेगे।

१२—भोम—भूमि। अटक—पंजाबके आगे अेक प्रसिद्ध नगर, उसके आगेकी भूमि म्लेच्छभूमि मानी जाती थी इसलिअे हिंदू अटक पार नही जाते थे।

१४—लेह—लेख। प्याला—विषका प्याला।

१५—सुवस—अच्छी तरह। सवाई—सवाया, अधिकाधिक। केहरी—केसरीसिह। बळ जाज्यो—जल जाय। बाई—बीकानेरकी राजकुमारी जो केसरीसिहको ब्याही गयी थी (दानसे असंतुष्ट चारणोका कथन)।

सीसोदिया

राणा राजसिंह

ओडा रतन सँघारिया राजड आसकरन्न ।
बो हिंदवाणी बादसा, बो बादसा वरन्न ॥१६॥

राणा अड़सी

अडसीसूँ अडिया जिके पडिया करै पुकार ।
महापुरसाँरी मूँडक्याँ गिळगी गाँव गँगार ॥१७॥

मेवाड़के सिरायत

त्रिहुँ झाला, त्रिहुँ पूरब्या, चूँडावत भड़ च्यार ।
दुय सगता, दुय राठवड, सारँगदेव, पँवार ॥१८॥

राठोड (जोधपुर)

ईदाँरो उपगार, कमधज ! मत भूली कदे ।
चूँडो चँवरी चाड दियो मँडोवर दायजै ॥१९॥

१६—ओड़ा—अेक गाँव । सँघारिया इ०—दो रत्न मारे गये । राजड़—राणा राजसिंह । आसकरन्न—चारण आसकरण । बो इ०—वह राजसिंह हिंदुओं-का बादशाह था और वह आसकरण चारण-वर्णका बादशाह था ।

१७—अडसी इ०—उदयपुरके राणा अडसीसे जो अड़े वे पडे हुअे पुकार ही कर रहे है । गँगार गाँव महापुरुषोके मुंडोको खा गया । महापुरुष—नागे साधु जो अडसी से लडे थे ।

१८—भड़—योद्धा । मेवाड़के सोल्ह सिरायतो (प्रधान सरदारो) मे तीन झाला राजपूत, तीन पूरबी (चौहान) राजपूत, चार चूँडावत (चूँडाके वंशज, सीसोदिया), दो शक्तावत (शक्तसिंहके वंशज, सीसोदिया), दो राठोड़, अेक सारंगदेवोत और अेक पँवार राजपूत है ।

१९—हे राठोड ! ईंदा राजपूतोके उपकारको कभी मत भूलना जिन्होंने चूँडाको कन्या देकर दहेजमे 'मंडोर' का दुर्ग दिया था (राजस्थानमे राठोड़ोंका

राव सीहोजी

भीनमाळ लीधी भडै सीहै सेल वजाय।
दत दीधो, सत सग्रह्यो, ओ जस कदे न जाय ॥२०॥

राय चूँडो

चूँडा ! तनै न चीत काचर काळाऊ-तणा।
भूप भयो भैभीत मडोवररै माळियै ॥२१॥

गोगादे

भूखा तिसिया थाकडा, राखीजै नेड़ाह।
ढळिया हाथ न आवसी गोगादे ! घोडाह ॥२२॥

महाराजा रामसिंह

रामो मन भावै नही, ऊतर दीनो देस।
जोधाणो झाला करै, आव धणी वखतेस ! ॥२३॥
केहर, देवो, छतरसी, दोलो राजकँवार।
मरतै मोडै मारिया चोटीआळा च्यार ॥२४॥

महत्त्व यहीसे बढा, राव जोधा तक मडोर राठोड़ोकी राजधानी रहा)। वि०—ईंदा पड़िहार राजपूतोकी अेक शाखा है।

२०—भडै—योधा ने। सेल—भाला। दत—दान।

२१—हे राव चूँडा ! काळाऊ गाँवके काचरे अब तुम्हे याद नही हैं, अब तो मंडोरके महलमे तुम निर्भय होकर बैठे हो।

२२—तिसिया—प्यासे। थाकडा—थके हुअे। नेड़ाह—पास। ढळियाँ—आगे चले जानेपर, बढ जानेपर।

२३—रामो—महाराज रामसिंह। ऊतर दीनो—जवाब दे दिया। झाला—आनेके लिअे हाथसे सकेत, हाथसे बुलाना।

२४—मोडे—मुडित, साधु, यहाँ स्वामी आत्माराम संन्यासी। चोटीआळा—चोटीवाले, अमुडित।

राठोड (वीकानेर)

वीकानेरकी स्थापना

पनरै सै पैंताळवै, सुद वैसाख सुमेर ।
थावर बीज थरप्पियो वीकै वीकानेर ॥२५॥

महाराजा रायसिंह

तूँ सै देसी रूँखडो, म्हे परदेसी लोग ।
म्हॉनै अकबर तेडिया, तूँ कत आयो, फोग ! ॥२६॥

महाराजा जोरावरसिंह

डाढाळी डोकर थयो, का तूँ गयी विदेस ।
खून विना क्यो खोसजे निज वीकॉरा नेस ॥२७॥
अभो ग्राह, वीकाण गज, मारू समँद अथाह ।
गरुड छॉड गोविद ज्यूँ साय करो, जयसाह ! ॥२८॥
वीकाणै जोखो नही, जोखो है जोधाण ।
अभो अपूठो जावसी मेले मोटो माण ॥२९॥

पृथ्वीराज

अस लीलो, पिव पीथळो, चपावती ज नार ।
अै तीनूँ ही अेकठा सिरज्या सिरजणहार ॥३०॥

२६—सै–है । म्हे–हम । म्हॉने–हमको । तेडिया–वुलाये । कत–किसलिअे ।

२७—डाढाळी—करणीजी । डोकर—बूढी । थयी—हुई । का—अथवा । खून—अपराध ।

२८—अभो—जोधपुर-महाराज अभयसिह । साय—सहायता ।

२९—जोखो—जोखिम । अपूठो—वापिस, पीठ देकर । मेले—त्यागकर ।

३०—अस—अश्व, घोड़ा । पिव—पति । पीथळो—पृथ्वीराज (वीकानेर) । अै—ये । अेकठा—अेकत्र ।

पृथ्वीराज कल्याणरा, थारो जस गाऊँ ।
तूँ दाता, हूँ मगतो, इण नातै पाऊँ ॥३१॥

लालादे

तो रॉध्यो नहि खावस्यॉ, रे वासदे निसड्ड ।
मो देखत तूँ बाळिया लाल-रहदा हड्ड ॥३२॥

वीकानेरकी वंशावळी

वीको, नेरो, लूणसी, जैतो, कल्लो, राय ।
दळपत, सूरो, करणसी, अनुप, सरूप, सुजाय ॥३३॥
जोरो, गज्जो, राजसी, परतापो, सूरत्त ।
रतनसिह, सरदारसिह, डूँग, गग महिपत्त ॥३४॥

जयपुर–जोधपुर

जयसिह और वखतसिंह

पत-जयपुर जोधाण-पत, दोनूँ थाप-उथाप ।
कूरम मारचो डीकरो, कमधज मारचो बाप ॥३५॥

जेसळमेर—जोधपुर

आधी धरती भीव, आधी लोदरवै-धणी ।
काक नदी छै सीव राठोडॉ नै भाटियाँ ॥३६॥

३१—कल्याणरा —कल्याणसिहके पुत्र । पाऊॅ—दान पाऊॅ ।

३२—वासदे—वैश्वदेव, अग्नि । बाळिया—जला दिये । लाल-रहदा—लालादेके ।

३५—पत—पति, राजा । जोधाण—जोधपुर । कूरम—कछवाहा, जयपुर-नरेश कछवाहा राजपूत हैं । डीकरो—बेटा । कमधज—कबंधज, राठोड़, जोधपुर-नरेश राठोड़वंशी हैं ।

३६—भीव—राठोड राजा राव भीम । लोदरवा—जेसळमेर राज्यका प्राचीन नाम । काक—अेक नदीका नाम ।

प्रकीर्णक

मुहणोत नैणसी

लाख लखाँराँ नीपजै वड-पीपळरी साख।
नटियो मूँतो नैणसी ताँबो देण तलाक ॥३७॥
लेसो पीपळ लाख, लाख लखारा लावसी।
ताँबो देण तलाक, नटिया सुन्दर-नैणसी ॥३८॥

जाडा चारण

धर जाडी, जाडा अँबर, जाडा चारण जोय।
जाडा नाम अलायदा, और न जाडा कोय ॥

वीरबल

पीथळसूँ मजलिस गयी, तानसेनसूँ राग।
रीझ बोल हँस खेलबो गयो वीरबर साथ ॥४०॥

उपालंभ

उदयसिंह हत्यारा (मेवाड़)

ऊदा ! बाप न मारजे, लिखियो लाभै राज।
देस वसायो रायमल, सरियो अेक न काज ॥४१॥

३७—नटियो—इनकार करनेपर। मूँतो नैणसी—महाराज जसवतसिहका अेक मंत्री और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक। ताँबो इ०—ताँबा देनेकी भी तलाक है (महाराजाके अेक लाखका जुर्माना करनेपर नैणसीका कथन)।

३८—लखारा—लाखका काम करनेवाले।

३९—जाडा—मोटा। अलायदा—खुदाका, परमात्माका।

४०—पीथळसूँ—पृथ्वीराजके साथ। वीरबर—बीरबल।

४१—ऊदा इ०—हे ऊदा ! पिताको नही मारना चाहिअे था, राज्य तो भाग्यमे लिखा होता है तो मिलता है। सरियो—पूरा हुआ। रायमल—ऊदाका बड़ा भाई जो राणा हुआ।

वखतसिंह (मारवाड़)

बापो मत कह, वखतसी ! कॉपत है केकाण ।
अेकण बापो फिर कह्याँ तुरग तजैलो प्राण ॥४२॥
वखता ! वखत-बायरा ! तै मारचो अजमाल ।
हिंदवाणीरो बादसा, तुरकाणीरो काळ ॥४३॥

जगरामसिंह (मारवाड़)

मरज्यो मती महेस ज्यूँ राड विचै पग रोप ।
झगडामे भागो जगो, उण पायी आसोप ॥४४॥

वीकानेरके सरदार

फिट वीदाँ, फिर कॉधळाँ, जगळधर लेडाँह ।
दळपत हुड ज्यूँ पकडियो, भाज गयी भेडाँह ॥४५॥

चूरू-ठाकुर

कॉदा खाया कमधजाँ, घी खायो गोलाँह ।
चूरू चाली, ठाकराँ ! वाजतै ढोलाँह ॥४६॥

४२—बापो—पिता, घोडेको पुकारनेका शब्द । केकाण—घोडा । अेकण—अेकबार । तजैलो—छोड़ देगा । नोट—वखतसिहने अपने बापको मारा था ।

४३—वखतबायरा—भाग्यहीन । अजमाल—अजीतसिंह । हिंदवाणी—हिन्दू-मंडल ।

४—राड—युद्ध । पग रोप—दृढतापूर्वक । जगो—जगरामसिंह । उण पायी इ०—उसे 'आसोप' का ठिकाना मिला ।

४५—वीदाके वंशजोको धिक्कार है, कॉधलके वंशजोको धिकार है, जगळधर वीकाके वंशजोको धिक्कार है, जो उनके होते हुअे मेंढेकी भाँति महाराज दलपतसिंह को शत्रुओंने पकड़ लिया और ये लोग उनको छोड़कर भेडोकी तरह भाग गये ।

४६—राठोडोको प्याज खानेको मिला और गोलोने घीके माल उड़ाये ।

राजस्थानके राजा

सिघॉ सिर नीचा किया, गाडर करै गलार।
अधपतियॉ सिर ओढणी, तो सिर पाघ, मलार! ॥४७॥

२—भौगोलिक

सामान्य

सीयाळै खाटू भलो, ऊनाळै अजमेर।
नागाणो नित-नित भलो, सावण वीकानेर ॥ १ ॥
स्याळै भलो ज माळवो, ऊनाळै गुजरात।
चौमासै सोरठ भलो, बडवो बारह मास ॥ २ ॥

मारवाड़

जळ ऊँडा, थळ ऊजळा, नारी नवलै वेस।
पुरख पटाधर नीपजै, अइ हो मुरधर देस! ॥ ३ ॥

हे ठाकुर साहब! इसीका फल है कि आपका यह किला ढोल बजाते हुअे हाथसे निकल रहा है।

४७—सिहोने सिर नीचे कर रखे है और भेड़ खुश हो रही है। आज राजाओके सिरपर ओढनी पडी है और पगड़ी, हे मल्हारराव होल्कर! वास्तवमे तेरे ही सिरपर है।

२—भौगोलिक

१—सीयाळे—शीतकालमे, जाडेमे। खाटू—जोधपुर राज्यमे अेक स्थान। उनाळे—उष्णकालमे, ग्रीष्ममे। नागाणो—जोधपुर राज्यमे नागोर नामक शहर। सावण—श्रावणमे, वर्षाकालमे।

२—सोरठ—काठियावाड़। बडवो—गुजरातमे अेक स्थान।

३—ऊँडा—गहरा। नवले वेस—नवीन वयकी, नवयुवती, सुन्दरी। पुरख—पुरुष। पटाधर—तलवार-धारी। नीपजै—उत्पन्न होते है। मुरधर—मरुधरा, मारवाड़।

मारू देस उपन्नियाँ, सर ज्यूँ पाधरियाँह।
कडवा कदे न वोलही, मीठा बोलणियाँह ॥ ४ ॥

मारू देस उपन्नियाँ, त्याँका दत सु-सेत।
कूँझ-बचाँ गोरंगियाँ, खजर जेहा नेत ॥ ५ ॥

देस सुरगो, जळ सजळ, मीठा-वोला लोय।
मारू कामण धर दखण जे हर देय तो होय ॥ ६ ॥

देस सुरगो, जळ सजळ, न दिया दोस थळाँह।
घर-घर चद-वदन्नियाँ नीर चढै कमळाँह ॥ ७ ॥

लाटा काठा लीजियै, गेहूँ तीखा खाण।
भड वाँका, तीखा तुरी, अइ हो धर जोधाण ! ॥ ८ ॥

मारवाड़की नदियाँ

रेडीयो रणका करै, लूणी लहराँ खाय।
बाँडी बपडी क्या करै, गुहियासूँ घर जाय ॥ ९ ॥

४—सर—तीर। पाधरिया—सीधे, लबे। कदे—कभी। बोलणिया—बोलने-वाले (होते हैं)।

५—उपन्नियाँ—उत्पन्न हुई। कूँझ इ०—क्रौचके बच्चोके समान गौरवर्ण-वाली। खजर इ०—खजनकी तरह नेत्र होते हे।

६—लोय—लोग। मारू इ०—मारवाडकी कामिनी दक्षिणकी भूमिमे, भगवान् विशेष अनुग्रह करके दे तभी, पत्नीरूपमे मिल सकती है।

८—गेहूँ—खानेके लिअे उत्तम काठा गेहूँ उत्पन्न होता है।

९—रेडीयो, लूणी, बाडी, गुहिया—मारवाडकी ४ नदियाँ। रणका—शोर। बपडी—बेचारी। जाय—नष्ट होते हैं क्योकि वह बहुत जोरसे चढता है।

वीकानेर

ऊँठ, मिठाई, अस्तरी, सोनो-गहणो, साह ।
पाँच चीज पिरथी सिरै, वाह वीकाणा वाह ! ॥१०॥

ढूँढाड़ (जयपुर)

ऊँचा परबत, सेर वन, कारीगर तरवार ।
इतरा वधका नीपजै, रग देस ढूँढाड ! ॥११॥
वागाँ-वागाँ वावड्याँ, फुलवाँदाँ चहूँ फेर ।
कोयल करै टहूकडा, अइ हो धर आँबेर ! ॥१२॥
आम ज उमदा नीपजै गेहूँ अर गुड़ वाड ।
नर नाहर तो नीपजै, सेखा-धर ढूँढाड ॥१३॥

उदयपुर

उदियापुर लजा सहर, माणस घण-मोलाह ।
दे झाला पाणी भरै आयाँ पीछोळाह ॥१४॥
भाटा ! तू सम्भागियो, पीछोळारी टग्ग ।
गुललजा पाणी भरै ऊपर दे-दे पग्ग ॥१५॥

१०—अस्तरी—स्त्री । साह—साहूकार । पिरथी सिरै—पृथ्वीमे सबसे बढकर । वीकाणा—हे बीकानेर ।

११—इतरा इ०—इतनी चीजे श्रेष्ठ उत्पन्न होती हैं । रग—धन्य है ।

१२—वागाँ इ०—बाग-बाग मे वापिकाएँ है, चारो ओर फुलवाडियाँ हैं ।

१३—सेखा धर—शेखाकी भूमि । जयपुरमे शेखा प्रसिद्ध वीर हो चुका है ।

१४—लजा—सुन्दर । माणस इ०—जहाँके मनुष्य बहुमूल्य हैं । पीछोळाह—उदयपुरकी सुप्रसिद्ध झील ।

१५—भाटा—हे पत्थर । सम्भागियो—सौभाग्यशाली । टग्ग—सहारा देने की चीज । गुललजा—सुन्दरियाँ ।

उदियापुररो कामणी गोखाँ काढै गात ।
मन तो देवाँरा डिगै, मिनखाँ कितोक वात ? ॥१६॥

आबू

टूकै-टूकै केतकी, झिरणै-झिरणै जाय ।
अरबुदकी छबि देखताँ और न सालै दाय ॥१७॥
जाणै जिके सुजाण नर, नहि जाणै सो बोक ।
जमी ओर असमान विच आबू तीजो लोक ॥१८॥
वनसपती पाखर वणी, वणिया टूक विहद्द ।
पटा विछूटै नीझरण आयो मद अरबुद्द ॥१९॥
गह घूमी, लूमी घटा, वीजाँ सहिराँ वद्द ।
वादल माँय विराजियो आजूणो अरबुद्द ॥२०॥
चपा माणो, गिर चढो, आँबा भखो अव़ल्ल ।
अरबुदसूँ अळगा रहै, जिणरो कोण हव़ल्ल ? ॥२१॥

१६—उदियापुररी इ०—उदयपुरकी कामनियाँ जब झरोखोके वाहर अपने सुन्दर शरीरको निकालती हैं तो उन्हे देखकर देवोका भी मन डिग जाता है, मनुष्योकी तो बात ही कितनी ।

१७—सालै दाय—पसंद आता है ।

१८—जिके—वे । बोक—मूढ । जमी—पृथ्वी ।

१९—पाखर—प्रखर, प्रचुर, सुन्दर । विहद्द—बहुत अधिक । नीझरण—झरने । आयो इ०—मानो अर्बुद हाथीकी भाँति मद-युक्त हो रहा है ।

२०—वीजाँ—बिजली । सहिराँ—शिखरोपर । आजूणो—आजका ।

२१—अव़ल्ल—उमदा । हव़ल्ल—हाल ।

राड़धड़ा

घर ढाँगी, आलम धणी, परगळ लूणी पास ।
लिखियो जिणनै लाभसी राडधडारो वास ॥२२॥

गोढाण

अइअे आँवळियाँह ! गुणसागर गोढाणरी ।
फूलाँ बहु फळियाँह, नीका दाँतण नीपजै ॥२३॥७०॥
॥५९५॥

२२—घर इ०—जहाँ ढाँगी नामक रेतके टीबेकी जमीन है, जहाँ आल्मजी नामक देवता सरक्षक हैं, और जहाँ प्रचुर जलवाली लूणी नदी पासमे ही है, अैसे राड़धडाका निवास जिनके भाग्यमे लिखा है उन्हीको मिलेगा ।

———

५. हास्य और व्यंग

हास्य और व्यंग

रावण

राजा रावण जनमियो, दस मुख, अेक सरीर।
जननीनै साँसो भयो, किण मुख घालूँ खीर॥ १॥

जनरल प्रतापसिंह

दाडी-मूँछ मुँडायकै सिर पर धरियो टोप।
प्रतापसी तखतेसरा! (थारै) बाकी घटै लँगोट॥ २॥

महाराणा सज्जनसिंह

आगै-आगै वाजता हिंद-हद्दरा सूर।
अब देखो मेवाडपत तारा हुया हजूर!॥ ३॥

मारवाडी रैल

नही तार, नहि टैम है, नही वतीमे तेल।
आ चालै मनरै मतै मारवाडरी रेल॥ ४॥

हास्य और व्यंग

१—जननीनै—माताको चिंता हो गयी कि किस मुखमे दूध पिलाऊँ।

२—तखतेसरा—तखतसिंहके बेटे। बाकी इ०—फिर दंडी स्वामी बननेमे कोई कसर नही।

३—आगे इ०—सज्जनसिंहजीको सितारे-हिंद (G C S I) की उपाधि मिलनेपर चारण कविका कथन—पहले समयमे तो मेवाडके राणा हिंदुआ-सूरज कहलाते थे पर देखो अब वे हिन्दके तारे बन गये हैं। पाठान्तर—घटत-घटत अैसे घटे तारा भये हजूर।

४—टैम—टाइम, आने-जानेका नियमित समय। वती—बत्ती, रोशनी भी ठीक नही। आ इ०—यह मारवाड़की रेल अपने ही मनके अनुसार चलती है।

मारवाड़

बाळूँ बाबा ! देसडो पाणी ज्याँ कूवाँह ।
आधीरात कुहक्कडा, ज्यूँ माणस मूवाँह ॥ ५ ॥
बाळूँ बाबा ! देसडो पाणी-सदी तात ।
पाणी-केरै कारणै प्रिय छडै अधरात ॥ ६ ॥
बाबा ! मत देइ मारुवाँ वर कूँवारि रहेस ।
हाथ कचोळो, सिर घडो, सीचतीय मरेस ॥ ७ ॥
बाबा ! मत देइ मारुवाँ, सूधा गोवाळाँह ।
कंध कुहाड़ो, सिर घडो, वासो मझ थळाँह ॥ ८ ॥
जिण भुँय पन्नग पीवणा, केर-कँटाळा रूँख ।
आक-फोगे छाँहडी, हूँछाँ भाँजै भूख ॥ ९ ॥

५—बाळूँ इ०—हे बाबा ! उस देशको जला दूँ जहाँ पानी (बहुत गहरे) कुवोंमे मिलता है और पानी निकालनेवाले आधीरातसे ही अैसा शोर करने लगते हैं मानो कोई मनुष्य मर गया हो ।

६—पाणी इ०—जहाँ पानीका कष्ट है और पानीकी खातिर प्रियतम आधीरातको ही छोड़कर चला जाता है (पानी निकालनेवाले रात रहते ही कुएँ-पर चले जाते हैं) ।

७—बाबा इ०—हे बाबा ! मारवाड़के निवासीके साथ मेरा विवाह न करना चाहे मै कुमारी भले ही रह जाऊँ । हाथमे कटोरा और सिरपर घड़ा इस प्रकार वहाँ मै दिन-रात पानी ढोती-ढोती ही मर जाऊँगी ।

८—सूधा इ०—मारवाड़के निवासी सीधे-सादे गाय चरानेवाले है । वहाँ कंधेपर कुल्हाड़ी और सिरपर घडा रखना होगा तथा थली (मरुस्थल) के बीच वास करना होगा ।

९—१०—जिण इ०—उस मारवाड़की भूमिमे पी जानेवाले साँप होते हैं, वहाँ करील और ऊँटकटारे हो पेड़ हैं, आक और फोगके नीचे ही छाया मिल

पहरण-ओढण कामळा, साठे पुरसे नीर।
आपण लोक उभाँखरा, गाडर-छाळी खीर ॥१०॥
मारवाडकै देसमे एक न भाजै रिड्ड।
ऊचाळो, क अ-वरसणो, कै फाका, कै तिड्ड ॥११॥
पढै गुणै नहि पेखवै, च्यारूँ वरण निचत।
मारवाड़री मूढता मिटसी दोरी, मित ! ॥१२॥

ढूँढाड (जयपुर)

गाजर मेवो, काँस खड, पुरख ज पून-उघाड।
ऊँधा ओझर अस्तरी, अइ हो धर ढूँढाड ! ॥१३॥

आबू

धर चगी, नर चोरटा, वागरियाँरै वेस।
भालडियाँ घिसता फिरै, अइ हो आबू देस ! ॥१४॥

सकती है और भुरट घासके बीजोसे भूख दूर करनी पड़ती है, पहनने-ओढनेको केवल कंबल मिलते है, साठ पुरसकी (अेक पुरस कोई तीन हाथका होता हे) गहराईपर पानी मिल्ता है, वहाँके लोग अेक स्थानपर टिककर नही रहते और वहाँ भेड और बकरीका ही दूध मिल्ता है।

११—भाजै—दूर होता है। रिड्ड—अरिष्ट, कष्ट। ऊचाळो—अकालके समयमें अपने पशुओ सहित दूसरे देशको चला जाना। क, का—या, अथवा। अ-वरसणो—अवर्षा। फाको—टिड्डियोके बच्चोका दल। ऊचाळो इ०—जहाँ ऊचाळा, अवर्षा, टिड्डीदल, या फाकेका आगमन—इनमें से कोई अेक या अधिक उत्पात अवश्य होते हैं।

१२—पेखवै—देखते हैं। निचत—निश्चित। दोरी—कठिनतासे। मित—हे मित्र।

१३—जहाँपर गाजर ही मेवा है, जहाँ खेतोमे काँस नामक घास पैदा होता है, जहाँके पुरुष चूतडोको ढकते ही नही और जहाँ उलटे पेटवाली स्त्रियाँ हैं, हे अैसे ढूँढाड देश ! तुझे धन्य है।

जव खाणो, भखणो जहर, पाळो चलणो पथ ।
आबू ऊपर बैसणो भलो सराह्यो, कथ ! ॥१५॥

जेसळमेर

पग पूगळ, धड कोटडै, बाहू बायडमेर ।
फिरतो-घिरतो वीकपुर, ठावो जेसळमेर ॥१६॥

माळवो

बाळूँ बाबा ! देसडो ज्याँ फीकरिया लोग ।
अेक न दासै गोरियाँ, घर-घर दीसै सोग ॥१७॥
बाळूँ बाबा ! देसडो, ज्याँ पाणी सेवार ।
ना पणियारी झूलरो, ना कूवै लैकार ॥१८॥

विभिन्न देश

पंडितनै पूरब भली, ग्यानीनै पजाब ।
मारवाड भलि मूर्खनै, कपटीनै गुजरात ॥१९॥

१५—हे पति ! आबूके निवासको आपने अच्छा सराहा जहाँ खानेको जौ मिलते हैं, जहर सा पानी पीना पडता है, और पैदल मार्ग चलना पड़ता है ।

१६—(अकालका कथन) मेरे पैर पूगळमे, धड कोटडेने और भुजाएँ बाड़मेरमे रहती है; घूमता-घामता बीकानेर भी पहुँचता रहता हूँ पर जेसलमेर मे ता निश्चितरूपसे मिलता हूँ ।

१७—ज्याँ—जहाँ । फीकरिया—फीके, नीरस । दीसै—दिखायी देती है । गोरियाँ—सुंदरी स्त्रियाँ । सोग—शोक, मातम (काले कपड़े पहननेका रिवाज होनेसे) ।

१८—सेवार—सेवाल । ना इ०—न तो पनिहारियाँ झुड बनाकर पानी लानेको चलती हैं और न कुँओंपर चलानेवालोका सुरीला शब्द ही होता है (जैसा कि मारवाड़मे हुआ करता है) ।

आतम-ध्यानी आगरो, जारे वीकानेर।
राग-दोख गुजरातमे, निदक जेसळमेर ॥२०॥

विभिन्न जातियाँ

चाँपा पाळण चारणाँ, ऊदा पाळण डूम।
मेहा पाळण बामणाँ, भाटी सदाई सूम ॥२१॥
जाट, जँवाई, भाणजा, रैबारी, सोनार।
इतरा कदे न आपरा, कर देखो उपगार ॥२२॥
वीजावरगी वाणियो, दूजो गूजर - गोड।
तीजो मिलै ज दायमो, करै टापरो चोड ॥२३॥
वणी वणावै वाणिया, वणी विगाडै जाट।
मूँडै सीस सरायकर डूम, कवीसर, भाट ॥२४॥
चाकर, चोर, र पारधी भूखा सारै काज।
धाया काम करै नही नाई, गडक, बाज ॥२५॥
गैला, गँडक, गुलाम, बुचकारयाँ बाथै पडै।
कूटया देवै काम, रीस न कीजै, राजिया ! ॥२६॥

२१—चाँपावत चारणोके पालक हैं, ऊदावत डूमोके, और मेहा ब्राह्मणोके, पर भाटी राजपूत सदा ही कजूस रहे है (वे किसीको नही पालते)।

२२—रैबारी—ऊँट चरानेवाली जाति। इतरा—इतने। आपरा—अपने। उपगार—उपकार।

२३—करै इ०—सत्यानाश कर देते है।

२४—सरायकर इ०—तारीफ करके सिर मूँडते है। कवीसर—कवीश्वर।

२५—पारधी—शिकारी, व्याध। सारै—पूरा करते हैं। धाया—पेट भरे हुअे। गडक—कुत्ता।

२६—गैला इ०—पागल, कुत्ते और गुलाम जातिके लोग प्रेम करनेसे लड़ने लगते हैं। वे कूटनेसे ही काम देते है।

जंगळ जाट न छेडियै, हाटाँ वीच किराड ।
रंघड कदे न छेडियै, जद-तद करै विगाड ।।२७।।
तिरियाँ, तुरकाँ, वाणियाँ, भील भला मत जाण ।
देख गरीब न भूलजे, निपट कपटकी खाण ।।२८।।
अग्गमबुद्धी वाणियो, पिच्छमबुद्धी जाट ।
तुर्तबुद्धी तुरकडो, बामण सप्पमपाट ।।२९।।
अग्गमबुद्धी वाणियो, पिच्छमबुद्धी ब्रह्म ।
तुर्तबुद्धी तुरकडो, मुक्को मारै घम्म ।।३०।।
सबसूँ बुरो सुनार, वाण्यो उणसूँही बुरो ।
दरजी द्यानतदार दीठो कोइ न, दानिया ! ।।३१।।

राजपूत सरदार

बै घोड़ा, बै गाँम, रिजक वही, राजा वही ।
रजपूताँरो राम नीसरग्यो क्यूँ, नोपला ! ।।३२।।

२७—किराड़—बनिया । रंघड़—मुसल्मान । जद-तद—जब कभी, कभी-न कभी ।

२८—देख इ०—इन्हे गरीब, सीधा-सादा, देखकर धोखा न खाना । खाण—खान ।

२९—अग्गमबुद्धी—आगेसे सोचनेवाला, दीर्घदर्शी । पिच्छमबुद्धी—पीछे सोचनेवाला । तुर्तबुद्धी—वक्तपर सोचनेवाला । सप्पमपाट—सफंसफा, बिल्कुल खाली ।

३०—ब्रह्म—ब्राह्मण । घम्म—घूँसेकी आवाज ।

३१—वाण्यो—बनिया । उणसूँही—उससे भी । द्यानतदार—ईमानदार । दीठो—देखा ।

३२—बै—वे । राम इ०—सत्त्वहीन कैसे हो गये ।

ठाकर गेया, ठग रह्या, रह्या मुलकरा चोर।
वै ठकराण्याँ मर गयी, ठाकर जिणती और ॥३३॥

आजकालरा ठाकराँ! (थाँसूँ) ठकराण्याँ रूडी।
फिट है थाँरी पाघडी, धिन वाँरी चूडी ॥३४॥

घोचो लागाँ घाव घी-गेहूँ भावै घणा।
अहडा तो अमराव रोटयाँ मूँघा, राजिया! ॥३५॥

कविराजा! खेती करो, हळसूँ राखो हेत।
गीत जमीमे गाड दो, ऊपर राळो रेत ॥३६॥

बनिया

जळ नदियाँ मिळियाँ जके, मिळिया समँद मँझार।
वित कर चढिया वाणियाँ पूगा समँदाँ पार ॥३७॥

दरसावै जगने दया, पाप उठावै पोट।
हितमे, चितमे, हाथमे, खतमे, मतमे खोट ॥३८॥

३३—ठाकर—ठाकुर, जागीरदार जिनकी उपाधि ठाकुर होती है। मुलकरा—मुल्क भरके। ठकराण्याँ—ठकुरानियाँ। ओर—दूसरे प्रकारके (सच्चे)।

३४—ठाकराँ—हे ठाकुरो। थाँसूँ—तुमसे। रूडी—भली। फिट—धिक्कार। धिन—धन्य।

३५—घोचेका (लकडीके अेक तिनकेका) घाव लग जानेपर भी जिन्हें घी-गेहूँके तर माल खानेकी आवश्यकता हो जाती है, अैसे सरदार तो रोटियोंके बदले भी रहे तो भी महँगे हैं।

३६—हेत—प्रेम। राळो—डालो (क्योंकि अब कोई राजपूत सरदार तुम्हारी कविताकी कदर करनेवाला नहीं रहा)।

३७—जो जल नदियोंमे मिल गये वे समुद्रमे मिल सकते हैं। पर बनियोंके हाथ जो धन चढ गया वह समुद्रके भी पार पहुँच गया। नदीका जल समुद्रमें मिल जाता है पर बनियोंके हाथो चढा हुआ धन फिर नही मिलता।

३८—पाप इ०—और पापका बोझ साथ ही उठाता है। खोट—कपट।

बाण न छोडै वाणियो, टाणै आयी टेव ।
दाव पड़्यॉ, विदरो कहे, ठगै सगो गुर-देव ॥३९॥
दी सुरही हाजर हुयी, विनय सुणावै वात ।
गादी-हूँत भगावियो जमराजा इण जात ॥४०॥
वणक-पुत्र कागद लिखै, काना-मात न देत ।
हीग-मिरच-जीरो लिखै, हॅग-मर-जर कर देत ॥४१॥

साधु-महत

चेला लावै मॉगकर, बैठा खावै मंथ ।
राम-भजनका नॉव है, पेट भरणका पथ ॥४२॥
मूँड मुँडायाँ तीन गुण,—मिटी टाटकी खाज ।
वावा वाज्या जगतमे, मिल्या पेट-भर नाज ॥४३॥

फूहड पति

नर-रिपु-वाहण तास रिपु, ता पति वाहण जोय ।
सखी ! हमीणा कथनै, मत वतळावो कोय ॥४४॥

३९—बाण—आदत । दाव पड्यॉ— दाव आनेपर । ठगै इ०—सगे गुरुको भी ठग लेता है ।

४०—दी सुरही—दान की हुई गाय । गादी हूँत इ०—बनियोकी इस जातिने यमराजको भी अपने सिहासनसे भगा दिया (कहानी पीछे टिप्पणीमें देखिये) ।

४२—मथ—महत ।

४३—गुण—लाभ । टाट—खोपडी । खाज—खुजली । वाज्या—कहलाये ।

४४—नर इ०—मनुष्यका शत्रु यम, उसका वाहन महिष, उसकी शत्रु दुर्गा, उसके पति महादेव, उनका वाहन बैल । सखी इ०—हे सखी ! देखो, मेरा पति पूरा बैल है, उसे कोई मत पुकारो ।

मैं जाॅण्यो अधसेर है, पिव तो पूरा सेर।
हेम-सुता–पत–-वाहणा, तामे रती न फेर ।।४५।।
मैं परणती परखियो, मूँछाॅ-तणो मरट्ट।
सायधण फेरै अरटियो, फेरै पीव घरट्ट ।।४६।।
मैं परणंती परखियो, लाॅबो घणो लड़ाक।
आलेडाकी भीत ज्यूॅं पडै दडाक-दडाक ।।४७।।
सखी! हमीणा कथरी दिलमे आयी दाय।
घर रोखाळै माॅगणा, माल पराया खाय ।।४८।।
सखी! हमीणा कथरी, काॅई कहूॅं वणाय।
आटा काढै औररा घराॅ पराया जाय ।।४९।।६४४।।

४५—हेम-सुता-पत-वाहणा—हेमसुता अर्थात् पार्वती, उसके पति अर्थात् महादेव, उनका वाहन अर्थात् बैल। फेर—फरक।

४६—परखियो – देखा। अरटियो—अरहट। घरट्ट—घट्टी, चक्की।

४७—लाॅंबो लडाक—बहुत लंबा (परिहासात्मक शब्द)। आलेड़ा—गीला। दडाक-दड़ाक—तडातड़।

४८—रोखाळै—निगरानी करता है।

नोट—मिलाओ वीर-रसमे दूहा न० २७ से ३१।

६. प्रेम

प्रेम-महिमा

पोथा तो थोथा भया, पडित भया न कोय ।
ढाई आखर प्रेमका, पढै स पडित होय ।। १ ।।
साजन ! वेल सनेहरी किणसूँ कही न जाय ।
जैसे छहियाँ फूलकी माँहोमाँह समाय ।। २ ।।
प्रेम-कहाणी कहत हूँ, सुणो सखी री ! आय ।
पिव ढूँढणको हम गयी, आयी आप हिराय ।। ३ ।।
प्रीत-रीतकै काज, पछी पण बधण सहै ।
तीतर बहरी बाज गगन गया क्यूँ वावडै ।। ४ ।।

प्रेम निर्वाहकी कठिनता

सब कोइ प्रीत वटावते, सब कोइ करते भाव ।
सम्मन ! वै कुण रूँखडा, ज्यॉ न झकोळै वाव़ ।। ५ ।।
प्रीत-प्रीत सब कोई कहै, कठिन प्रीतकी रीत ।
आद-अत निबहै नही, ज्यो बाळूकी भीत ।। ६ ।।

प्रेम-महिमा

२—किणसूँ—किसीसे भी। छहियाँ—छाया। माँहोमाँह—भीतर ही भीतर।

३—आप—खुदको ही। हिराय—खोकर।

४—पण—भी। बहरी—अेक पक्षी। वाव़डै—लौट आते हैं। गगन इ०—नहीं तो आकाशमे उड़ जानेके बाद भी फिर क्यों लौट आते हैं ?

५—वटाव़ते—लेनदेन करते हैं। भाव इ०—मोलचाल करते हैं। कुण—कौन। ज्यॉ—जिनको। वाव़—वायु। झकोळै—झकझोरता है।

प्रीत-प्रीत सब कोइ करै, कहा करघे मे जात।
करबो और निभायबो, वडी कठिन या वात ॥ ७ ॥
खडग-धारपर काय, चालै तो चलवो सहल।
मुसकल जगरै मॉय नेह निभावण, नागजी! ॥ ८ ॥
प्रीत निभावण कठन है, प्रीत करो मत कोय।
भॉग भखण है सहज पण लहरॉ मुसकल होय ॥ ९ ॥
जाणै सोई जाणसी, प्रीत-रीतको भेद।
बध्या पीर प्रसूतको, कहा वतावै खेद? ॥१०॥
अकथ कहाणी प्रीतकी, कही न मानै कोय।
जाणै सो जाणै, अरे! जिण सिर वीती होय ॥११॥

सच्चा प्रेम

प्रीत करै अैसी करे, करके क्यो छिटकाय।
जैसे रोगी नीमकूॅ छाण-घोट पी ज्याय ॥१२॥
अैसो नेह लगाइयै, जैसो काळो रंग।
मैलो हुवै न मॅद पडै, धोयो धुपै न अग ॥१३॥
केसरको रॅग जरद है, चूनैको रॅग सेत।
दोनूं मिल लाली करै, अैसो राखो हेत ॥१४॥

७—करघे मे—करयेमे। कहा जात—क्या जाता है।

८—काय—कोई, कभी। सहल—सहज।

९—कठन—मुश्किल। लहरॉ—भंगकी तरगे।

१०—जाणसी—जानेगा। बंध्या—वंध्या स्त्री प्रसूतिकी पीड़ाके कष्टको क्या वता सकती है।

१२—छिटकाय—छोड़ें। नीमकूॅ—खारा होनेपर भी।

१३—मॅद—मंद, कम। धुपै—धुलता है।

सम्मन ! अैसी प्रीत कर, ज्यो हिन्दूकी जोय ।
जीताँ-जी तो सँग रहै, मरचाँ पै सत्ती होय ।।१५।।
साजन ! अैसी प्रीत कर, निस अर चदै हेत ।
चदै विन निस साँवळी, निस विन चदो सेत ।।१६।।

बडोंका प्रेम

प्रीत भली पारे वडा, रूपै रूडा मोर ।
प्रीत करै नै परहरै, माणस नहि वै चोर ।।१७।।
पहली परत न कीजियै, ऊँच-नीचसूँ प्रीत ।
कर पीछै कहियै नही, रहियै अेकहि रीत ।।१८।।
सदा ज नवलो नेह जिण-तिणसूँ करणो नही ।
आगलडारै छेह आप-तणो दीजै नही ।।१९।।
सम्मन ! प्रीत न जोडिये, जोड न तोडो कोय ।
तोडचाँ पीछे जोडियै, गाँठ - गँठीली होय ।।२०।।

१५—जोय—स्त्री । जीताँ जी—जीते हुअे । मर्याँ पै—मरनेपर ।

१६—निस इ०—जैसा प्रेम रात्रि और चन्द्रमामे है । साँवळी—काली, दुखी । सेत—श्वेत. कातिहीन, मलिन ।

१७—पारै—पालते हैं, निभाते हैं । वड़ा—बडे लोग । नै—और । परहरै—छोड़ देते हैं । माणस—मनुष्य । बै—वे । पाठान्तर, पारेवड़ा—कबूतरोकी ।

१८—परत—भूलकर भी ।

१९—सदा इ०—नित्य नया प्रेम जिस किसीसे बिना सोचेबिचारे नही करना चाहिअे, और सामनेवालेके (दूसरेके) छेह देनेपर स्वयं अपना छेह नही देना चाहिअे । छेह देना—अन्त देना, क्रुद्ध होना ।

२०—गाँठगँठीली—अनेक गाँठोवाली ।

सठ-सनेह, जीरण वसन, जतन करंतां जाय ।
चतर-प्रीत, रेसम-लछा, घुळत-घुळत घुळ जाय ॥२१॥
प्रीत पुराणी ना पडै, जो उत्तमसूँ लग्ग ।
सो जुग जो जळमे रहै, पथरो तजै न अग्ग ॥२२॥
सत प्रीत जासो करै, अवस निभावै अंत ।
बोल वचन पळटै नही, गिरा रेख गजदत ॥२३॥
गरवा आदर ना करै, करै प्रीत पाळत ।
सकर विख,सायर वहनि, कोर मधर धारत ॥२४॥
जळ न डुबोव्रत काठकूँ, कहो काहेकी प्रीत ? ।
अपणा सीच्या जाणकर, यही वडाँकी रीत ॥२५॥

आदर्श प्रेमी

डीघी पाळ तळावरी, हसा बैठ्या आय ।
प्रीत पुराणी कारणै चुग-चुग काँकर खाय ॥२६॥

२१—जीरण वसन—पुराना वस्त्र । जतन इ०—यत्न करते हुए भी । रेसम-लछा—रेशमके लच्छे । घुळनो—गहरा हो जाना ।

२२—लग्ग—लगती है । पथरी—चकमक पत्थर । अग्ग—आग ।

२३—जासो—जिससे । अवस—अवश्य । गिरा इ०—उनके वचन हाथी-दाँतपरकी लकीर है जो कभी नही मिटती ।

२४—गरवा—बडे । करै—यदि आदर करते हैं, अपनाते हैं । शंकर—जैसे शंकर विषको और समुद्र अग्निको हृदयके भीतर रखते हैं ।

२५—डुबोवत—डुबोता है । अपणा इ०—यह जानकर कि मैंने ही इसे सींचकर बड़ा किया है ।

२६—तालावकी ऊँची पारपर हंस आकर बैठ गये हैं और पुरानी प्रीतिके कारण चुग-चुगकर कंकर खाते हैं (पानीके सूख जानेपर भी हंस पुराने प्रेम को नही भूलते) ।

ताल सूख परपट भयो, हंसा कहूँ न जाय ।
प्रीत पुराणी कारणै चुग-चुग कॉकर खाय ।।२७।।
हाय दई ! कैसी भयी, अणचाहतको सग ।
दीपककै भाव नही, जळ-जळ मरै पतंग ।।२८।।
आव, पतग ! निसक जळ, जळत न मोडो अग ।
पहली तो दीपक जळै, पीछे जळै पतग ।।२९।।
पय-पाणीकी प्रीतडी, किस विध बाँध्यो नेह ।
नँद नरहरिया, आप जरि वाकी राखी देह ।।३०।।
पय उबरचो, पाणी जरचो, तब दुध चल्यो रिसाय ।
नँद नरहरिया, तो रहै, पाणी राखै आय ।।३१।।
आग लगी वन-खंडमे, दाझ्या चदण-वस ।
हम तो दाझ्या पंख विन, तूँ क्यो दाझै, हंस ! ।।३२।।

२८—हाय विधाता ! यह कैसी बात हो गई जो नही चाहनेवालेका संग हुआ। बेचारा पतिगा तो जल-जलकर मरता है पर दीपकके लिअे कुछ भी नही।

२९—ऊपरके दोहेका उत्तर—हे पतिगे ! तू आ और निःशक होकर जल, (याद रख) पहले दीपक स्वय जलता है तब कही तेरे जलनेकी बारी आती है ।

३०—पय-पाणी—दूध और पानी। नन्द नरहरिया—कविका नाम। आप जरि—पानीने स्वयं जलकर। वाकी—दूधकी। नोट—दूधको गर्म करते हैं तो पहले उसमे जो पानी होता है वह जलता है और उसके जलनेके बाद दूध जलने लगता है।

३१—पाणी राखै इ०—यदि फिर पानी आकर रोके (उफनते दूधमे पानी डाल दिया जाय तो वह बैठ जाता है)।

३२—दाझ्या—जल गये। चन्दण वस—चन्दन और बॉसके पेड़। हम तो इ०—पेड़ोका कथन वही रहनेवाले हंसके प्रति। दाझै—जलता है।

पान मरोड्या, रस पिया, बैठ्या अेकण डाळ ।
तूम जळो, हम उठ चलै, जीणो कितोक काळ ? ॥३३॥

ओछोका प्रेम

डूँगर-केरा वाहळा, ओछाँ-केरा नेह ।
वहता वहै उँतावळा, छिटक दिखावै छेह ॥३४॥
सीच्या हा गुण जाणकै, इण न करी कुळ-काण
छातीपर पैंडा किया, ओछैकी पहचाँण ॥३५॥
सीच्या हा गुण जाणकै, निकस्या निहचै काट ।
देखो प्रीत अजाणकी, सिरपर वाही वाट ॥३६॥
प्रीत करी छी नीचसे, पलै ज बँधियो कीच ।
सीस काट आगै धरचो, रह्यो नीच-को-नीच ॥३७॥

प्रेमका नाश

पय-पाणीकी प्रीतडी, पड्यो ज कपटी लूण ।
खड-खड कर मन गयो, बहुरि मिलावै कूण ॥३८॥

३३—मरोड्या—मरोड़े । बैठ्या इ०—अेक ही डालपर बैठे । तूम इ०—भला तुम जलो और हम तुम्हे छोड़कर चले जायँ । जीणो इ०—जीना कितने दिनोंका जो इसके लिअे मित्रको छोडकर चल दे ।

३४—पहाडोके नाले और ओछोका प्रेम चलते समय (आरम्भमे) तो खूब तेजीसे चलते हैं पर तुरन्त ही अपना अन्त दिखा देते हैं । (तुरन्त ही उनका अन्त आ पहुँचता है)

३५—सीच्या हा—सीचे थे । इण० इ०—इन्होने कुलकी कानका ध्यान भी न रखा, छातीपर रास्ता बनाया ।

३६—निकस्या—निकले । निहचै—निश्चय ही । सिरपर इ०—सिरपर रास्ता बनाया । पले इ०—पल्लेमे बँधा, हाथ आया ।

३७—छी—थी ।

३८—पय—दूध । लूण—नमक । बहुरि—फिर । कूण—कौन ।

अगन सोर, गज केहरी, पाव-पदम, सिर-मोड ।
उदैराज, कैसे वणै, प्रीत-कपट अेक ठोड़ ।।३९।।
काच-कटोरो, नैण-जळ, मोती, दूध, र मन्न ।
इतरा फाटचा ना मिलै, लाखूँ करो जतन्न ।।४०।।
मन, मोती, चख, मेर, पाको घट, मूँगो, मुकुर ।
फूटा अेता फेर मेळचा मिळै न, मोतिया ! ।।४१।।
मोती फाटचो वीधता, मन फाटचो अेक बोल ।
मोती फेर मँगाय लो, मन तो मिलै न मोल ।।४२।।
मन फाटचा, कण-कण हुआ, फेर घडै तो राम ।
हरीदास जन यूँ कहै, नही औरका काम ।।४३।।६८७।।

३९—अग्नि और शोरा, हाथी और सिंह, चरण और माथेका मुकुट, तथा प्रेम और कपट—ये अेक ठौर कैसे रह सकते हैं ।

४०—र—और । इतरा इ०—इतने फटनेके बाद नही मिल सकते ।

४१—चख—आँख । पाको घट—पक्का घडा । मूँगो—मूँगिया । मुकुर—काच । अेता—इतने । फेर—फिर । मेळ्या इ०—मिलाये जानेपर नही मिल सकते ।

४२—वींधतों—बेधते हुअे । अेक बोल—अेक कटु-वचनसे ।

४३—कण-कण—कन-कन, टुकड़े-टुकड़े । फेर—फिर ज्योका-त्यो बना दे अैसा तो अेक ईश्वर ही है ।

---

७. श्रृंगार रस

१—प्रियतम

साजन-साजन हूँ करूँ, साजन जीव-जडी ।
साजन फूल गुलाबरो, निरखूँ घडी-घडी ॥ १ ॥
साजन-साजन हूँ करूँ, साजन जीव-जडी ।
सजन लिखा लूँ चूडलै, वाचूँ घडी-घडी ॥ २ ॥
साजन ! तुम-मुख जोय जग सारो ही जोइयो ।
अैसो मिल्यो न कोय, ज्यॉ देख्यॉ तुझ वीसरूँ ॥ ३ ॥
सम्मन, चूडी काचकी कोडी-कोडी देख ।
जब गळ लागी पीवकै, लाख टकाँकी अेक ॥ ४ ॥
साजन खारा खॉड-सा, केसर जिसा कुरग ।
मैला मोती सारसा, ओछा जॉण समद ॥ ५ ॥
साजन अैसा कीजिये, जामे लखण बतीस ।
भीड पड्यॉ विरचै नही, सीस करै बगसीस ॥ ६ ॥

१—प्रियतम

१—साजन—प्रियतम । जीव-जड़ी—प्राणोके लिअे सजीवनी बूटी ।

२—चूड़लै—चूडेपर । सजन—साजन यह शब्द ।

३—जोय—देखकर । जोइयो—देखा । ज्यॉ इ०—जिसे देखनेसे तुम्हें भूल जाऊँ ।

४—कोडी इ०—कौड़ीके मूल्यमे बिकती देख पड़ती है वही ।

५—प्रियतम खॉड जैसे खारे हैं, केशरके समान कुरंग (बुरे रंग के) हैं, मोतीके समान मैले हैं, और समुद्रकी तरह ओछे हैं (आकर्षण और वर्णन-वैचित्र्यके लिअे विरोधात्मक कथन) ।

६—लखण—लक्षण, सामुद्रिकमे बत्तीस लक्षण प्रसिद्ध हैं । भीड—कष्ट । विरचै—छोड़े । बगसीस—बख्शीश, त्याग ।

साजन ऐसा कोजिये, जैसा रेसम रंग।
सिर सूळी, धड़ काँगरै, तोइ न छूटै सग ॥ ७ ॥
साजन ऐसा कीजिये, जैसा कूवै कोस।
पग दे पाछा ठेल दे, रती न मानै रोस ॥ ८ ॥
साजन इसा न चाहिअे, जैसा झाडी-बोर।
ऊपर लाली प्रेमकी, हिरदा माँय कठोर ॥ ९ ॥
हूँ बळिहारी सज्जणाँ, सज्जण मो बळिहार।
हूँ सज्जण पग-पानही, सज्जण मो गळ-हार ॥१०॥
जळहर वसै कमोदणी, चंदो वसै अकास।
जो ज्याँहीकै मन वसै, सो त्याँहीकै पास ॥११॥
ससनेही समदाँ परै, वसत हिया मझार।
कुसनेही घर आँगणै, जाँग समदाँ पार ॥१२॥

८—कूवै कोस—कुअेसे पानी निकालनेका चमडेका पात्र (चरस), जिसको पानी उँडेल लेनेके बाद निकालनेवाला पैर मारकर फिर कुअेमें डाल देता है। रती—थोडा भी। रोस—रीस।

९—इसा—अैसे। बोर—बेर।

१०—मैं प्रियतमपर बलिहारी हूँ और प्रियतम मुझपर बलिहारी हैं। मै प्रियतमके पैरोकी पगरखी हूँ और प्रियतम मेरे गलेके हार हैं।

११—जळहर—जलाशय।

१२—सच्चे प्रेमी समुद्रके पार भी रहते हो तो भी हृदयमे ही रहते हैं। और जो प्रेमी सच्चे नही हैं वे घरके आँगनमे रहते हुअे भी मानो समुद्रके पार रहते हैं।

२—नायिका

गति गंगा, मति सरसुती, सीता सीळ-सुभाइ ।
महिलाँ सरहर मारुवी कळिमे अवर न काइ ।। १ ।।
गति गयद, जँघ केळग्रभ, केहर जिम कटि बक ।
हीर दसन विद्रम अधर, मारू भ्रकुटि मयक ।। २ ।।
मारू-घूँघट दिट्ठ मैं अेता सहित पुणिद ।
कीर,भमर,कोकिल,कमळ, चद, मयद, गयंद ।। ३ ।।
कीर, कँवळ, अर कोकिला, अहि, गज, सिह, मराळ ।
उदैराज, देख्या इता लूँब्या अेकण डाळ ।। ४ ।।

२—नायिका

१—गति गंगा—गतिमे गगाके समान । सरसुती—सरस्वती । महिला—इस कलियुगमे मारुवणीकी बराबरी करनेवाली महिला दूसरी कोई नही है ।

२—गति इ०—मारुवणीकी गति हाथी जैसी, जंघा केलेके भीतरी भाग जैसी कोमल, कमर सिंहकी सी बाँकी, दाँत हीरो जैसे, अधर मूँगे जैसे और भ्रकुटी द्वितीयाके चन्द्रमा जैसी है ।

३—मारू इ०—मारूवणीके घूँघटके भीतर मैने इतने पदार्थ देखे । फणींद्र—साँप अर्थात् वेणी । कीर—सुग्गा अर्थात् नासिका । भमर—भ्रमर अर्थात् बाल । कोकिला—अर्थात् कोयल जैसी वाणी । कमल—अर्थात् मुख या नेत्र । चन्द—ललाट । मयंद—सिह अर्थात् कमर । गयंद—हाथीकी-सी चाल । रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

४—कीर—नासिका । कँवळ—मुख, या नेत्र । कोकिला—वाणी । अहि—वेणी । गज—चाल या जंघा । सिह—कटि । मराल—चाल । लूँब्या—लटकते हुअे । उदैराज—कविका नाम ।

मृगनयणी, मृगपतिमुखी, मृगमद-तिलक निलाट ।
मृगरिपु-कटि सुन्दर वणी, मारू अैहै घाट ॥ ५ ॥
कद थे नाग विसासिया, नैण लिया मृग-झल्ल ? ।
मान-सरोवर कद गया हसाँ सीखण हल्ल ? ॥ ६ ॥
थळ भूरा, वन झखरा, नही स चाँपो जाय ।
गुणे सुगन्धी मारुवी महकी सहु, वणराय ॥ ७ ॥
उर चवडी, कड पातळी, झीणी पाँसळियाँह ।
कै मिळसी हर पूजियाँ, हीमाळै गळियाँह ॥ ८ ॥
उर चवडी, कड पातळी, ठावो-ठावो मस ।
ढोला ! थारी मारुवी पाबासररो हस ॥ ९ ॥
मारू देस उपन्नियाँ सर ज्यूँ पध्धरियाँह ।
कड़वा बोल न जाणही, मीठा बोलणियाँह ॥१०॥
मारू देस उपन्नियाँ, ताँका दन्त सुसेत ।
कूँझ-बचाँ गोरगियाँ, खंजन जेहा नेत ॥११॥

५—मृगपति—चन्द्रमा । मृगमद—कस्तूरी । निलाट—ललाटपर । मृगरिपु—सिंह । अैहै घाट—अैसे गठनकी ।

६—कद थे—तुमने नागोको कब अपना विश्वासपात्र बना लिया कि वे आकर तुम्हारे केश बन गये, तुमने मृगोके कब नेत्र छीन लिये, और हंसोसे चाल सीखनेके लिअे तुम कब मानसरोवर गई थी ।

७—भूरा—बालुकामय । झखरा—झंखाड । चाँपो—चपक । जाय—पैदा होता है । गुणे—नायिकाके गुणोकी सुगन्धिसे ।

८—कड़—कमर । झीणी—कोमल । कै—या तो । हीमाळै—या हिमालयमे गलनेसे ।

९—ठावो—उचित स्थानोपर । पाबासर—मानसरोवर ।

१०—उपन्निया—उत्पन्न हुई । सर—बाणकी तरह सीधी ।

११—कूँझ—क्रौंचके बच्चोकी तरह गौरागियाँ होती हैं । नेत—नेत्र ।

देस सुहावो जळ सजळ, मीठाबोला लोय ।
मारू-कामण भुइँ दिखण जे हर देय तो होय ।।१२।।२४।।

३—प्रेम-पीड़ा

प्रीत करी सुख कारणै, जीको जळन भयो ।
आस मिटी न तृखा बुझी, उळटो भरम गयो ।। १ ।।
तिणको हो तो तोड लूँ, प्रीत न तोडी जाय ।
प्रीत लगी छूटै नही, ज्यॉ लग जीव न जाय ।। २ ।।
नोज किणॉसूँ लागज्यो वैरी छीणो नेह ।
धुकै न धूँवो नीसरै, जळै सुरगी देह ।। ३ ।।
नैण, पटक दूँ ताळमे, छीट-छीट हुय जाय ।
मै तने, नैणा ! कद कह्यो मन पहली मिल जाय ।। ४ ।।
नैण लगै तो लगण दे, तूँ मत लगियो चित्त ! ।
वे छूटेगे रोय, तूँ बँध्यो रहैगो नित्त ।। ५ ।।२९।।

४—विरह

और रग सब ऊतरै ज्यूँ दिन वीत्या जाय ।
विरह प्रेम-बूटा रचै दिन-दिन वधै सवाय ।। १ ।।

१२—मारू इ०—मारवाडकी जैसी सुन्दरी स्त्री दक्षिणकी भूमिमे भगवान ही दे तो मिल सकती है ।

३—प्रेम-पीड़ा

१—कारणे—वास्ते । तृणा—तृपा, लालसा । भरम—प्रतिष्ठा ।

२—तिणको—तिनका, तृण । ज्यॉ लग—जब तक ।

३—नोज—मत । किणॉसूँ—किसीसे भी । धुकै—सुलगती है ।

४—छीट-छीट—टुकड़े-टुकडे । तने—तुझे । कद कह्यो—कब कहा कि मनके मिलनेके पूर्व ही तू प्रियतमसे मिल जाना ।

४—विरह

१—ज्यूँ—जैसे-जैसे । वधै—सवाया बढ़ता है ।

मन, प्रवीण, कुदन मुहर प्रेम प्रगासै जोत ।
विरह-अगिन ज्यूँ-ज्यूँ तपै त्यूँ-त्यूँ कीमत होत ।। २ ।।३१।।

५—प्रियका प्रवास

सजन सिपाही, हे सखी ! किस विध बाँधूँ नेह ।
रात रहै, दिन उठ चलै, आँधी गिणै न मेह ।। १ ।।
सीयाळै तो सी पडै, ऊनाळै लू वाय ।
वरसाळै भुँय चीकणी, चालण रुत्त न काय ।। २ ।।
थळ तत्ता, लू सामुही, दाझोला पहियाह ! ।
म्हाँको कहियो जो करो, घर बैठा रहियाह ।। ३ ।।

वर्षा

कप्पड,जीण,कमाण-गुण, भीजै सब हथियार ।
इण रुत साहब ना चलै, चालै तिका गँवार ।। ४ ।।

२—मन इ०—प्रवीण कहता है कि मन सोनेकी मुहर है जो प्रेमकी ज्योतिसे प्रकाशमान् है । वह विरहकी अग्निमे ज्यो-ज्यो तपता है त्यों-त्यों मूल्यवान् होता जाता है ।

५—प्रियका प्रवास

१—आँधी इ०—न आँधीकी पर्वाह करता है न मेहकी ।

२—जाड़ेमे शीत पड़ता है, गर्मीमे लू चलती है, बरसातमे पृथ्वी कीचड़से भरी होती है अतः हे प्यारे, प्रवास करनेके योग्य ऋतु कोई नही है ।

३—भूमि गर्म है, लू सामने है, हे पथिक, तुम जल जाओगे । यदि हमारा कहा करो तो घर ही बैठे रहो ।

४—जीण—जीन । गुण—धनुषकी डोरी । साहब—प्रियतम, सच्चे प्रेमी । तिका—वे ।

डूँगरिया हरिया हुवा, वने झिगोरचा मोर ।
इण रित तीने नीसरै जाचक, चाकर, चोर ।। ५ ।।
नदियाँ, नाळा, नीझरण, पावस चढिया पूर ।
करहो कादम तिळकस्यै, पथी ! पूगळ दूर ।। ६ ।।
अत घण ऊनम आवियो, झाझी रिठ, झड़, वाय ।
बग हो भला ज वापडा, धरण न मेल्है पाय ।। ७ ।।
मेहा वूठा, अन बहळ, थळ ताढा जळ-रेस ।
करसण पाका, कण खिरा, तद को वलण करेस ? ।। ८ ।।
धनस चढावै सो धरा इंद्र कढावै आण ।
करै न सावण मास मे पंथी पथ पयाण ।। ९ ।।
तीज रमै छै तीजण्याँ, साजण ले-ले लार ।
चढो कियाँ छो चाकरी, साईनाँ सरदार ! ।।१०।।

५—झिगोर्‍या—बोले । रित—ऋतु । तीने—तीन ही । नीसरै—निकलते हैं ।

६—नीझरण—झरने । करहो—ऊँट (जिसपर चढ़कर प्रियतम जाना चाहता है) । कादम—कीचड़मे । तिळकस्यै—फिसलेगा । पूगळ—अेक स्थान, जहाँ प्रियतम जा रहा है ।

७—घण—बादलो की घटा । ऊनम आवियउ—उमड आया । झाझी रिठ—बडा भारी शीत । वाय—हवा । बग इ०—बेचारे बगुले ही अच्छे । धरण न मेल्है पाय—(१) पृथ्वीपर पैर नही रखते । (२) चलनेके लिअे पृथ्वीपर पैर नही देते ।

८—वूठा—वरसा । अन—अन्न । बहळ—बहुल, बहुत । ताढा—ठंढा । जळ-रेस—जलके कारण । करसण—कृषि । कण खिरा—अन्नकण गिरने लगे । तद इ०—तब कौन प्रस्थान करता है ?

१०—धनस—इंद्रधनुष । आण—आन, शपथ । पयाण—प्रस्थान ।

सावण लागाँ, सायबा ! गाणा-माणा, रंग ।
आणा घर, जाणा नही, टाणाँ बाँध तुरंग ॥११॥

गह घूमी, लूमी घटा, पावस उळट्या पूर ।
सावण महिनै, सायबा ! कदे न राखूं दूर ॥१२॥

शीत

जिण रित मोती नीपजै सीप समंदाँ माँय ।
तिण रित ढोलो ऊमह्यो, इम को माणस जाय ॥१३॥

जिण रुत नाग न नीसरै, दाझै वनखँड दाह ।
जिण रुत, हे साहब! कहो, कुण परदेसाँ जाह ॥१४॥

प्रीतम ! प्यारा प्राणकूँ, मत होवो न्याराह ।
थाँ विन पलक न आळगै, तन तूटै म्हाराह ॥१५॥

साजन ! गहरा समँद-सा, गुण-जल भरियो गात ।
ओछा नाडा ज्यूँ इयाँ कियाँ करो छो बात ? ॥१६॥

सम्मन प्रीत लगायकै, दूर देश मत जाव ।
वसो हमारी नागरी, हम माँगै, तुम खाव ॥१७॥

११—तीजण्याँ—तीजका त्यौहार मनानेवाली स्त्रियाँ । लार—पीछे, साथ । साईनाँ—वयस्य—अेक उम्रके साथी, साथी । चढो इ०—हे प्रियतम, आप नौकरीके लिअे प्रवास करनेको क्यो सवार हो रहे हैं ।

१२—लूमी—झुकी, घिरी । पावस इ०—वर्षाजलसे नाले उमड पडे ।

१३—रित—ऋतु । ढोलो—प्रियतम, नायक । ऊमह्यो—उमड़ा, चलनेको तय्यार हुआ ।

१४—साहब—प्रियतम । जाह—जाता है ।

१५—आळगै—लगते हैं । म्हाराह—मेरे ।

१६—गुण-जळ—शरीरमे गुण-रूपी जल भरा है । ओछा नाडा इ०—छिछले तालाबकी तरह अब कैसी बाते करते हो ।

१७—नागरी—नगरी ।

(२)

थे सिध्धावो, सिधकरो, बहु-गुणवता नाह ! ।
सा जीहा सतखड हुय, जेण कहीजै जाह ॥१८॥
सिधो,सिधावो,सिध करो, रहो त थाँरी दाय ।
इण लाखीणी जीभसूं कीकर कहूँ 'सिधाय' ? ॥१९॥
थे सिध्धावो, सिध करो, पूजो थाँकी आस ।
मत वीसारो मन-थकी, हूं छूं थाँकी दास ॥२०॥

(३)

सजन सिकाराँ जावसी, नैणा मरसी रोय ।
विधना ! अैसी रैण कर, भोर कदे ना होय ॥२१॥
सजन सिधासी, हे सखी ! प्रात उगतै भाण ।
वधज्ये, म्हारी रातडी, कदे न होय विहाण ॥२२॥
आज, सखी ! हम यूँ सुण्यो, पौ फाटत पिय-गोण ।
पौ अर हिवडे होड है, पहली फाटै कोण ॥२३॥

---

(२)

१८—सिध्धावो—सिधाओ, पधारो । सिध करो—सिद्धि करो, प्रस्थान करो । नाह—नाथ । सा जीहा इ०—वह जीभ सौ टुकडे होय जो यह कहे कि 'जाओ' ।

१९—सिधो—पधारो । दाय—इच्छा । लाखीणी—लाख मोलवाली । कींकर—कैसे । सिधाय—'सिधाइये' यह शब्द ।

२०—पूजो—पूरी होवे । आस—आशा । थकी—से ।

(३)

२१—विधना—हे विधाता । कदे—कभी ।

२२—भाण—सूर्य । वधज्ये—बढ़ना । विहाण—प्रात ।

२३—पौ फाटत—पौ फटते ही । गोण—गमन, प्रस्थान । हिवड़े—हृदयमे । पहली—पहले ।

(४)

ढोलो हल्लाणो करै, धण हल्लवा न देय ।
झब-झब झूंबै पागडै, डब-डब नयण भरेय ।।२४।।
सायधण हल्लण सॉभळै, ऊभी ऑगण-छेह ।
काजळ-जळ भेळा करी, नॉखी-नॉख भरेह ।।२५।।
जोडै ज्यूँ ही जोड, विणजारारा व्याज ज्यूँ ।
तनक जोड मत तोड, नातो-तॉतो, नागजी ! ।।२६।।
डूँगर-केरा वाहळा, ओछॉ-केरा नेह ।
वहता वहै उँतावळा, छिटक दिखावै छेह ।।२७।।
पिव खोटॉरा अेहवा, जेहा काती मेह ।
आडबर अत दाखवै, आस न पूरै तेह ।।२८।।

---

(४)

२४—ढोलो इ०—पति जानेको करता है पर प्रिया जाने नही देती। वह घोडेकी रिकाबको पकडकर झब-झब झूमती है और डब-डबाकर ऑखे भर लेती है।

२५—प्रिया ऑगनके कोनेमें खडी हुई प्रस्थानकी बात सुन रही है और नेत्रोका काजल और ऑसू इकट्ठे कर-करके बार-बार गिरा रही है और फिर नेत्र भर रही है।

२६—विणजारा—अेक जाति-विशेष, जो व्यापारकी वस्तुअे बैलोपर लिये हुअे देश-विदेश घूमती है। अब इनका महत्व बिल्कुल नष्ट हो गया है। नागजी—हे प्रियतम !

२७—वाहळा—नाले, झरने। ऊँतावळा—तेजीसे। वहता वहै—चलते हुअे (अर्थात् आरभमे) तेजीसे चलते हैं। छिटक—छिटककर थोडीही देरमें अपना अंत दिखा देते हैं।

२८—खोटॉरा—भाग्यहीनोके (या खोटे) काती मेह—शरद् ऋतुके मेघ। दाखवै—दिखाते हैं। तेह—वे।

वाजण लाग्यो वायरो, ऊडण लागी खेह ।
चढणै लाग्या साजना, टूटण लाग्यो नेह ॥२९॥
फिट, हीया, फाटचो नही, किस विध बाँध्यो नेह ।
विछडत ही सारो रह्यो, ताँबै जड़ियो लोह ॥३०॥
धावो धावो, हे सखी ! कोइ दावण, कोइ लाज ।
साहब म्हाँको ऊमह्यो, जे कोइ राखै आज ॥३१॥
सजण सिधाया, हे सखी ! वाज्या विरह-निसाण ।
हाथाँ चूडी खिस पडी, ढीला हुवा सँधाण ॥३२॥
सजण सिधाया, हे सखी ! ऊभी आँगण वीच ।
नैणाँ चाल्या चोसरा, काजळ माच्यो कीच ॥३३॥
सजण सिधाया, हे सखी ! वै घुडलै असवार ।
वैणाँ हुयो न बोलणो, नैणाँ चाली धार ॥३४॥
सजण सिधाया, हे सखी ! पाछा फिर-फिर झाँख ।
जोय-जोय ऊठी जाँवताँ, रोय-रोय फूटी आँख ॥३५॥
सजण सिधाया, हे सखी ! आडा देग्या पहाड ।
नव कोटी नगरी वसै, म्हाँरै भाँव उजाड ॥३६॥

२९—वायरो—हवा । खेह—धूलि । चढण—प्रस्थानके लिऐ घोड़ेपर चढ़ने ।

३०—फिट—धिक्कार है । सारो—ज्यो-का-त्यो ।

३१—दावण—लगाम (या दामन) । लाज—लगाम (कोई दामन पकडो, कोई लगाम पकडो) ।

३२—निसाण—नगारे । सँधाण इ०—शरीरकी संधियाँ शिथिल हो गई ।

३३—चोसरा—नाले । काजळ इ०—काजलका कीचड़ मच गया ।

३५—झाँख—देखते हैं । ऊठी—आँखे उठ आई ।

३६—म्हारै भाँव—हमारी तरफ से, हमारे लिऐ ।

सजण सिधाया, हे सखी! पाछै पीळी पज्ज।
नव पाडा नग्गर वसै, मो मन सूनो अज्ज ॥३७॥
सजण सिधाया, हे सखी! सूना करै अवास।
गळै न पाणी ऊतरै, हियै न मावै साँस ॥३८॥
सजण सिधाया, हे सखी! वाजै वाजा रग।
जिण वाटे सज्जण गया, सो वाटडी सुरग ॥३९॥
सजण सिधाया, हे सखी! झीणी ऊडै खेह।
हियड़ो वादळ छाइयो, नैण टबूकै मेह ॥४०॥
सजण सिधाया, हे सखी! नयणे कीयो सोग।
सिर साड़ी, गल काँचुवो, हुवा निचोवण जोग ॥४१॥
साल्ह चलंता, हे सखी! गोखै चढ मैं दीठ।
हियड़ो वाँहीसूँ गयो, नैण वहोडचा नीठ ॥४२॥
सज्जणिया ववळाइ कै गोखै चढी लहक्क।
भरिया नैण कटोर ज्यूँ, मूँधा हुयी डहक्क ॥४३॥

३७—पज्ज—पाल (तालाब का ऊँचा किनारा)। पाडा—मुहल्ले। अज्ज—आज।

३८—करे—करके। अवास—महल।

३९—रंग—रगके साथ, धूमधामसे। वाटे—रास्ता।

४०—टबूकै—टपटप बरसते हैं।

४१—नयणे—नेत्रोंने शोक किया (रोये)। गळ इ०—गलेकी चोली। निचोवण जोग—निचोड़ने योग्य (रोते-रोते सब वस्त्र भी भीग गये।)

४२—साल्ह—प्रियतमका नाम। दीठ—देखा। गयो—उनके साथ गया। वहोड़वा—लौटा पाये। नीठ—कठिनतासे।

४३—ववळाइकै—भेजकर, बिदा करके। कटोर—पानीका कटोरा। मूँधा—मुग्धा, प्रिया। डहक्क—डबडबाई हुई आँखोंवाली।

साजणिया ववळाइकै मदर बैठी आय ।
मदर काळो नाग ज्यूँ हेला दे-दे खाय ॥४४॥
ढोलो चाल्यो, हे सखी ! वडरी डाहल मोड ।
हियो, कळेजो, काळजो, तीनूँ ले गयो तोड ॥४५॥
साल्ह चलतै परठियाँ आँगण वीखडियाँह ।
सो मैं हियै लगाडियाँ भर-भर मूठडियाँह ॥४६॥
साल्ह चलतै परठियाँ आँगण वीखडियाँह ।
कूवा-केरी कुहड ज्यूँ हिवडै होइ रहियाँह ॥४७॥
खूँटै जीण न मोजडी, कडचाँ नही केकाँण ।
साजनिया सालै नही, सालै आही ठाँण ॥४८॥
भूली सारस-सद्दडै, जाँणै करहो थाय ।
धायी-धायी थळ चढी, पग्गे दाधी, माय ॥४९॥
वाबा, बाळूँ देसडो, जिहाँ डूँगर नहि कोय ।
तिण चढ मूकूँ धाहडी, हीयो उरळो होय ॥५०॥

४४—मंदर—महल, मकान । हेला दे दे—पुकार-पुकार कर ।

४५—डाहळ इ०—डालीको मोडकर ।

४६—परठिया—बनाये । वीखड़ियाँ—पैरोके चिह्न । मूठड़ियाँ—मुठ्ठियाँ ।

४७—कुहड—कुहरा । होइ रहियाह—छा गये ।

४८—मोजड़ी—जूती । कड्याँ—घोड़ेके बाँधनेका स्थान । केकाण—घोड़ा । ठाण—घोडेके घास चरनेकी जगह ।

४९—भूली इ०—सारसका शब्द सुनकर मुझे भ्रम हुआ कि मेरे प्रियतमका ऊँट होगा । प्रियतमको आया समझ मै नगे पैर ही बाहर दौड़ पड़ी और देखनेके लिअे ऊपर चढ़ने लगी तो मेरे पैर जल गये ।

५०—बाळूँ—उस देशको जला दूँ जहाँ कोई पहाड़ तक नही । मूकूँ इ०—धाह मारूँ । उरळो—हलका ।

सज्जण देसतर हुवा, जे दीसता नित्त ।
नयणाँ तो वीसारिया, तूँ मत विसरे, चित्त ! ॥५१॥

सज्जण अळगा ताँ लगे, जाँ लग नयणे दिट्ठ ।
जब नयणाँसूँ वीछड्या, तब उर माँझ पइट्ठ ॥५२॥

चाल, सखी ! तिण मदराँ, सज्जण रहिया जेण ।
कोइक मीठो बोलडो लाग्यो होसी तेण ॥५३॥

रे मदर ! रे माळिया ! हिव तुझ डग न भरेस ।
जिण कारण हम आतता, सो चाल्या परदेस ॥५४॥

साँवळि काँय न सिरजिया, अबर लाग रहत ।
वाट चलतै साल्ह पिव ऊपर छाँह करत ॥५५॥

बाँवळ काँइ न सिरजिया मारू मझ थळाँह ।
प्रीतम वाढत काँबडी, फळ सेव त कराँह ॥५६॥८७॥

६—विरहिणी-विप्रलाप

(१)

कूक करूँ तो जग हँसै, चुपकै लागै लाय ।
अैसे कठन सनेहको किण विध करूँ उपाय ? ॥ १ ॥

५१—देसतर—प्रवास । दीसंता—दीखते थे ।

५२—दिठ—आँखोसे दीखते रहते है । पइठ—प्रवेश कर जाते हैं ।

५३—जेण—जहाँ, जिसमे । तेण—उसमे शायद अभी तक लगा मिलेगा ।

५४—माळिया—ऊपरका महल । डग इ०—तेरे पास नही आऊँगी ।

५५—साँवळ—काली बदली । काँय न—क्यो नही ।

५६—बाँवळ—कीकरका पेड़ । मारू इ०—मारवाडकी थळीके बीच । वाढत—काटते । कामड़ी—छड़ी । कराँह—हाथोका, हाथोमे रहनेका ।

६—विरहिणी-विप्रलाप

१—कूक—रुदन । लाय—चुप रहनेसे आग-सी लगती है । कठन—असह्य ।

आह् करूँ तो जग जळै, जगळ भी जळ जाय ।
पापी जिवडो ना जळै, यामे आह समाय ।। २ ।।

घटमे रही न घाटमे, घरमे रही न ब्हार ।
वन-वन तन भटक्यो फिरै मनमोहनकी लार ।। ३ ।।

जेठा ! घडी न जाय, जम्मारी किम जावसी ? ।
विलखतडी रह जाय, जोगण करगो, जेठवा ! ।। ४ ।।

बै दीसै असवार घुडलाँरी घूमर कियाँ ।
अवळारो आधार, जको न दीसै, जेठवा ! ।। ५ ।।

ताळा सजड जडेह, कूँची ले कीनै थयो ? ।
खुलसी तो आयेह, जडिया रहसी, जेठवा! ।। ६ ।।

साहिब, सख समुद्दको मैं सुणियो वाजत ।
नीर मितकै कारणै घर-घर धाह दियत ।। ७ ।।

आडा डूँगर, वन घणा, जहाँ महारा मित्त ।
देय विधाता ! पाँखडी, मिळ-मिळ आऊँ नित्त ।। ८ ।।

२—आह—निःश्वास ।

४—जाय—बीतती है । जम्मारो इ०—सारा जीवन कैसे बीतेगा ।

५—घुडलाँरी इ०—घोडोको घुमाते हुअे । जको—जो, वह ।

६—सजड—सुदृढ । जडेह—बद हैं । कूँची—कुंजी । कीने थयो—कहाँ गया ? तो आयेह—तैरे आनेपर ही ।

७—समुद्दको—समुद्रसे उत्पन्न । सुणियो—सुना । वाजत—बजता हुआ । नीर मित—मित्र पानी, जिससे वह बिछुड गया है । धाह इ०—धाड़ मारकर विलाप करता है ।

आडा डूँगर, दूर घर, वणै न जाणै भत्त ।
सज्जण-संदै कारणै हियो हिळूसै नित्त ॥ ९ ॥

जिम-जिमसाजनसाँभरै, तिम-तिम लागै तीर ।
पख हुवै तो जाय मिल मनाँ बँधाँडाँ धीर ॥१०॥

आडा डूँगर, भुँय घणी, सज्जण रहै विदेस ।
माँगी-ताँगी पाँखडी केती वार लहेस ? ॥११॥

पाँखडियाँ ही किउँ नही, देव अवाडू ज्याँह ।
चकवीकै है पाँखडी, रैण न मेळो त्याँह ॥१२॥

आडा डूँगर, भुँय घणी, तियाँ मिळीजै अेम ।
मनहूँ खिणय न मेल्हियै, चकवी दिणयर जेम ॥१३॥

ज्यूँ अै डूँगर सम्मुहा, त्यूँ जे सज्जण हुंत ।
चंपा-वाडी भमर ज्यूँ नैण लगाय रहत ॥१४॥

९—वणै—जानेका उपाय नही बनता । संदे—के । हिळूसै—व्याकुल होता है ।

१०—साँभरै—याद आते हैं । मनाँ इ०—मनको धीरज बँधावे ।

११—भुँय—फासला । सज्जण—प्रियतम । केती वार—कितनी बार ।

१२—किउँ नही—कुछ नही । अवाडू—बाधक, प्रतिकूल । रैण इ०—तो भी रात्रिके समय प्रियसे उसका मिलाप नही होता ।

१३—तियाँ इ०—उनसे अैसे मिलना चाहिअे । मनहूँ—मनसे । मेल्हियै—दूर कीजिये, विसारिये । दिणयर—सूर्य, जैसे चकवी दूर रहती हुई भी सूर्यको नहीं भूलती ।

१४—डूँगर—पहाडी । सम्मुहा—आँखोके सामने । जे—यदि । हुत—होते । भमर—भँवरा । नैण इ०—अेकटक देखती रहती ।

जिण देसे सज्जण वसइ, तिण दिस वज्जउ वाव ।
उवाँ लगे मो लग्गसी, ऊ ही लाख-पसाव ॥१५॥
सो कोसाँ वीजळ खिवै, ज्याँसूँ किसो सनेह ? ।
किसना, तिसना जद मिटै, आँगण वरसै मेह ॥१६॥
कउवा ! दिऊँ वधाइयाँ, प्रीतम मिळवै मूझ ।
काढ कळेजो आपणो भोजन दिउँली तूझ ॥१७॥
कागा ! नैण निकास दूँ, पीव पास ले जाय ।
पहली दरस दिखायके पीछै लीजो खाय ॥१८॥
हे सखिअे ! परदेस प्री, तनह न जावै ताप ।
बाबहियो आसाढ जिम, विरहिण करै विलाप ॥१९॥
बाबहियो नै विरहणी, दोनूँ अेक सुभाव ।
जब ही वरसै घन घणो, तबही कहे प्रियाव ॥२०॥

१५—वज्जउ—चलो । वाव—वायु, हवा । उवाँइ०—हवा उनके लगकर फिर मुझे लगेगी । ऊही—वही (प्रियका स्पर्श की हुई हवाका स्पर्श) । लाख-पसाव—लाख रुपयोंका दान (लाख पसाव अेक प्रकारका दान होता है जो राजा लोग प्रसन्न होकर कविजनोंको दिया करते थे । इसमे या तो नकद लाख रुपये दिये जाते थे या लाख रुपयेकी जागीर या संपत्ति । आरंभमे वस्तुतः लाखका धन दिया जाता था पर पीछे लाखका नाम-ही-नाम रह गया ।)

१६—किसना—कविका नाम । तिसना—तृष्णा, प्यास, लालसा ।

१७—मिळवै—मिलावे । दिउँली—दूँगी । तूझ—तुझे ।

१९—तनह—शरीरका । बाबहियो इ०—पपीहा जैसे आषाढमे बादलको देखकर पुकारता है ।

२०—प्रियाव—१. प्रिय + आव, २. पपीहेकी पी आ, पी आ अैसी बोली ।

बाबहिया ! तूँ चोर, थारी चाँच कटावसूँ ।
रात ज दीनी लोर, मैं जाण्यो प्रिव आवियो ॥२१॥

बाबहिया ! पिउपिउ न कहि, पिउको नाँव न लेय ।
काइक जागै विरहणी, तडफ-तडफ जिउ देह ॥२२॥

बाबहिया ! निल-पखिया, वाढत दे-दे लूण ।
पिव्र मेरो, मैं पीवकी, तूँ पिव कहै स कूण ॥२३॥

पीहू-पीहू करणरी बुरी, पपीहा ! वाण ।
थारो सहज-सुभाव ओ, म्हाँरै लागै बाण ॥२४॥

अरे पपैया बावरा ! आधीरात न कूक ।
होळै-होळै सुळगती, सो तै डारी फूँक ॥२५॥

सिर काटूँ, रे मोरिया ! काटूँ सिररो फूल ।
ढळती रात ज गहकियो, हिवडै पाड्यो सूळ ॥२६॥

मोरा ! मैं तनै वरजियो, मत चढ बोल खजूर ।
थारा जळहर टहूकडै, म्हारा साजन दूर ॥२७॥

२१—चोर—दुष्ट, कपटी । चॉंच—चोच । कटावसूँ—कटाऊँगी । लोर इ०—शब्द किया तो मुझे भ्रम हुआ कि प्रियतम आ गये ।

२३—निलपंखिया—नीली पाँखोवाला । वाढत इ०—नमक लगा-लगाकर घाव करता है । तू इ०—तू 'पी' यो कहनेवाला कौन ?

२५—होळे इ०—जो विरहाग्नि धीरे-धीरे सुलग रही थी सो तूने फूँककर अेकदम प्रज्वलित कर दी । फूल—मोरके सिरकी कलँगी । ढलती—ढलती हुई, आधीरातके पीछेकी रात । गहकियो—बोला । पाड्यो—पैदा किया । वरजियो—मना किया ।

२७—तने—तुझे । जळहर—मेघ । टहूकडै—बोलते हैं ।

म्हे मगरैरा मोरिया, चक चढ चूँण करॉह ।
रुत आयॉ ना बोलस्यॉ, तो हिय फूट मरॉह ॥२८॥
रात, सखी ! इण ताळमे कॉइज कुरळी पंखि ।
वा सर, हूँ घर आपणै, बेहुँ न मेळी अखि ॥२९॥
रात ज सारस कुरळिया, गूँजि रहे सब ताल ।
ज्यॉरी जोडी वीछडी ज्यॉरा कवण हवॉल ॥३०॥
कुरजडियॉ कुरळा रही देख विरगा ताल ।
जिणकी जोडी वीछडी, जिणका कवण हवाल ॥३१॥
कूँझडियाँ करळव कियो घर पाछलै वनॉह ।
सूती साजन सॉभरचा, द्रह भरिया नैणॉह ॥३२॥
कूँजॉ ! द्यौ नै पॉखडी, थॉको विनो वहेस ।
सायर लघी पिव मिलूँ, पिव मिल पाछी देस ॥३३॥

२८—मगरेरा—मगरेके, मगरा स्थान-विशेष, ऊसरको भी मगरा कहते है (अतः मरुस्थल) । चूँण करॉ—दाना खाते हैं । रुत इ०—बोलनेकी ऋतु आनेपर यदि नही बोलेगे तो ।

२९—कॉइज—कोई । कुरळी—करुण स्वरसे बोली । पखि—पक्षी । सर—सरोवरमे । बेहुँ न इ०—दोनोकी ही ऑख नही लगी ।

३०—ताल—सरोवर । ज्यॉरी—जिनकी । ज्यॉरा—उनके ।

३१—कुरजड़ियॉ—क्रौच या करॉकुल पक्षी । हवाल—हाल ।

३२—करळव—कलरव, मीठा करुण शब्द । वनॉह—वनमे । सॉभऱ्या—याद किये । द्रह—हौद । नयणॉह—ऑखोमे ।

३३—कूर्जा—हे क्रौच पक्षियो ! यिनो इ०—वेश बनाऊॅगी । सायर इ०—सागर पार करके प्रियसे मिलूँगी और प्रियसे मिलकर तुम्हारी पॉखे वापिस दे दूँगी ।

म्हे कुरजाँ सरवर-तणी, पाँखाँ किणहि न देस ।
भरिया सर देखी रहाँ, उड आघेरि वहेस ॥३४॥
उत्तर दिस उपराठियाँ, दक्षिण सामुहियाँह ।
कुरझाँ ! अेक सँदेसडो ढोलानै कहियाह ॥३५॥
माणस हवाँ,त मुख चवाँ म्हे छाँ कूँझडियाँह ।
पिव सँदेसो पाठविस, लिख दे पखडियाँह ॥३६॥
पाँखे पाणी थाहरै जळ काजळ गहिल्याइ ।
सयणाँ-तणा सँदेसडा मुख-वचने कहिवाइ ॥३७॥
या तन की जूती करूँ, काढ रँगाऊँ खाल ।
पाँयनसूँ लिपटी रहूँ आठूँ पहोर, जमाल ॥३८॥
जे जलमूँ उण देसमे, करियो यूँ करतार ! ।
पिव-पिव करताँ नीसरै जिव-जिव मरती वार ॥३९॥
कागा ! सब तन खाइयो, खाइयो चुण-चुण माँस ।
दो नैणाँ मत खाइयो, पीव मिलणरी आस ॥४०॥

३४—किणहि इ०—किसीको नही देगी । भरिया इ०—पानीसे भरे हुअे तालाब देखकर ठहर जाती है और फिर उड़कर दूर चली जाती हैं ।

३५—उपराठियाँ—पीठ पीछे देकर । ढोला—प्रियतम ।

३६—माणस इ०—मनुष्य होवे तो मुखसे कहे पर हम तो कुरजे हैं । पाठविस—यदि भेजती है तो ।

३७—थाहरे—ठहरता है, या तेरे । काजळ—स्याही । जळ इ०—जल लगनेसे स्याही बह जायगी । सयणाँ—प्रेमियोंके । मुख—मौखिक ही कहे जाते हैं ।

३८—पहोर—पहर ।

३९—जलमूं—जन्म लूँ । उण—उस (जहाँ प्रियतम है) । नीसरै—निकले ।

बाबल ! ताल फुडाय दे, कुजाँ दे मरवाय ।
मिदर काळो नाग ज्यूं झाला दे-दे खाय ।।४१।।

(२)

प्रीतम दुखिया कर गया, सुखकूँ लेग्या साथ ।
रैण-विछोवा कर गया, मळतो रह गइ हाथ ।।४२।।
छाती माँहे साल खण-खणमे खटकै घणा ।
करसाँ कवण हवाल, मिळियाँ विन मिटसी नही ।।४३।।
मालण लायी चोसरा फूल अनोखा पोय ।
मन मुरझायो देखताँ, ऊतर दीनो रोय ।।४४।।
मालण ! थारा चोसरा क्योकर आवै दाय ।
पीव विना सूँ पापणी जोव अमूझ्यो जाय ।।४५।।
वैरण प्रीतमकै विना सालै देखत शूळ ।
पहर रिझाऊँ कूँणतै, अै ले, मालण फूल ।।४६।।
ऊपर आँबा मोरिया, तळ नीझरण झरंत ।
साजण पाखे दीहडा ताढा तोय तपत ।।४७।।
आँखडियाँ डबर हुयी, नयण गमाया रोय ।
सो साजण परदेसमे रह्या विडाणा होय ।।४८।।

४१—मिंदर—महल, घर । झाला देदे—बुला-बुलाकर ।

४२—विछोवा—बिछोह, वियोग । लेग्या—ले गये ।

४३—साल—शल्य । करसाँ—करेंगे ।

४४—मालण—मालिन । चोसरा—चार लडोकी माला । पोय—पोकर, गूँथकर । ऊतर दीनो—जवाब दिया, मना किया ।

४७—मोरिया—मुकुलित हुअे । तळ—नीचे । नीझरण—झरने । पाखे—बिना । दीहडा—दिन । ताढा—ठंढे है तो भी ।

४८—डबर—लाल (संध्याकालीन बादलो जैसी) । विडाणा—पराये ।

गया सनेही दूर, कुसनेहो मंडळ घणा।
रहु रहु, हिया ! न झूर करकायर ! काठो हियो ॥४६॥
ऊभी थी रायगणै, सायब साँभरियाह।
च्यारुँइ पल्ला चूनडी आँसू-जळ भरियाह ॥५०॥
राति ज रूनी निसह भर, सुणी महाजन लोय।
हाथाळी छाला पड्या चीर निचोय-निचोय ॥५१॥
सज्जण वल्ले, गुण रहे, गुण भी वल्लणहार।
सूकण लागी वेलडी, गया ज सीचणहार ॥५२॥
सज्जण, गुणे-समुद्द तूँ, तर-तर थक्की तेण।
अवगुण अेक न साँभरै, रहूँ विलूँबी जेण ॥५३॥
पिव कारण सब अरपियो, तन, मन, जोबन, लाल।
पिया पीड जाणै नही, किणसूँ कहूँ जमाल ? ॥५४॥
साजण विसराया भला, सुमरयाँ करै बेहाल।
देखो, चतर ! विचारके, साची कहै जमाल ॥५५॥
सारसडी मोती चुणै, चुणै त कुरळै काय ?।
सगुण पियारा साजना मिलै त विछड़ै काय ? ॥५६॥

४९—काठो हियो—हृदय मजबूत कर।

५०—रायंगणे—राजागणमे, आँगनमे। सायब इ०—प्रियतम याद आगये।

५१—रूनी—रोई। महाजन—गुरुजन। लोय—लोग।

५२—वल्ले—चले। वल्लणहार—जानेवाले हैं।

५३—सज्जण इ०—हे प्रियतम, तुम गुणोके समुद्र हो, उस समुद्रको तैर-तैर करके मै थक गई पर उसका अंत नही मिला। साँभरै—याद आता है। विलूँबी इ०—जिसका सहारा लूँ।

५६—चुणै—चुगती है। काय—किसलिअे।

हित विण, प्यारा सज्जणा ! छळ कर छेतरियाह ।
पहली लाड लडायकै पाछै परहरियाह ॥५७॥

(३)

ढोला ! ढीली हर कियाँ मूक्या मनह विसार ।
सदेसोय न पाठवै, जीवाँ किसै अधार ? ॥५८॥
कहो, कनक कागद भया, मसि भइ माणक-मोल ? ।
लाख टका लेखण भयी, नही लिख्या दो बोल ॥५९॥
कागळ नही, क मस नही, नही क लेखणहार ? ।
सँदेसा ही नाविया, जीवूँ किसै अधार ? ॥६०॥
कागळ नही क मस नही, लिखताँ आळस थाय ? ।
कै उण देस सँदेमडा, मूँघै मोल विकाय ? ॥६१॥
वायस वीजो नाम, ते आगळ लल्लो ठवै ।
जे तूँ हुवै सुजाण, तो तूँ वहिलो मोकळे ॥६२॥
सदेसा जिन पाठवै, मरिस्यूँ हीया फूट ।
पारेवाका झूल ज्यूँ, पडनै आँगण त्रूट ॥६३॥

५७—हित—प्रेम । छेतरियाह—ठगा, धोखा दिया । परहरियाह—छोड दिया ।

५८—ढीली इ०—प्रेमको शिथिल करके । मूक्या—मनसे भुलाकर छोड़ दिया । सदेसोय—सदेशा भी । पाठवै—भेजता है ।

५९—कनक इ०—क्या कागद सोनेके मोलका महँगा हो गया । टका—रुपया ।

६० —कागळ—कागज । मस—स्याही ।

६१—थाय—होता है । मूँघे—महँगे ।

६२—वायस—वायसका जो दूसरा नाम है । (अर्थात् काग) उसके आगे ळ कार लगाकर (अर्थात् कागळ यानी पत्र) शीघ्र भेजना ।

६३—जिन—मत । पारेवा—कबूतर । झूल—घोसला । त्रूट—टूटकर ।

संदेसा मति मोकळो, प्रीतम ! तूँ आवेस ।
आँगलडी ही गळ गयी, नैण न वाँचण देस ।।६४।।
कागदिया मत मोकळो मूँघा मोल ज लेह ।
आखर भीना आँसुवाँ, नयण न वाँचण देह ।।६५।।
फागण मास, वसत रुत, आयो जे न सुणेस ।
चाचरकै मिस खेलती, होळी झपावेस ।।६६।।
जो तूँ, साहब, नावियो, मेहाँ पहलै पूर ।
विचे वहेसी वाहळा, दूर स दूरे दूर ।।६७।।
वीजुलियाँ जाळो मिल्याँ, ढोला ! हूँ न सहेस ।
जो आसाढ न आवियो, सावण समक मरेस ।।६८।।
जे तूँ, साहब ! नावियो सावण पहली तीज ।
वीजळ तणै झबूकडै मूँध मरेसी खीज ।।६९।।
जे तूँ ढोला ! नावियो काजळियारी तीज ।
चमक मरेसी मारवी देख खिव ताँ वीज ।।७०।।

६४—मोकळो—भेजना । आवेस—आना । देस—देंगे ।

६६—सुणेस—सुनूँगी (कि तू आ गया) । चाचर—नाच विशेष (स० चर्चरी)। होली इ०—होलीकी आगमे कूद पडूँगी ।

६७—विचे इ०—बीचमे नाले बहने लगेंगे और जो दूर है वह और भी दूर जायगा ।

६८—जाळो मिल्याँ— जालमे मिली हुई, बहुतसी अेकसाथ होकर चमकती हुई । समक—चौंककर ।

६९—वीजळ—बिजलीके चमकते ही यह मुग्धा खिजकर मर जायगी ।

७०—काजळियारी—कजलीकी । मारवी—नायिका (अक्षरार्थ—मारू देश की स्त्री) । मारू, मरवण, मारवण, मारवणी, मारवी, मारुवी, सायधण, धण ये नायिका या स्त्रीके पर्याय शब्द हैं । खिवता—चमकती हुई । वीज—बिजली ।

घर-घर चगी गोरडी गावै मंगळचार।
कंथा! मती चुकावजो, ताजाँ-तणो तिवार ॥७१॥

(४)

वर्षा

ऊनमियो उतर दिसाँ, गाज्यो गहर गँभीर।
मारवणी पिव सभरयो, नैणाँ वूठो नीर ॥७२॥
ऊनमियो उत्तर दिसाँ, मेडी ऊपर मेह।
हूँ भीजूँ घर आँगणै, पिव भीजै परदेह ॥७३॥
आज धरा-दिस ऊनम्यो, महलाँ वरसै मेह।
बाहर था जे ऊबरे, भीजाँ माँझ घरेह ॥७४॥
ऊनम आयी वद्दळी, ढोलो आयो चित्त।
या वरसै रितु आपणी, नैण महारा नित्त ॥७५॥
बीजळियाँ पारोकियाँ नीठ ज नीगमियाँह।
अजे न सज्जण वाहुडे, वळि पाछी वळियाँह ॥७६॥

७१—तीजाँ-तणो—सावण मासकी तृतीयाका, यह राजस्थानका अेक जातीय त्यौहार है।

७२—ऊनमियो—मेह उमडा। वूठो—बरसा।

७३—मेडी—अटारी। परदेह—परदेशमे।

७४—धरा-दिस—ध्रुवकी दिशा, उत्तर। भीजाँ—घरके भीतर भीग रही हैं। (आँसूओकी वर्षासे)।

७६—पारोकिया—परकीया (गाली)। नीठ ज इ०—बडी कठिनतासे गई थी। वाहुड़े—लौटे। वळि इ०—पर ये फिर लौट आई (दूसरी वर्षा आ गई पर प्रियतम नही आये)।

जळथळथळजळहुयरह्यो, बोलै मोर किगार ।
सावण दूभर, हे सखी ! कहाँ मुझ प्राण-अधार ? ।।७७।।
चहुँदिस दामण,सघन घण, पीव तजी तिण वार ।
मारू मर चातग भये, पिव-पिव करत पुकार ।।७८।।
सावण आयो, सायबा ! हरिया-हरिया वन्न ।
हरियो हुयो न एकलो प्यारी धणरो मन्न ।।७९।।
प्रीतम ! कामणगारियाँ थळ-थळ वादळियाँह ।
घण वरसतै सूकियाँ, लू-सूँ पाँगुरियाँह ।।८०।।
भादरवैकी रुत भली, भली घटा वरसत ।
मेरा साजन है नही, मेरा तन तरसत ।।८१।।
वडकत-तडकत वीजळी, धडकत-तडकत गाज ।
कोप करी आवै घटा आ कुण ऊपर आज ? ।।८२।।
गाज नगारो, चमक खग, वरसत बाड तडाक ।
घटा नही, या कामकी आवै फोज लडाक ।।८३।।

७७—किगार—कगूरोंपर । दूभर—असह्य ।

७८—मारू इ०—ये चातक पी-पी करते हुए पुकार करते है । पूर्व-जन्ममे ये मारू थे जो प्रिय के वियोग मे पी-पी रटती हुई मर गई और मरकर फिर चातक बनी और अब भी पी-पी पुकार रही है ।

७९—हरियो—(१) हरा, (२) प्रफुल्लित । धण—प्रियतमा ।

८०—कामणगारियाँ—जादू करनेवाली । घण इ०—वे पानी बरसनेसे सूख जाती हैं और लू-से जी उठती हैं (गर्मीसे बादल बनता है और बरसनेपर नष्ट हो जाता है ।)

८२—गाज—मेघकी गर्जना ।

८३—खग—तलवार ।

वीज नही अै खाग-वळ, बूँद नही अै बाण।
घटा नही, या काम की आयो फौज अचाँण ।।८४।।
हरियारी भूमी भयी, भरिया सायर खाळ।
आ कुँणनै आछी लगै, विन प्रीतम वरसाळ ।।८५।।
घन गाजै, विजली खिवै, वरसै वादळवार।
साजन विन लागै, सखो ! अँग पर बूँद अँगार ।।८६।।
फोज घटा, खग दामणी, बूँद लगै सर जेम।
पावस पिव विन, वल्लहा ! कहि, जीवीजै केम ? ।।८७।।
तीज नवेली तीजण्याँ, तीज नवेली वीज।
तीज नवेली वादळी, मो पर वरसत वीज ।।८८।।
नाळा नदियाँसूँ मिळै, नदियाँ सरवर जाय।
विरछाँसूँ वेलाँ मिळै, अैसी सही न जाय ।।८९।।
काळी-पीळी वादळी, वरस भीजियो गात।
ताजनिया लागा तिका साजनिया विन सात ।।९०।।
मोर सोर कर-कर मसत तरवर बैठ्या जाय।
घन वूठै, छूटै घटा, मो तन ऊठै हाय ।।९१।।
पड-पड बूँद पलग पर, कड-कण वीज कडक्क।
आज पिया विन अेकली, धड-धड जीव धडक्क ।।९२।।

८४—खाग—तलवार। अचाँण—अचानक, सहसा।

८५—सायर—सागर। खाळ—खड्डे, गड्ढे। कुणनै—किसे। वरसाळ—वर्षा ऋतु।

८७—वल्लहा—हे प्यारे। जीवीजै—जिया जाय। केम—कैसे।

८८—तीजण्याँ—तीज मनानेवाली स्त्रियाँ। बीज—द्वितीया। वीज-बिजली।

९० —ताजनिया—चाबुककी चोट। तिका—वे। साजनिया—प्रियतम।

९१—मसत—मस्त। वूठै—बरसता है। हाय—हाहाकार।

नैणाँ वरसै सेज पर, आँगण वरसै मेह ।
होडा-होडी झड लगी, उत सावण इत नेह ॥६३॥
पावस आयो, साहबा! बोलण लागा मोर ।
कता! तू घर आव नवि जोबन कीधो जोर ॥६४॥
मेह वूठा, हरिया हुवा, सब वन पाँगरियाह ।
बाकरिया माता हुवा, आवो ठाकरियाह !॥६५॥
सावण आयो, सायबा, सब वन पाँगरियाह ।
आव, विदेसी पावणा! अै दिन दूभरियाह ॥६६॥
ऊँचो मदर अति घणो, आव, सुहावा कत! ।
वीजळ लियै झबूकडा सिखराँ गळ लागत ॥६७॥
वीजुळियाँ नीळज्जियाँ, जळहर! तू ही लज्ज ।
सूनी सेज विदेश प्रिय, मधुरो-मधुरो गज्ज ॥६८॥
सावण आयो, सायबा! पगाँ विलूँबी गार ।
तराँ विलूँबी वेलड़्याँ, नराँ विलूँबी नार ॥६९॥

९३—होडाहोडी—होड लगाकर बरस रहे है। सावण—सावनकी वर्षा।

९४—आव नवि—आ न।

९५—पाँगरियाह—अकुरित हुअे। बाकरिया—बकरे-बकरियाँ। ठाकरियाह—हे ठाकुर, हे प्रियतम।

९६—पावणा—पाहुने। दूभरियाह—असह्य।

९७—वीजळ इ०—बिजली चमक-चमककर पर्वत-शिखरोके गले लगती है।

९८—वीजुळियाँ इ०—हे मेघ, ये बिजलियाँ तो निर्लज्ज है जो मुझे वियोगाकुल देखकर भी चमक रही हैं और मेरी व्यथा बढ़ा रही हैं, पर तू तो लज्जित हो। मेरी शय्या सूनी है, प्रियतम विदेश मे हैं, इसलिअे धीरे-धीरे गरज।

९९—विलूँबी—लग गई, लिपट गई। गार—कीचड़।

सावण आवण कह गया, कर गया कोल अनेक ।
गिणताँ-गिणताँ घिस गयी, आँगळियाँरी रेख ॥१००॥
घर-घर चंगी गोरड़ी गावै मंगळचार ।
कथा! मती चुकावज्यो तीजाँ-तणो तिवार ॥१०१॥
आज धराऊ धूँधला, मोटी छाँटाँ मेह ।
भीजी पाग पधारस्यो, जद जाणूँली नेह ॥१०२॥

(५)

वसंत

तरत झरत सूकत सरत, दादर मरत दुरत ।
प्रीतम घर नन पेखताँ वैरण वणी वसत ॥१०३॥
वन जरिया हरिया हुवा, आँबे-आँबे मोर ।
कूक-कूककर कोयली करत पिया विन सोर ॥१०४॥

(६)

ग्रीष्म

कहो, लूवाँ! कित जावस्यो पावस धर पडियाँह ।
हियै नवोढा नाररै वालम वीछड़ियाँह ॥१०५॥

१००—कोल—कौल, प्रतिज्ञा ।

१०२—धराऊ—ध्रुवकी दिशा, उत्तर । धूँधला—धूममय, बरसते हुए बादल धुवे जैसे ज्ञात होते है । भीजी इ०—भीगी हुई पगड़ीके साथ आवोगे तो समझूँगी कि तुम मुझे प्रेम करते हो । जाणूँली—जानूँगी कि आप प्रेम करते हैं ।

१०३—तरत इ०—तरुओ के पत्ते झडते हैं, तालाब सूखते है । दादर—मेढक । दुरंत—बहुत । नन पेखताँ—न देखकर ।

१०४—जरिया—जले हुए । मोर—मंजरी ।

१०५—कहो इ०—हे लुओ, जब पृथ्वीपर वर्षा ऋतु आ जायगी तो तुम

सर-सरिता जळ खूटिया, मरिया दादर जीव ।
तन जरिया, लागी तपत, अब घर आवो, पीव ! ॥१०६॥

(७)

पग परसणकूँ कर तपै, श्रवण सुणनकूँ वैण ।
ह्रिदो तपै तुम मिलणकूँ, मुख देखणकूँ नैण ॥१०७॥
साजन थाँ किसडो करी, किणसूँ कहूँ सुणाय ? ।
नही मिटणरी या कदे हिवडै लागी लाय ॥१०८॥
तन तरवर, मन माछळी, 'पडी विरहकै जाळ ।
तळफ-तळफ जिव जातहै, वेगा मिलो, जमाल ॥१०९॥
प्यारा वै दिन खूब था, विच न समातो हार ।
अब तो मिलबो कठन है, वीच रहे बहु पहार ॥११०॥
मन सीचाणो जे हुवै, पाँखाँ हुवे त प्राण ।
जाय मिलीजै साजणाँ, डोहीजै महराण ॥१११॥

कहाँ जाओगी (तुम्हे कहाँ शरण मिलेगी ? लुअे उत्तर देती है कि उस समय हम उस नवविवाहिता नववधू के हृदयमे जाकर रहेगी जिसका पति बिछुड गया है। उसका हृदय घोर सतापसे जलता होगा, सैकडो वर्षाऋतु आकर भी वहाँ हमारा नाश नही कर सकती ।)

१०६—खूटिया—सूख गया । दादर—मेंढक । तपत—गर्मी, संताप ।

१०७—परसणकूँ—छूनेके लिअे । ह्रिदो—हृदय ।

१०८—लाय—अग्नि । थाँ—आपने । किसड़ी—कैसी ।

११०—विच इ०—मिलाओ—

हारो नारोपितो कंठे मया विश्लेषभीरुणा ।
इदानीमावयोर् मध्ये सरित्-सागर-भूधराः ॥

१११—सीचाणो—बाज । साजणाँ—प्रियतमसे । डोहीजै—पार किया जाय । महराण—समुद्र ।

सज्जण ! कागद मोकळे, मत कछु लिखो वणाय ।
जे-जे सुख हम-तुम किये, ते-ते सालत आय ॥११२॥
मो मन लागो तो मनाँ, तो मन मो मन लग्ग ।
दूध विलग्गा पाणियाँ, पाणी दूध विलग्ग ॥११३॥
साजन ! दुर्जनके कहे तुम मत विरचो मोय ।
ज्यो मस लागी कागदाँ, त्यो हित लाग्यो तोय ॥११४॥
साजन ! तुम मत जाणियो, विछड्याँ प्रीत घटाय ।
व्यापारीके व्याज ज्यूँ, वधत-वधत वध जाय ॥११५॥
धूँध न चूकै डूँगरा, कड़वातण नीबाह ।
प्रीत न चूकै सज्जणा देस-विदेस गयाँह ॥११६॥
चलताँ-हलताँ, चीत, सूताँ बैठाँ सारखी ।
पडै न जूनी प्रीत नैण लग्योडी, नागजी ! ॥११७॥
नागा ! नागर-वेल पसरै पण फूलै नही ।
बाळपणैरी प्रीत, विछडै तो भूलै नही ॥११८॥
मन-माणक गरहण कियो, मित ! तुम्हारै पास ।
नेह-व्याज अत मंडियो, नहि छूटणरी आस ॥११९॥
हसा तो सरबर रटै, घनकूँ रटै ज मोर ।
हम तुमसे मिलणा रटै, जैसे चद चकोर ॥१२०॥

११२—मोकळे—भेजो । साल्त—याद आकर सताप देते हैं ।

११४—विरचो—छोडो । हित—प्रेम । तोय—तुझसे ।

११६—चूकै—भूलकर भी अलग होता है । डूँगरॉ—पहाडोसे । कड़वातण—कडुआपन ।

११९—गरहण कियो—लिया । मंडियो—चढ गया । छूटणरी—उऋण होनेकी ।

दीधी अपणी बाँह, चँवरी चढ, कर मेळताँ ।
पण जिम तनरी छाँह, तिम नव राखी तो कनै ॥१२१॥

साजन! तुम मत जाणियो, तोय विछडत मोय चैन ।
जैसे धुईं अतीतकी, सुळगत है दिन-रैन ॥१२२॥

साजन! तुम जत जाणज्यो, दूर देसका वास ।
खोड हमारी याँ पडी, प्राण तुम्हारै पास ॥१२३॥

जेती जे मन माँय, पजर जे तेती पुळै ।
मन वैराग न थाय, वालम वीछड़ियाँ-तणी ॥१२४॥

साजन! तुम दरियाव हो, मैं ओगणकी जहाज ।
अबकी पार लँघाय दे कर पकडेकी लाज ॥१२५॥

सर सूक्यो, वेलू हिली, कहुँ न रह्यो विसराम ।
अब सुध लो, घन मीन की, फिर वरस्याँ के काम ? ॥१२६॥२१३॥

१२१—दीधी इ०—विवाह-मडपमे हाथ मिलाते समय अपना हाथ तुम्हे दिया । नव इ०—तुमने अपने पास नहीं रखी । कनै—पास ।

१२२—धुँई—आग, जो सन्यासी तापा करते हैं । अतीत—संन्यासी ।

१२३—खोड़—देह । याँ—यहाँ ।

१२४—जेती—मन जितना चलता है, उतना शरीर भी यदि चले तो प्यारोके बिछुड़नेकी अरुचि मनमे न हो ।

१२५—दरियाव—समुद्र । कर पकड़ेकी—विवाहके समय जो हाथ पकड़ा था उसकी ।

१२६—वेळू—वेला, तट । वरस्याँ इ०—बरसनेसे क्या लाभ ?

८—संदेश

ढाढी ! जे प्रीतम मिलै, यूँ कहि दाखवियाह ।
पंजर नहि छै प्राणियो, थाँ दिस झळ रहियाह ॥ १ ॥
पंथी ! अेक सँदेसडो भल माणसनै भक्ख ।
आतम तुझ पासे अछै, ओळग रूडा रक्ख ॥ २ ॥
ढाढी ! अेक सँदेसडो प्रीतम कहिया जाय ।
सायधण बळ कोयला हुयी, भसम ढढोळे आय ॥ ३ ॥
ढाढी ! अेक सँदेसडो ढोलै लग पहुँचाय ।
तन-मन उत्तर बाळियो, दिक्खण वाजो आय ॥ ४ ॥
ढाढी ! अेक सँदेसडो ढोलै लग पहुँचाय ।
जोबन जावै प्राहुणो, वेगेरो घर आय ॥ ५ ॥
ढाढी ! अेक सँदेसडो ढोलै लग पहुँचाय ।
जोबन खीर-समुद्र हुय, रतन ज काढो आय ॥ ६ ॥

७—संदेश

१—ढाढी—अेक गाने-बजानेवाली जाति । यूँ कहि दाखवियाह—यों कहकर बात कहना । पंजर इ०—प्राण शरीरमे नही हैं किन्तु आपकी ओर भागे जा रहे हैं ।

२—भलमाणसने—उस भलेमानुसको । भक्ख—कह । आतम इ०—दूर भले ही रख पर प्राण तुम्हारे पास हैं ।

३—बळ—जलकर । ढंढोळे—टटोलना (देर करके आओगे तो भस्म ही मिलेगी) ।

४—उत्तर इ०—उत्तरी हवाने जला दिया । दिक्खण इ०—दक्षिणी हवा बनकर चलो ।

५—प्राहुणो—यौवनरूपी पाहुना जा रहा है । वेगेरो—जल्दी ।

ढाढी ! अेक सँदेसडो ढोलै लग पहुँचाय ।
जोबन चाँपो मोरियो, कळी न चूँटै काय ? ॥ ७ ॥
ढाढी ! अेक सँदेसडो ढोलै लग पहुँचाय ।
जोबन-कँवळ विकासियो भमर न बैसो आय ? ॥ ८ ॥
ढाढी ! जे साहब मिलै, यूँ दाखविया जाय ।
आँख्याँ सीप विकासियाँ, स्वात ज वरसो आय ॥ ९ ॥
ढाढी ! अेक सँदेसड़ो ढोलै लग ले जाय ।
जोबण फट्टि तलावडी पाळ न बाँधो काय ? ॥ १० ॥
ढाढी ! अेक सँदेसडो ढोलै लग पहुँचाय ।
धण कुमळाणी कमदणी, सिसहर ऊगो आय ॥ ११ ॥
पही ! भमतो जो मिलै, कहे अम्हीणी वत्त ।
धण कणेररी काँब ज्यूँ सूकी तोय सुरत्त ॥ १२ ॥
भरै, पळट्टै भी भरै, भी भर भी पळटेह ।
पथी-हाथ सँदेसड़ो धण विललती देह ॥ १३ ॥

७—चाँपो—चपकका पेड मुकुलित हुआ है । चूँटै—चुनता है, तोडता है । न काय—क्यो नही ।

८—भमर इ०—भ्रमरके समान आकर क्यो नही बैठते ?

९—स्वात—स्वाति नक्षत्रके मेघ बनकर ।

१०—फट्टि—फट गई । पाळ—मट्टीका ऊँचा करार ।

११—कुमलाणी—कुम्हला गई । कदमणी—कुमुदिनी । सिसहर—हे शशधर, चद्र ।

१२—पही—हे पथिक ! घूमता हुआ यदि तू प्रियतमसे मिल जाय तो हमारी यह बात कहना कि प्रियतमा कनेरकी डडीके समान तुम्हारी यादमे सूख गई है ।

१३—भरै इ०—संदेशा कहती है, फिर बदल देती है, फिर कहती है, फिर कहकर बदल देती है । इस प्रकार पथिकके हाथमे वह प्रियतमा अपना संदेशा रोती हुई देती है ।

पंथी-हाथ संदेसडो, धण विललती देह ।
पगसूँ काढै लोहटी, उर आँसुवाँ भरेह ॥१४॥२२७॥

८—पत्र-लेखन

कर कलमाँ पाती लिखूँ, प्रीतम चतर सुजाण ! ।
अेक-अेक आखर वार दूँ, तन, मन और पराँण ॥ १ ॥
पाती आधो मिलण है, रह दरसणकी प्यास ।
वाँचत ही सुख ऊपजै, फेर मिलणकी आस ॥ २ ॥
कागद थोडो, हित घणो, कैसे लिखूँ वणाय ।
सागरमे जल भोत है, गागरमे न समाय ॥ ३ ॥
पतरीमे कितरी लिखूँ हितरी, चितरी, वात ।
इतरो तितरी ऊपजै, कागदमे नहि आत ॥ ४ ॥
पाती तहाँ पठाइयै, जो साजन परदेस ।
निज मनमे साजन वसै, ताकूँ का उपदेस ? ॥५॥
साजन ! पतियाँ तो लिखूँ, जो कछु अतर होय ।
हम-तुम जियरा अेक है, देखणकूँ तन दोय ॥ ६ ॥
अनँत-सँदेसा जीवका, लिख राख्या मन माँय ।
मिळियाँ मालम कीजसी, कागद लिख्या न जाय ॥ ७ ॥

१४—पग इ०—पैरोंकी रेखा खींचती है और हृदयको आँसुओंसे भरती है ।

८—पत्र-लेखन

१—पराँण—प्राण ।

४—कितरी—कितनी । हितरी—प्रेमकी । चितरी—चित्तकी । इतरी—इतनी । तितरी—वहाँकी (आपके विषयकी) ।

६—जियरा—जीव, प्राण ।

७—अनँत—अनंत । कीजसी इ०—मिलनेसे ही मालूम होंगे ।

प्रीतमकूँ पतियाँ लिखूँ, लिखूँ विसूर - विसूर ।
ये तुमको कौणे कही, या पर डारत धूर ॥ ८ ॥
पाती लिखताँ पीवनै हिवडो उझळ गयो ।
आँसूँ पड अँखियानसूँ कागद भीज गयो ॥ ९ ॥
आँसू नैणाँ उझळकर, मेह-झडी मच जाय ।
पाती लिखताँ पीवनै छाती सूँ भर जाय ॥१०॥
घर-गोखा पर बोलियो पपिहो ताहि घडी ।
काग लिखताँ कतनै करसूँ कलम पडी ॥११॥२३८॥

६—प्रतीक्षा

(१)

जण जोवै नित रातरी वाटाँ विसवा वीस ।
किण दिन आय करावस्यो घर लीलाँरी हीस ? ॥ १ ॥
ऊँची चढ-चढ गोखडै, ऊँची-ऊँची होय ।
जोऊँ मारग राजरो, आवो किण दिन होय ? ॥ २ ॥

८—कौणे—किसने । डारत धूर इ०—अक्षर सुखानेके लिये स्याहीपर धूल डाली जाती है ।

९—पीवने—प्रियतमको । हिवडो—हृदय । उझळ गयो—उमड़ आया, भर आया ।

१०—उझळकर—उमडकर ।

११—गोखाँ—गवाक्ष, झरोखा । पपिहो—पपीहा । पडी—गिर गई (पपीहेकी आवाजसे अेकाअेक व्याकुलता छा गई) ।

६—प्रतीक्षा

१—राजरी—आपकी । वाटाँ—मार्ग । लीलाँरी—घोड़ोंकी । हीस—घोडोंके हिनहिनानेका शब्द ।

२—आवो—आना ।

आलोजा ! घर आवज्यो पी प्याला मद पूर ।
उण दिन धणरै ऊगसी, सोना-हदो सूर ॥ ३ ॥
धन वेळा, नै धन घडी, धन दिन, धन ते मास ।
नैणाॅ दरसण देखसूॅ, ते दिन फळसी आस ॥ ४ ॥
साजण आयाॅकी कहै कोई अचानक आण ।
तो सजनी ! ताको हरख देऊॅं वधाई प्राण ॥ ५ ॥
मन तूटचो, आसा मिटी, नैणाॅ खूटचो नीर ।
ओळूॅं कर-कर आपरी सूक्यो सकळ सरीर ॥ ६ ॥
दिस चाहृदी सज्जणाॅ, नेहाळदी मग्ग ।
साधण कुझ-बचाह ज्यूॅं लाॅबा हूया पग्ग ॥ ७ ॥
दिस चाहृदी सज्जणाॅ नेहाळदी मुध ।
साधण कुझ-बचाय ज्यूॅं लाॅबी हुइ त कध ॥ ८ ॥
ऊलबे सिर हथ्थडा चाहंदी रसलूध ।
ऊॅंची चढ चात्रग ज्यूॅं माग निहाळै मूॅंध ॥ ९ ॥

४—धन धन्य । वेळा—समय ।

५—आण—आकर । सजनी—हे सखी ।

६—खूट्यो—समाप्त होगया । ओळूॅं—याद ।

७—दिस इ०—प्रियतमके आगमनकी दिशाको देखती हुई और मार्गको जोती हुई प्रियतमाके पैर क्रौंचके बच्चेके समान लम्बे होगये (प्रियतमा उझक-उझककर राह देखती थी) ।

८—मुध—मुग्धा, प्रियतमा । कध—गरदन ।

९—ऊलबे इ०—सिरको हाथपर रखे हुए और प्रेमके रसमे लुब्ध वह मुग्धा चातककी भाॅति ऊॅंची चढकर मार्गको देखती है ।

(२)

प्यारा ! आज्यो पावणा, प्यारी धणरै देस ।
साजन ! म्हाँरा पिहरमे थाँरा कोड हमेस ॥१०॥
सुसरो, सासू, साळियाँ, साळा सख्याँ सभीह ।
जोवै वाटाँ राजरी, पीहर आज्यो, पीव ! ॥११॥२४९॥

१०—प्रेमीकी उत्सुकता

मेह वूठा, हरिया हुवा, भरिया हौद-निवाँण ।
अधपतियाँ अरजी करै, दो नी सीख, दिवाण ! ॥ १ ॥
ऊठ धरा उतरादसूँ चहूँ कळा छिटकात ।
मन उमँग्यो मारू-धरा, वा चगा वरसात ॥ २ ॥
वीजळियाँ माँडेचियाँ खिवै हबूका लेह ।
दोख न घोडाँ रावताँ, राजा सीख न देह ॥ ३ ॥
उतरादो घन गरजियो, मोटी छाँटाँ मेह ।
दोस न घोडाँ रावताँ, राजा सीख न देह ॥ ४ ॥

१०—पिहर—पीहर । कोड—चाव ।
११—सभीह—सारे ही । राजकी—आपकी ।

१०—प्रेमी की उत्सुकता

१—निवाँण—नीची भूमि । अधपतियाँ—राजासे । दो नी सीख—हे दीवान, विदा (छुट्टी) दे ।

२—उतराद—उत्तर दिशा । मन इ०—मारू देशके लिये मन उमंगित हो उठा (प्रवासी मारवाड़का निवासी है) ।

३—दोख इ०—सरदारके घोड़ेको दोष नही क्योंकि उसका मालिक राजा जानेकी आज्ञा नही देता ।

४—काग उडावै—जब किसीकी प्रतीक्षा होती है तो काग उड़ाया जाता है ।

वादळ चमकै वीजळी, गाजै, वरसै मेह ।
काग उडावै कॉमणी, राजा सीख न देह ॥ ५ ॥
आज धरा-दिस ऊनम्यो काळी घड सिखरॉह ।
वा देसी घण ओळभा कर-कर लॉबी बॉह ॥६॥२५५॥

११—स्वप्न-दर्शन

सपना ! तूँ सम्भागियो, उत्तम थारी जात ।
सो कोसॉ साजन वसै, आण मिलावै रात ॥ १ ॥
सपनै प्रीतम मुझ मिल्या, हूँ गळ लागी धाय ।
डरपत पलक न खोलही, मत सपनो हुय जाय ॥ २ ॥
हुंता साजन - हीयडै साजन-हंदा हत्थ ।
जो सुपनो साचो हुवै, सुपनो वडी वसत्त ॥ ३ ॥
सुपना आया, फिर गया, मैं सर भरिया रोय ।
आव, सुवागण नीदड़ी ! वळि पिव देखूँ सोय ॥ ४ ॥
सपनैमे साजन मिल्या, कर न सकी दो वात ।
सोती थी, रोती उठी, मीजत रह गइ हात ॥ ५ ॥

५—काग उडावै—जब किसीकी प्रतीक्षा होती है तो काग उड़ाया जाता है ।

६—धरादिस—ध्रुवकी दिशा, उत्तर । घड—घटा । ओळभा देसी—उलहना देगी ।

११—स्वप्न-दर्शन

१—सुभ्भागियो—अच्छे भाग्यवाला, अच्छा । आण—लाकर ।

२—मय इ०—कही सपना ही न हो जाय ।

३—हुंता इ०—प्रियतमाके हृदयपर प्रियतमके हाथ थे (स्वप्न में) । वसत्त—वस्तु ।

४—फिर गया—चला गया । सर भरिया—इतनी रोई कि तालाब भर गये । सुवागण—सौभाग्यवती । वळि—फिर ।

जद जागूँ जद अेकली, जद सोऊँ जद बेल ।
सुहिणा ! तै मनै छेतरी बीजी - तीजी हेल ।। ६ ।।
सुहिणा ! तोय मरावस्यूँ, हिये दिराऊँ छेक ।
जद सोऊँ जद दोय जन, जद जागूँ जद अेक ।। ७ ।।
जब सोऊँ तब जागवै, जब जागूँ तब जाय ।
मारू ढोलो साँभरै, इण परि रैण विहाय ।। ८ ।।२६३।।

१२—शकुन

खिवै निमाँणी आँखड़ी, बोलै काग निळज्ज ।
सो कोसाँ साजन वसै, सो किम आवै अज्ज ? ।। १ ।।
आज फरूकै आँखियाँ, नाभ, भुजाँ, अहराह ।
सही ज, घोड़ा सज्जणाँ सामा किया घराँह ।। २ ।।
अहर फरक्कै, तन फुरै, तन फुर नैण फुरत ।
नाभी-मडळ सहु फुरै, साँझे नाह मिळत ।। ३ ।।
बाँवो अंग फरकण लग्यो, फरकत बाँवी आँख ।
साजन आसी, हे सखी ! चढ चोबारै झाँख ।। ४ ।।२६७।।

६—बेल—दो ।
७—सुहिणा—हे सुपने । छेतरी—ठगी, धोखा दिया । छेक—छेद करा दूँ ।
८—जागवै—सपनेमे आकर प्रियतम जगाता है । जाय—चला जाता है । साँभरै—प्रियतमा प्यारेको याद करती है । इण परि इ०—इस भाँति रात बीतती है ।

१२—शकुन

२—घोडा—प्रियतमने अपने घोड़े घरकी ओर किये (घरकी ओर प्रस्थान कर दिया है) ।
३—अहर—होठ । फरक्कै, फुरै—फड़कता है । सहु—सब ।
४—साँझे इ०—संध्याको प्रियतम मिलेगो । बाँवो—बाँया । झाँख—देख ।

१३—प्रियतमका आगमन

काग उडावण धण खड़ी, आयो पीव भडक्क ।
आधी चूडी काग गळ, आधी गयी तडक्क ॥ १ ॥
उठ, दासी ! कस ढोलियो, गहरा - दीपक जोय ।
दडवड माची देहराँ, सायत साजन होय ॥ २ ॥
सायब आया, हे सखी ! काँई भेट कराँह ?
गजमोतियनको थाळ ले, ऊपर नैण धराँह ॥ ३ ॥
सायब आया, हे सखी ! तोडो नव-सर हार ।
लोक जाणै मोती चुगै, झुक-झुक करो जुहार ॥ ४ ॥
साजन आया, हे सखी ! मगळ - चौक पुराय ।
गावो मँगळाचार मिल, गहरो ढोल घुराय ॥ ५ ॥
साजन आया, हे सखी ! मोत्याँ थाळ भराय ।
डोढयाँ साम्ही दौड अब लावाँ चाल वधाय ॥ ६ ॥

१३—प्रियतमका आगमन

१—भडक—अचानक । तडक्क—तडककर टूट गयी । नोट—नायिका काग उड़ा रही थी । उसका शरीर प्रिय-वियोगसे बहुत दुर्बल हो गया था, पर ज्योंही प्रियतमको आया सुना, वह अेकदम मोटी हो गयी और हाथ मोटा होनेसे हाथकी चूडी तड़क गयी । हाथ ऊँचा किया हुआ था, अतएव टूटी हुई चूडीका ऊपरवाला आधा हिस्सा उछलकर कौवेके गलेमें जा पडा ।

२—सायत—शायद (अथवा, आनेकी शुभ वेला) ।

३—नैण इ०—क्या ही सुन्दर और उपयुक्त भेट है ।

४—नवसर—नौ लड़ो का । जुहार—प्रणाम ।

५—घुराय—बजाकर ।

६—डोढी—डेवढी, अंतःपुरका द्वार । साम्ही—सामने ।

साजन आया, हे सखी ! सँग साईना लेर ।
पाई नव निध नार, अब नगर वधाई फेर ॥ ७ ॥
साजन आया, हे सखी ! कज्जा सह सरियाह ।
पूनिम-केरै चाँद ज्यूँ दिस च्यारे फळियाह ॥ ८ ॥
साजन आया, हे सखी ! ज्याँकी हूँती चाय ।
हियडो हेमागर भयो, तन पिजरे न माय ॥ ९ ॥
साजन आया, हे सखी ! हुता मूझ हियाह ।
आजूणै दिन ऊपरै बीजा बळि कीयाह ॥१०॥
साजन आया, हे सखी ! हुता मूझ हियाह ।
सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह ॥११॥
हियमे करै वधामणा, सखी ! त सीधा काज ।
जे सुपनतर दीसता, नयणे देख्या आज ॥१२॥
जिणनूँ सुपनै देखती, प्रगट भया पिव आय ।
डरती आँख न मूँदही, मत सुपनो हुय जाय ॥१३॥
सोई साजन आव्रिया, जाँकी जोती वाट ।
थाँभा नाचै, घर हँसै, खेलण लागी खाट ॥१४॥

७—साईना लेर—साथियोको लेकर ।

८—कज्जा इ०—सब काज सिद्ध हो गये । च्यारे—चारो ।

९—हुती—थी । हेमागर—हिमगिरि । माय—समाता है ।

१०—आजूणै इ०—आजके दिनपर दूसरे दिन न्यौछावर कर दिये ।

११—सूका इ०—जो मनोरथ सूख गये थे, वे पल्लवित होकर सफल होगये ।

१२—वधामणा—बधाइयाँ, बधावने । सीधा—सिद्ध हुअे । सुपनंतर—जो स्वप्नमे दिखाई देते थे ।

१४—थाँभा नाचै—सारा घर और घरके निर्जीव पदार्थ भी हर्षसे नाचते हुअे दिखाई देते हैं ।

सज्जन वारूँ कोड़धाँ, या दुरजणकी भेट ।
रजनीका मेळा किया, वहके अच्छर मेट ॥१५॥२८२॥

१४—प्रिय-प्रिया-मिलन

ढोलै जाणी वीजळी, मारू जाण्यो मेह ।
च्यार आँख अेकठ हुयी, सयणाँ वध्यो सनेह ॥ १ ॥
सब मुख देखै चदको, मैं मुख देखूँ तोय ।
मेरे तुम ही चद हो, मुख देख्याँ सुख होय ॥ २ ॥
आवो, प्यारा ! नैणमे, पलक डाक तोहे लूँ ।
ना मैं देखूँ ओरकूँ, ना तोहे देखण दूँ ॥ ३ ॥
केसररा क्यारा करूँ, कसतूरीकी खाज ।
नैणाँरा प्याला करूँ, पीवो, म्हारा राज ॥ ४ ॥
या तनकी भट्टी करूँ, मनकूँ करूँ कलाल ।
नैणाँरा प्याला करूँ, भर-भर पियो, जमाल ॥ ५ ॥
नैणनकी कर कोटडी, पुतळी दिऊँ बिछाय ।
पलकनकी चिक डार दूँ, साजन ! बैठो आय ॥ ६ ॥

१५—सज्जन—इस दुर्जनके ऊपर करोड़ो बार सज्जनोको न्योछावर कर दूँ, क्योकि इसने विधाताके लेखको मेटकर वियोगी चकवा और चकवीको रातमें संयुक्त कर किया । नोट—यह माना जाता है कि रातमे चकवा-चकवी साथ नही रह सकते । अेक बहेलियेने दोनोको पकड़ लिया और रातमे भी पिंजरेमे बन्द करके साथ ही रखा ।

१४—प्रिय-प्रिया-मिलन

१—ढोले इ०—नायकने नायिकाको बिजली समझा और नायिकाने नायकको मेघ समझा (और दोनो मिले) । च्यार इ०—चार आँखे इकट्ठी हुई, नायक-नायिकाने परस्पर-दर्शन किया । सयणाँ इ०—प्रेमियोका प्रेम बढ़ चला ।

२—तोय—तेरा । देख्याँ—देखनेसे ।

म्हेनै ढोलो झूँबियो, लूँगे लक्कडियेह ।
म्हॉनै प्रिउजी मारिया, चंपारै कळियेह ॥ ७ ॥
म्हेनै ढोलो झूँबियो, म्हॉनूँ आवी रीस ।
चोवा-केरी कूँपली, ढोळी साहब-सीस ॥८॥२६०॥

१५—मान

गहली ! गरब न कीजियै समै सुहाग ज पाय ।
जीकी जीवण जेठ ज्यूँ माह न छाँह सुहाय ॥ १ ॥
बतळावै जद वाम, बतळाया बोलो नही ।
कदयक पडियॉ काम नोरा करसो, नागजी ! ॥ २ ॥
तन मिलिया तो क्याहुवा, मन की मिटी न प्यास ।
जैसें सीप समदमे करै तिरास-तिरास ॥ ३ ॥२६३॥

७—म्हेनै इ०—प्रियतम लवगकी छडी लेकर मुझे झूम गया । प्रियने मुझे चपककी कलियोसे मारा ।

८—म्हेनै—जब प्रियतम मुझे झूम गया तो मुझे रीस आयी और मैने चोवा (अरगजा) का पात्र स्वामीके सिरपर उँड़ेल दिया ।

१५—मान

१—हे पगली ! समयपर सौभाग्यको पाकर गर्व मत कर । याद रख, जेठ मासमे छाया प्राणोके लिअे जीवन-रूप होती है, वही माघमे अनखावनी लगने लगती है ।

२—हे नागजी ! प्रिया जब बुलाती है तब तो बोलते भी नही, पर कभी काम पडेगा तो मनुहार करते फिरोगे ।

३—मिलिया—मिले । समंद्र—समुद्र । तिरास—तृषा, प्यास (सीपकी प्यास स्वाति-जलसे ही बुझती है ।)

१६—वर्षा-विहार

आयो घन त्यूँ ही अली। मन-चायो तन साज।
आयो धणरो सायबो करण सुमगळ काज ॥ १ ॥
काळा वादळ वरसिया, मोर हुवा महमत।
सहराँ - सहराँ सचरी वादूँवाद खिव त ॥ २ ॥
कोयल करै टहूकड़ा, पपिया करै पुकार।
घन धुर अबर घुमड़ियो, धर झर मेहाँ धार ॥ ३ ॥
आइ घटा उतरादरी, भँज सो कोसाँ वीच।
मेहाँ माँडचा माचणा, किल भर माच्या कीच ॥ ४ ॥
हरियाँ वनकी कोयलाँ, हरिया वनका मोर।
मन जरिया हरिया करै बोल-बोल निस-भोर ॥ ५ ॥
पियकै हरी सु पाग सिर, तियकै हरियो चीर।
जल झरिया हरिया हुवा सब पट भीज सरीर ॥ ६ ॥

१६—वर्षा-विहार

१—धणरो सायबो—प्रेयसीका प्रियतम। करण—करनेवाला।

२—महमंत—मस्त। सहराँ इ०—पहाडोके शिखर-शिखरपर बिजली होड़ लगाकर चमक रही है।

३—धुर-अम्बर—उत्तर दिशाके आकाशमे। धर इ०—पृथ्वीपर मेघोकी धाराएँ झर रही हैं।

४—उतराद—उत्तर दिशा। सो—सौ, १००।

५—मन जरिया इ०—जले हुअे मनोको हरा-भरा करते हैं।

६—पाग—पगड़ी। जल झरिया—जल टपकते हुअे। भीज—भीगकर।

केसी लगै सुवावणो, धुरवाँ-धुरवाँ कत ।।
जल झुरवाँ, सुरवाँ करै, मुरवा-गण महमंत ।। ७ ।।
लूमाँ झड, नदियाँ लहर, बग-पंगत भर बाथ ।
मोराँ सोर ममोलिया, सावण लायो साथ ।। ८ ।।
हरणी मन हरियाळियाँ, उर हाळियाँ उमग ।
तीज परब, रँग त्यारियाँ, सावण लायो सग ।। ९ ।।
धन धोराँ, जोराँ घटा, लोराँ वरसत लाय ।
वीज न मावै वादळाँ, रसिया ! तीज रमाव ।।१०।।
इंद्र-धनस तणियो अजब, चातक-धुन मन भाव ।
वीज न मावै वादळाँ, रसिया ! तीज रमाव ।।११।।
मोर सिखर ऊँचा मिलै, नाचै हुवा निहाल ।
पिक ठहकै, झरणा पड़ै, हरियै डूँगर हाल ।।१२।।

७—सुवावणो—सुहावना । धुरवाँ—घन-घटा । झुरवाँ—बरसता है । सुरवाँ—शोर । मुरवाँ—मोर ।

८—बग पंगत इ०—बाथे (भुजाएँ) भरकर (अर्थात् खूब) बगुलोकी पाँतें । ममोलिया—बीरबहूटियाँ । सावण—इतनी चीजे सावन आता हुआ साथ लाया ।

९—हिरनियोके मन हरे हो गये, कृषकोके हृदयोमे उमंगें उत्पन्न हुई, तृतीया का त्यौहार, रँग भरी तय्यारियाँ—ये सब सावन साथमे लाया ।

१०—टीबोमे धान खूब हो रहा है, और बादलोकी घटाएँ जोरोसे लोरोंके साथ बरस रही है, बिजली इतनी चमकती है कि बादलोमे नहीं समाती । हे रसिक, अैसे समयमे तीजका त्यौहार मनाओ ।

११—इन्द्र-धनस—इन्द्र-धनुष । तणियो—तन गया ।अजब—निराला ।

१२—निहाल इ०—निहाल बने हुओ । ठहकै—कूकती है । हरिये इ०—हरे पहाड़पर चलो ।

बाजरियाँ हरियाळियाँ, विच-विच वेलाँ फूल ।
जे भर वूठो भादवो, मारू देस अमूल ।।१३।।
धर नीळी, धण पुंडरी, घर गहगहै गिमार ।
मारू देस सुहावणो, सावण साँझी वार ।।१४।।
गह घूमी, लूमी घटा, पावस उळटचा पूर ।
सावण महिनै, सायबा ! कदे न राखूँ दूर ।।१५।।
सावण आयो, सायबा ! बाँधो पाग सुरग ।
महल बैठ राजस करो, लीला चरै तुरग ।।१६।।
वादळ तन काळो वरण घुरबो आन नगाज ।
मद झर जळ बंगर छटा, घटा वणी गजराज ।।१७।।
हैं निगाज च्यारूँ तरफ, वै निगाज वरसाळ ।
उळटा-पळटा वादळा, चढत-वढत कर चाळ ।।१८।।
च्याराँ पासे घन घणो, वीजळ खिवै अकास ।
हरियाळी रुत तो भली, घर सपत, पिव पास ।।१९।।३१२।।

१३—जे इ०—यदि भादवेमे भरपूर वर्षा हो तो मारवाड़की शोभा अमूल्य हो जाय ।

१४—धर इ०—पृथ्वी हरी हो गयी, प्रियतमाका रंग निखरकर गोरा हो गया, गाँवके लोग घरोमे बाजे बजाकर आनन्द मनाते हैं । इस प्रकार सावनकी संध्याके समय मारवाड़ वडा सुहावना बन जाता है ।

१५—लूमी—झुक आयी । सायबा—हे प्रियतम ।

१६—राजस—राज्य । लीला—हरा घास ।

१७—घुरबो—घुमडना, गरजना ।

१९—च्याराँ पासे—चारो ओर । हरियाली रुत—वर्षा । घर संपति इ०—ताकि पतिको कमाने परदेस न जाना पड़े ।

१७—पखवाड़ा

पख पडवासूँ ओलरचो, कर सूतो सिणगार।
नायो धणरो सायबो, दिव्रो न खंडे धार ॥ १ ॥
बीज स आज, सहेलियाँ ! वालो ऊगो चद।
दाडम-हदा दतड़ा, सेज न आयो कत ॥ २ ॥
तीज स आज,सहेलियाँ ! तीजणियाँ तेहवार।
गोरी सोहै आभरण, काजळ, कूँकूँ, हार ॥ ३ ॥
चौथ चमक्को पाड़ियो घण मारूरै देस।
महलाँ बैठी कामणी, पीव वसै परदेस ॥ ४ ॥
पाँचम आज, सहेलियाँ ! पाँचूँ बध्या ठाण।
उळगाणारी कोटडी हुयी पिलाँण-पिलाण ॥ ५ ॥
छट्ठ स आज, सहेलियाँ ! तीनूँ तिथ टळियाँह।
आवै धणरो सायबो, लेसी ऊडळियाँह ॥ ६ ॥
आज, सहेली ! सातम जु, सोनैरो सळियाँह।
आसी धणरो सायबो, करसी रँगरळियाँह ॥ ७ ॥

१७—पखवाड़ा

१—पख—पक्ष, पखवाड़ा। पड़वासूँ—प्रतिपदासे। ओलऱ्यो—शुरू हुआ। सूती—सोई। नायो—नहीं आया। दिवो—दीपक। खंडै इ०—स्थिर लौसे जल रहा है।

२—बीज—द्वितीया। वालो—प्यारा।

३—कूँकू—कुकुम। आभरण—गहने, श्रृङ्गार।

४—चमक्को पाड़ियो—बिजली चमकी। घण—बादल।

५—उळगाणा—प्रवासी प्रियतम। कोटड़ी—डेरा। हुवो इ०—प्रस्थानकी तय्यारी होने लगी।

७—सळियाँह—सलाइयाँ। आसी—आवेगा।

आज, सहेली ! आठम जु, ओ पख अहलो जाय ।
हिये खटूकै वालमो, कॉटो अेडी मॉय ॥ ८ ॥
आज, सहेल्यॉ ! नवम जे, ओढण नवला चीर ।
रिमझिमकर महलॉ चढी, नहि नणदलरा वीर ॥ ९ ॥
दस दसरावा पूजसा भर मोतीडा थाळ ।
भजिया सो ही पावसी भर जोडी भरतार ॥ १० ॥
आज इग्यारस आँवली, वेह नै मगलवार ।
प्रगडै करस्यॉ पारणो मुख देख्याँ भरतार ॥ ११ ॥
बारस आज, सहेलियॉ ! बाबहियो बोलत ।
नैणॉ सावण-भादवो, होठॉ वीज खिवत ॥ १२ ॥
तेरस आज, सहेलडी ! तीनूॅ तीखा वार ।
पिव्रनै सोहै मूँदडी, धणने नवसर हार । १३ ॥
चवदस आज, सहेलियाँ चोक्यॉ बैठा राव ।
अणचीत्या साजण मिल्या, पड्या निसाणॉ घाव ॥ १४ ॥

८—अहलो—योही, व्यर्थ । खटूकै—खटकता है । वालमो—प्रियतम ।

९—नवला—नये । नणदलरा वीर—नन्दका भाई, पति ।

१०—दस—दशमी । दसरावा—दशहरा ।

११—प्रगडै—प्रातःकाल । पारणो—व्रतके पीछेका भोजन, पारणा ।

१२—बाबहियो—पपीहा । नैणॉ इ०—नेत्रोमे श्रावण-भाद्रपद बरस रहा है और होठोंमे बिजली चमक रही है । (दॉतोको बिजलीकी उपमा दी जाती है) ।

१३—तीखा—कठोर । मूँदडी—मुद्रिका, अंगूठी ।

१४—राव—राजा । अणचीत्या—अचित्य रूपसे । निसाणॉ इ०—नगारो पर चोट पड़ी ।

पूनम पूरो ऊगसी, रती न खांडो होय।
उळगाणारी गोरड़ी, बैठी निरमळ होय ॥ १५ ॥
धण धायी, पिव छाकिया, घोड़ा घास चरत।
पखवाड़ो पूरो हुयो, दिवला साख भरत ॥ १६ ॥३२८॥
॥१०१५॥

१५—पूरो—पूरा (चन्द्रमा)। खांडो—खडित। गोरड़ी—गोरी, स्त्री।

१६—धण—प्रिया। धाई—तृप्त हुई। छाकिया—छक गये। दिवला—दीपक। साख—गवाही।

———

(८) शान्त-रस

१—काल-बलीकी महिमा

समै करै, नर क्या करै, समै-समैरी वात ।
केई समै-रा दिन वडा, केई समै-री रात ॥ १ ॥
समै वडी, नर क्या वडो, समै वडी बळवान ।
काबाँ लूँटी गोपकाँ, बो अरजन, बै बाण ॥ २ ॥
दीहा से कारज करै, जे वैरी न करत ।
दीह पळट्टे रावणा पथ्थर नीर तरत ॥ ३ ॥
कठै जाया, कठै ऊपन्या, कठै लडाया लाड ।
कुण जाणै किण खाडमे जाय पडैला हाड ॥ ४ ।
सम्मन, साता पुरसरी रहै न अेकीसार ।
तिल डूबै, पथ्थर तिरै, अपणी-अपणी वार ॥ ५ ॥
सोनो-रूपो पहरती, मोत्याँ मरती भार ।
सो कासीरै चोवटै हरचँद वेची नार ॥ ६ ॥

१—काल-बलीकी महिमा

१—समै—समय, काल । केई—किसी ।

२—काबा इ०—म्लेच्छ लुटेरोने गोपियोको छीन लिया यद्यपि अर्जुन वही महाभारतका विजेता अर्जुन था और उसके पास वही धनुष-बाण थे जिनसे उसने महाभारतमे विजय पायी थी ।

३—दीहा—दिन, काल । से—वह । पळट्टे—बदलनेपर ।

४—कठै—कहाँ । जाया—जनमे । ऊपना—उत्पन्न हुअे । कुण इ०—कौन जानता है कि अन्तमें ये हड्डियाँ किस खाईमे जाकर पड़ेगी ।

५—साता—अच्छी स्थिति । अेकीसार—अेक-सी । वार—बारी, समय ।

६—हरचँद—प्रसिद्ध सत्यवादी राजा हरिश्चन्द । चोवटै—बाजारमे ।

मण-मण मोती पहरती, मरती मोत्याँ भार ।
सो नर जगळ वीचमे दुख पावै निरधार ॥ ७ ॥
तन भर सोनो पहरती, गळ मोत्यॉरो हार ।
अेक दिन अैसो आयगो, घर-घररी पणियार ॥ ८ ॥
ऊँचे टीबै ठीकरी घड़-घड गया कुँभार ।
रावण सिरसा चल गया लकाका सिरदार ॥ ९ ॥
जिण वन भूल न जॉवता गयँद-गवय- गिडराज ।
तिण वन जबुक ताखडा ऊधम मडै आज ॥१०॥
जिणरै खॉधै कूदता, करता लाड हजार ।
लाडणहारा रह गया, गया लडावणहार ॥११॥
महिपत देता मोज, घर बैठॉ घोडा घणा ।
रोटचॉ-केरो रोज, निजरॉ देख्यो, नोपला ! ॥१२॥
भावै नही ज भात, लागै विणज विडाव्रणा ।
रीरावै दिन-रात, रोटचॉ कारण, राजिया! ॥१३॥
गढ-कोटॉ, पोळी-पगॉ, ऊँचा-ऊँचा धाम ।
आया जम, जिव ले चल्या, कोइ न आया काम ॥१४॥
ज्यूॅ लारलड़ा वह गया. वरतमाण वह ज्याय ।
काळ-कळतमे कळ रह्या, ठीक न, विसना, ठाय ॥१५॥

८—पणियार—पनिहारी, पानी भरनेवाली ।

१०—गयँद—हाथी । गवय—रोझ । गिडराज—गृध्रराज । जंबुक—सियार । ताखडा—उपद्रवी । मडै—करते हैं ।

११—लाडणहरा—जिनका लाड़-प्यार होता था ।

१२—मोज—रीझमे, रीझकर । रोज—रोना, झीकना । निजरॉ—ऑखों ।

१४—पगा—पगार, चहारदिवारी ।

१५—लारलड़ा—पीछेवाले । वरतमाण—वर्त्तमान, जो अब हैं ।

पाछा मिलण न पावसी, पड सरवरसूँ पात ।
देह छूटॉ मिलणो पछै है नहि, विसना, हात ॥१६॥
सदा न सग सहेलियाँ, सदा न राजा देस ।
सदा न जुगमे जीवणा, सदा न काळा केस ॥१७॥
आसी सावण मास, वरखा रुत आसी वळे ।
साईनॉरो साथ वळे न आसी वीजरा ! ॥१८॥

२—संसारकी अनित्यता

पान झडता देखकर, हँसी ज कूँपळियाँह ।
मो वीती तुझ वीतसी, धीरी बापडियॉह ! ॥ १ ॥
गहरी लाली देखकर फूल गुमान भयाह ।
कितरा वाग जहानमे लग-लग सूख गयाह ॥ २ ॥
बँधी गठडिया धूळकी रही पवनसे फूल ।
गॉठ जतनकी खुल गयो, अत धूळ-की-धूळ ॥ ३ ॥

१७—जुग—जगत । काळा केस—काले केश अर्थात् यौवन ।

१८—सावनका महीना फिर लौट आवेगा, वर्षा ऋतु भी लौट आवेगी, पर आज बचपनमे जिन साथियोंके सग खेलते-कूदते हैं, उनका साथ फिर कभी नही मिलेगा ।

२—संसारकी अनित्यता

१—कूँपळियॉह—कोपले । मो वीती इ०—पत्तोंने उत्तर दिया कि अरी बेचारियो, ठहर जाओ, जो हमपर बीती है, वही तुमपर भी बीतेगी ।

२—कितरा—न-जाने कितने । गुमान भया—गर्वमे भर गये ।

३—बँधी गठड़िया—शरीर मिट्टीका बना है । पवन—जीव । जतनकी—यत्नसे बॉधी हुई ।

दस दुवारको पीजरो, तामे पंछी पौन ।
रहण अचूँबो है, जसा, जाण अचूँबो कौण ? ॥ ४ ॥
जो ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सो कुमळाय ।
जो चिणिया सो ढह पडै, जो आया सो जाय ॥ ५ ॥
पाणी-केरा बुदबुदा, इसी मिनखरी जात ।
अेक दिनाँ छिप जावसी, ज्यूँ तारा परभात ॥ ६ ॥
आया सोही जावसी, राजा-रक-फकीर ।
कोई सिघासण बैठ, कोइ पाँव लगी जजीर ॥ ७ ॥
ऊमररै उणसार, टिगट मिल्या जग-रेलमे ।
कै वेगा, कै वार, ठेसण-ठेसण उतरसी ॥ ८ ॥
ज्यूँ वादळ मिल वीछडै, आप-आपसूँ आय ।
दिन दसका मेळा भया, रहणा निहचै नाँय ॥ ९ ॥
नदी-किनारै देखियै, सम्मन, सब ससार ।
कै उतरचा, कै ऊतरै, (कै) बुगचा बाँध तयार ॥१०॥

४—दस दुवार—शरीरमे दस छिद्र है—दो आँखोके, दो नाकके, अेक मुँहका, दो गुह्यस्थानोके, दो कानोके और अेक मस्तिष्कमे ब्रह्माडका । पौन—पवनरूपी पक्षी उसमें रहता है । पीजरो—अर्थात् शरीर । रहण इ०—अैसे पिजरेमे अैसा पक्षी रहे यही आश्चर्य है, वह चला जाता है यह तो कोई आश्चर्य की बात नही । जसा—जसवंतसिह (कविका नाम) ।

७—कोइ इ०—पुण्यात्मा सिहासनपर बैठकर और पापी बँधे हुअे ।

८—उणसार—अनुसार । कै इ०—कोई जल्दी और कोई देरसे । ठेसण—टेसन, स्टेशन ।

९—आप-आपसूँ—अपने-आप, स्वतः । निहचै—निश्चय ही ।

१०—कै— कई । तयार—जानेके लिअे उद्यत ।

चलणा है, रहणा नही, चलणा विसवा वीस ।
अैसे सहज सुहागपर कूण गुँथावै सीस ? ॥११॥२६॥

३—यौवनापगम

जोबन था जब रूप था, गाहक था सब कोय ।
जोबन-रतन गमायकै ! वात न पूछै कोय ॥ १ ॥
जोबन जोगी हो गया, फेरी देग्या द्वार ।
मैं पापण ताकत रही, फिर्‌या न दूजी वार ॥ २ ॥
यहि अँगना, यहि देहरी, यही ससुरको गाँव ।
दुलहन-दुलहन टेरताँ वुढिया पड गयो नाँव ॥ ३ ॥३२॥

४—चेतावनी

ऊठ, फरीदा ! जाग रे, जागणकी कर चूँप ।
यो दम हीरा लाल है, गिण-गिण रबकूँ सूँप ॥ १ ॥
ऊठ, फरीदा ! जाग रे, झाडू देय मसीत ।
तूँ सोवै, रब जागता, किस विध वणै पिरीत ॥ २ ॥

११—विसवा वीस—बीस विश्वे अर्थात् अवश्य ही । सहज—साधारण । सुहाग—अर्थात् सासारिक जीवन । सीस गुँथाना—बडी-बड़ी तय्यारियाँ करना ।

३—यौवनापगम

२—देग्या—दे गया । पापण—पापिनी, अभागी । फिर्‌या—लौटा ।
३—टेरताँ—पुकारते-पुकारते ।

४—चेतावनी

१—चूप—उत्साह, प्रबल इच्छा । दम—साँस । रब—परमात्मा । सूँप—सौंप दे ।
२—मसीत—मसजिद । पिरीत—प्रीति ।

मिनख-देह प्रापत भयी, सब प्रापतकी मूळ ।
ज्याँमे हरि प्रापत नही, सब प्रापतपै धूळ ।। ३ ।।
जब ही राम विसारियै, जब ही झंपै काळ ।
सिर ऊपर करवत वहै, आय पडै जम-जाळ ।। ४ ।।
जसवँत, सीसी काचकी, अैसी नरकी देह ।
जतन करताँ जावसी, हर भज लाहा लेह ।। ५ ।।
जसवँत, वास सरायका, क्या सोवै भर नैण ! ।
साँस-नगारा कूचका, वाजत है दिन-रैण ।। ६ ।।
काळाँकै हलहल भयी, धोळा बैठा आय ।
हरीदास, गढ पाळटचा, गुण गोविंदका गाय ।। ७ ।।
रे ! थोडी ऊमर रही, काय न छोडै कूड ? ।
हिय-अधा ! तूँ नाख अब धधाँ ऊपर धूड ।। ८ ।।
जात वळतै साँसडै जो दीजै सोइ लभ्भ ।
विच ही वाव विलावसी, राख थयेसी सभ्भ ।। ९ ।।
हर भज, रे हरदासिया ! दाखै ईसरदास ।
मोल लियाँसूँ नहि मिलै कोट मोहर इक साँस ।।१०।।

३—प्रापत—प्राप्ति ।

४—जब ही झंपै इ०—तभी काल झपटता है । वहै—चलता है ।

५—लाहा—लाभ । लेह—ले ले, उठा ले ।

७—काळाँके—काले केश चलनेको तय्यार हुअे । गढ पाळट्या—गढ़का अधिकार बदल गया ।

८—काय—किस लिअे । कूड—झूठ । नाख—डाल ।

९—जात वळते इ०—साँसके जाते-आते । लम्भ—लाभ । वाव—वायु, प्राण । विलावसी—विलीन हो जायगी । थयेसी—होगा । सम्भ—सब कुछ ।

हाथाँ परबत तोलता, समँदाँ घूँट भरै।
ते जोधा दीसै नही, तूँ क्यो गरब करै ? ॥११॥

चल वैभव सपत सुचल, चल जोबण, चल देह।
चलाचलीकै खेलमे भलाभली कर लेह ॥१२॥

जात वळै नहि दीहड़ा, जिमि गिर-निरझरणाह।
उठ, रे आतम ! धरम कर, सुवै निचता काह ? ॥१३॥

वहतै जळ, काळू कहै, लीजै अग पखाळ।
वळे न, हसा ! आवसो, इण सरवररी पाळ ॥१४॥

सबसूँ हँस-हँस बोल, पर-दुखमे साथी वणो।
मिनख-जूण अनमोल, च्यार दिनाँरी चानणी ॥१५॥

नाम अमररी चाय, तो हो भल करपर-भला।
माटीमे मिल जाय, काया काची मिनखरी ॥१६॥

पिड पडै, पुन ना पडै, परळै पतित न होय।
रज्जब, सगी जीवका सुकृत सिवाय न कोय ॥१७॥

११—हाथाँ इ०—पवतोको हाथोमे उठाकर तोल सकते थे तथा समुद्रोको अेक-ही घूँटमे पी जाते थे। करै—करता।

१२—चल—चंचल, अस्थायी।

१३—वळै—लौटते है। दीहड़ा—दिन। गिर इ०—पहाड़ी झरने। आतम—हे जीव। निचंता—निश्चिन्त। काह—क्या, किसलिअे।

१४—पखाळनो—धोना, मजन करना। वळे—फिर। हंसा—हे जीव। इण—इस। पाळ—पार या तटपर।

१५—मिनख-जूण—मनुष्य जन्म। चार इ०—चाँदनीकी भाँति चार दिन तक रहनेवाली अर्थात् अस्थायी है।

१६—चाय—इच्छा। तो इ०—तो भले होकर पराया भला करो।

१७—पिंड—शरीर। पुन—पुण्य। पड़ै—नष्ट होता है। परळे—प्रलयमे भी। सुकृत—धर्म, पुण्य।

दिन दस दोलत देखकर गरब्यो कहा, गॅवार ! ।
जोड़त लागा वरस सौ, जात न लागै वार ।।१८।।
आया खाली हाथ, माया जोडी जनम भर ।
सुई न चालै साथ, खाली हाथाँ जावसी ।।१९।।
काया अमर न कोय, थिर माया थोडी रहै ।
इळमे वार्तां दोय, नामा कामा, नोपला ! ।।२०।।
सम्मन, रोवै कूणकूँ, हॅसै न कूण विचार ।
गया स आवणका नही, रह्या स जावणहार ।।२१।।
हरीदास, लीजै नही, कचन वदळै काच ।
जो कुछ गया स जाण दे, तूँ रहतासूँ राच ।।२२।।
माया मेरे रामकी, धरणीधरकी देह ।
पूँजी साहूकारकी, जस कोई कर लेह ।।२३।।५५।।

५--पश्चात्ताप

रात गमायी सोयकर, दिवस गमायो खाय ।
हीरा जलम अमोल था, कौडी वदलै जाय ।। १ ।।

१८—गरब्यो—गर्वमे भर गया । वार—देरी ।

१९—माया—सम्पत्ति । जावसी—जावेगा ।

२०—थिर इ०—सम्पत्ति थोडे ही समय तक स्थिर रहती है ।

२१—कूणकूँ—किसलिअे । कूण विचार—क्या विचार करके । गया—जो चले गये । स—सो, वे । रह्या—जो पीछे रह गये हैं । इळमे इ०—इसमे तो दो ही बातें सारकी हैं—नाम कर लेना और कर्त्तव्य कर लेना ।

२२—रहतॉ—जो बच गये है । राच—प्रेम कर, संतोष कर ।

५—पश्चात्ताप

१—जलम—जन्म । वदलै—बदलेमे ।

दादू, पछतावा रह्या, सक्या स ठाहर लाय ।
अरथ न आया रामके, ओ तन यूँही जाय ॥ २ ॥
दादू, जैसा नाम था, तैसा लीया नाँय ।
काती करस्याँ खेत ज्यूँ होस रही मन माँय ॥ ३ ॥
सुमरणका साँसाँ रह्या, पछतावा मन माँय ।
दादू, मीठा राम-रस सगळा पीया नाँय ॥ ४ ॥
तुळसी, या ससारमे सरचो न अेकौ काम ।
दुबधामे दोनूँ गया, माया मिळी न राम ॥ ५ ॥
धीरम, धरिया ही रह्या का-पुरसाँका माल ।
सुकरित-सोदा कर गया, जे साईंका लाल ॥ ६ ॥
हरीदास, सकट पडर्याँ सगा न दीसै कोय ।
राम सगा सो परहरचा, कुसळ कठाँसूँ होय ॥ ७ ॥६२॥

६—हरिभक्ति

साँई ! तेरी यादमे जिन तन कीया खाख ।
सोनो वाकी रूबरू है चूल्हैकी राख ॥ १ ॥

२—यूँही—योंही, व्यर्थ ।

३—काती इ०—कात्तिक मासमे खेत जोतनेसे । होस—इच्छा ।

४—सगळा—सारा । पीया—पिया ।

५—सर्‌यौ—पूरा हुआ । दुबधा—द्विविधा, अनिश्चय ।

६—धीरम—कविका नाम । कापुरस—कायर, नीच । सुकरित-सोदा—पुण्योका सौदा । साँईका लाल—परमात्मा के प्यारे ।

७—पड्‌र्याँ—आ पडा । सगा—बन्धु, सहायक । परहर्‌या—भुला दिया, छोड़ दिया । कठाँसूँ—कहाँसे ।

६—हरिभक्ति

१—खाख—खाक । सोनो इ०—उसकी चूल्हेकी राख भी वास्तवमे सोना है ।

सॉई ! टेढी ॲखियॉ, वैरी खलक तमाम ।
टुकियक झोला महरका, लक्खूँ करै सलाम ॥ २ ॥
कब सबरी चौका दिया, कब हर पूछी जात ? ।
प्रीत पुरातन जाणकर फळ पाया रुघनाथ ॥ ३ ॥
जळके न्हाये, परसरा, पतित न पावन होय ।
पावन हुवै हर-नॉवसूँ साध-वेद कह सोय ॥ ४ ॥
मूँदूँ जाका सरवणा, फोडूँ जाका नैण ।
काटूँ-वाढूँ जीभडी, हर विन उचरै वैण ॥ ५ ॥
जाकै हिरदै हर वसै, हर-भगतॉसूँ प्यास ।
खोजी छानी क्यूँ रहै कसतूरीकी वास ॥ ६ ॥
झूठा माणक-मोतिया, झूठी जगमग जोत ।
झूठा सब आभूखणा, सॉचि पियाजिरी पोत ॥ ७ ॥
झूठा पाट-पटबरा, झूठा दिखणी चीर ।
सॉचि पियाजिरी गूदडी, निरमळ रहै सरीर ॥ ८ ॥
छप्पन भोग वहाय दे, उण भोगनमे दाग ।
लूण-अलूणो ही भलो अपणै पियाजिरो साग ॥ ९ ॥

२—सॉई—हे स्वामिन् ! यदि तुम्हारी ऑखे थोडी भी टेढी हो तो सारा संसार शत्रु हो जाता है । टुकियक—थोडा-सा । महर—दया ।

३—सबरी—शबरी, भीलनी । हर—भगवान । पुरातन—पुरानी । फळ पाया—(जूठे) फल खाये । रुघनाथ—श्रीराम ।

५—सरवणा—कान । जाका—उसके । वैण—वचन ।

६—खोजी—खोजनेपर । छानी—छिपी ।

७—पियाजी—प्रियतम, परमात्मा । पोत—माला ।

८—दिखणी चीर—दक्षिणका बहुमूल्य वस्त्र ।

९—लूण-अलूणो—नमक हो चाहे न हो ।

छैल विराणो लाखको, अपणै काज न होइ।
ताके सग सिधारताँ भला न कहसी कोइ ॥१०॥
देख विराणै निवाळकूँ क्यूँ उपजावै खीज।
कालर अपणो ही भलो, जामे निपजै चीज ॥११॥
भगति-भाव भादू नदी सभी उठी घहराय।
सळता सोई जाणियै, जेठ मास ठहराय ॥१२॥
वादळ-वादळ वीजळी, अैसे घट-घट राम।
मूरख मरम न जाणियो, पायो नाम न ठाम ॥१३॥
लाल-लाल सब ही कहै, सबकै पल्लै लाल।
गाँठ खोल परखै नही, ज्याँसूँ फिरै कँगाल ॥१४॥
कसतूरी कुडळ वसै, मृग ढूँढै वन माँय।
अैसे घट-घट राम है, दुनिया देखै नाँय ॥१५॥
सो साँई तनमे वसै, ज्यो फूलनमे वास।
कसतूरीकै मिरग ज्यो, फिर-फिर सूँघै घास ॥१६॥
दिल माँही दीदार है, दूर गयाँ कछु नाँय।
परसा, भरम न भूलियै, पति पोढचा पुर माँय ॥१७॥

१०—विराणो—परायो। सिधारताँ—जानेसे।

११—निवॉळ—ऊपजाऊ जमीन। क्यों इ०—क्यो खिजाता है? कालर—जो उपजाऊ न हो अैसी जमीन। निपज—पैदा होती है।

१२—भादू-नदी—भादोकी नदी, अैसी नदी जो बर्षामे उमड़ पड़े, पर बादमे सूख जाय। सळता—नदी।

१५—कुण्डळ—नाभिमे।

१७—दीदार—दर्शन। पति—परमात्मा रूपी प्रियतम। पोढ्या—सोये हैं।

दूर कह्यॉसूँ दूर है, नेडा तिणसूँ नॉय ।
नेड़ा तिणसूँ, परसरा, जो खोजै दिल मॉय ॥१८॥
ना घर भला, न वन भला, जहॉं नही निज नाम ।
दादू, उनमन मन रहै, भला त सोई ठाम ॥१९॥
भँवरा लुबधी वासका, मोहै नाद कुरग ।
दादूका मन रामसूँ, दीपक-जोत पतग ॥२०॥
श्रवणा राच्या नादसूँ, नैणा राच्या रूप ।
जिभ्या राची स्वादसूँ, दादू अेक अनूप ॥२१॥
सुन्न सरोवर, हँस मन, मोती आप अनत ।
दादू, चुग-चुग चॉचभर, यूँ जन जीवै संत ॥२२॥

७—ईश्वर-विरह

मन चित चात्रॅग ज्यूँ रटै, पिव-पिव लागी प्यास ।
दादू, दरसण कारणै पुरवौ मेरी आस ॥ १ ॥
विरहिण कुरळै कुज ज्यूँ, निस-दिन तडफत जाय ।
राम सनेही कारणे, रोवत रैण विहाय ॥ २ ॥

१८—नेड़ा—निकट ।
१९—निज—अर्थात् परमात्माका । उनमन—परमात्माके विरहमे व्याकुल ।
२०—लुबधी—लोभी । वास—सुगन्ध ।
२१—श्रवणा—कान । राच्या—अनुरक्त हुअे । जिभ्या—जीभ ।
२२—आप अनन्त—स्वयं परमात्मा । चॉच—चोच ।

७—ईश्वर-विरह

१—चात्रॅग—चातक । कारणे—लिअे । पुरवौ—पूरी करो ।
२—कुरळै—करुण शब्द करती है । कुंज—क्रौच । रैण—रात । विहाय—बीतती है ।

दादू, इण ससारमे मुझ-सा दुखी न कोय ।
पीव मिलणकै कारणै मैं सर भरिया रोय ॥ ३ ॥
विरही जन जीवै नही, कोट कहै समझाय ।
दादू, गहला हो रहै, तडफ-तडफ मर जाय ॥ ४ ॥
देख्याँका अचरज नही, अणदेख्याँका होय ।
देख्याँ ऊपर दिल नही, अणदेख्याँकूँ रोय ॥ ५ ॥
सबद तुमारा ऊजळा, चिडिया क्यो कारी ? ।
तुँही-तुँही निस दिन करूँ, विरहाकी मारी ॥ ६ ॥९०॥

८—परमात्माका भरोसा

दिया सिराणै ठीकरा, रह्या नचीता सोय ।
धीरम, आसा अलखकी, ताकी होड न होय ॥ १ ॥
सुख मानै तो सुक्ख है, दुख मानै तो दुक्ख ।
सच्चा सुखिया सोय है, दुख मानै ना सुक्ख ॥ २ ॥
रिजक न पल्लै बाँधता, पछी ओ दरवेस ।
जिनका तकिया रब्ब है, तिनकै रिजक हमेस ॥ ३ ॥

४—कोट—करोडो । गहला—पागल ।

५—अणदेख्याँका—नही देखे हुओ का ।

६—ऊजळा—उजला । तु ही-तुँ ही—(१) तूही है तूही है (२) लैलड़ी नामक चिड़ियाकी बोली ।

८—परमात्माका भरोसा

१—सिराणै—सरहाने । नचीता—निश्चित होकर । धीरम—कविका नाम । अलख—परमात्मा । होड—होड, बराबरी ।

३—रिजक—निर्वाहके साधन, धन-दौलत । दरवेस—फकीर, साधु । तकिया—सहारा । रब्ब—परमात्मा ।

सॉसा मत कर मूरखा सिरपर है सॉई ।
जो कुछ लिख्या लिलाटमे भेजेगा यॉई ॥ ४ ॥
सॉसा मत कर, मूरखा सिरपर है किरतार ।
वोही सारे जगतका सॉसा मेटणहार ॥ ५ ॥
जण-जणरो मुख जोय जाचक भटकै जगतमे ।
सबरो दाता सोय उणसूँ ही पूरा पडै ॥ ६ ॥
कीड़ीनै कणको, मण को भोजन मैंगळॉ ।
करता जण-जणको भेजै जुगमैं भैरिया ! ॥ ७ ॥
खग इण साकरखोरके सग न साकर गूण ।
सब दिन पूरै सॉंइया चॉच दयी सो चूण ॥ ८ ॥
कोण किसीको देत है, देत करम झकझोर ।
उळझै-सुळझै आपही धजा पवनकै जोर ॥ ९ ॥९९॥

९—साधु

साधू सत कर बैठ ज्या', साधू वो ही ठीक ।
वाको साधू मत कहो, घर-घर मॉगै भीख ॥ १ ॥

४—सॉसा—सोच-फिक्र । मूरखा—हे मूर्ख । यॉही—यही ।

६—सोय—वही परमात्मा । उणसूँ ही—उसीसे ।

७—कीडीनै—चीटीके लिऐ । मण को—ऐक मनभर । मैंगळॉ—हाथियोके लिऐ । करता इ०—जन-जनका कर्त्ता अर्थात् परमेश्वर । जुग—जग ।

८—खग इ०—इस शक्करखोरे पक्षीके साथ शक्करका बर्त्तन कभी नही रहता, फिर भी परमात्मा सदा उसे शक्कर खानेको देता है । जो चोंच देता है सो चून भी देता है, जिसने मुँह दिया है वह खानेको भी देगा ।

९—धजा—ध्वजा, झंडी । करम—कर्म ।

९—साधु

१—बैठ ज्या'—बैठ जाता है ।

माया देख्याँ मन खुसी, मुळक पसारै हाथ।
हरीदास, तूँ मत करचे, वाँ चोराँको साथ ॥ २ ॥
लाँबा तिलक लगाय, फटक धजा उडती फिरै।
खोटो दाणो खाय, कीया तिरसी, केलिया ॥ ३ ॥
साधू वही सराहिये, दुखै दुखावै नाँय।
फल-फूलन छेडै नही रहै वगीचै माँय ॥ ४ ॥
वहता पाणी निरमळा, बँध्या गँदेळा होय।
साधू जन रमता भला, दाग न लागै कोय ॥ ५ ॥
साँईसूँ साँचा रहो, बदाँसूँ सतभाव।
भावै लाँबा केस रख, भाँवै घोट मुँडाव ॥ ६ ॥
साधू माई-बाप है साधू भाई-बन्द।
साध मिलावै रामकूँ, काटै जमका फन्द ॥ ७ ॥१०॥

१०—भगवानकी महिमा

धरती सब कागद करूँ, कलम करूँ वणराय।
सात समँद स्याही करूँ, हरि-गुण लिख्या न जाय॥ १ ॥
वीज भळाहळ, जळ प्रघळ, नदियाँ खळकै नीर।
रीता सरवर कुण भरै राज विना, रघुवीर ॥ २ ॥१०८॥

२—खुसी—प्रसन्न। मुळक—मुसकुराकर। तू मत इ०—ऐसे लोग साधु नही, चोर हैं, उन चोरोका साथ तू कभी मत करना।

५—गँदेळा—मैला, गँदला। रमता—घूमते ही।

६—बदा—मनुष्य। भावै—चाहे।

१०—भगवान की महिमा

१—वणराय—वन-राशि, जगल। समँद—समुद्र।

२—वीज इ०—बिजली खूब चमक रही है। प्रघळ—खूब। राज—आप।

११—करुण-रस

टोळीसूँ टळतॉह हिरणा मनमाठा हुवा ।
व्हाल्हा वीछडतॉह जीवै किण विध, जेठवा ! ॥ १ ॥

आसी सावण मास, वरखा रुत आसी वळै ।
साईनॉरो साथ वलै न आसी, वीझरा ! ॥ २ ॥

त्हारा बोल-तणाह भणकारा आवै मनै ।
उपजै घाट घणाह फेर न देखूँ, फारबस ! ॥ ३ ॥

लाख लडाया लाड, सुख सो तो सपना भया ।
झाझा दुखका झाड फळबा लागा, फारबस ! ॥ ४ ॥

कुरजडियाँ कुरळा रही देख विरगा ताल ।
जिणरी जोडी वीछडी जिणरा कोण हवाल ? ॥ ५ ॥११३॥
॥११२८॥

११—करुण-रस

१—अपने टोलेसे बिछुडते ही हरिण मनमें उदास हो उठे । प्यारोके बिछुड़ जानेपर कोई कैसे जीवित रह सकता है ?

२—सावनका महीना लौट आवेगा, वर्षा ऋतु भी लौट आवेगी, परन्तु जिन समवयस्क साथियोके साथ हम बचपने में खेले-कूदे हैं, उनका साथ फिर कभी नही लौटेगा ।

३—हे फारबस ! तेरी बोली अब भी मेरे अतरमे गूँज उठती है, हृदयमे अनेक भाव पैदा होते हैं, परन्तु तुझे फिर नही देखता हूँ (तुम मुझे नहीं दीख पड़ते) ।

४—हे फारबस ! लाखो लाड लडाये थे सो वे सुख तो आज स्वप्न हो गये और गहरे दुःखके झाड फलने लगे हैं ।

५—सरोवरको बिरंगा देख कर क्रौच पक्षी करुण स्वरसे बोल उठे । भला, जिनकी जोड़ी बिछुड़ गयी, उनका क्या हाल होगा ?

(९) प्रकीर्णक

१—वर्षा-संबंधी

परभाते मेह डबरा, दोपारॉह तपंत ।
रात्यूँ तारा निरमळा, चेला ! करो गछत ॥ १ ॥
परभाते मेह डबरा, साँझे सीला वाव ।
डक कहै, सुण भड्डळी ! काळॉ-तणा सभाव ॥ २ ॥
दिन-ऊगॉ गह डबरा, आथण झीणी वाळ ।
सहदे कहै रे भिडला ! अै अहनाणॉ काळ ॥ ३ ॥
दिन-ऊगॉरी चीतरी, सिभ्यारा गडमेळ ।
रात्यूँ तारा निरमळा, अै काळॉरा खेल ॥ ४ ॥
ऊगतैरो माछळो, आथमतैरो भोग ।
डक कहै, सुण भड्डळी ! नदियॉ चढसी गोग ॥ ५ ॥

१—वर्षा-सम्बन्धी

१—सबेरे मेहका आडम्बर हो, दुपहरको गर्मी पडे और रातमे तारे निकल आवे तो, हे शिष्य ! यहॉ से चले चलो (क्योकि अकाल पडेगा) ।

२—सबेरे मेहका आडम्बर हो और सध्याको ठण्ढी चले तो डंक कहता है कि हे भड्डली, ये अकालके लक्षण है ।

३—सबेरे मेहका आडम्बर हो और संध्याको बादल कम हो जायॅ तो ये अकाल के लक्षण हैं ।

४—सबेरे छितराये हुअे बादल हो और संध्याको गहरी घटा हो और रातको आकाश साफ होकर तारे निकल आवें—ये अकालके खेल है ।

५—यदि सबेरे इन्द्रधनुष और सूर्यास्त के समय लाल किरणे दिखाई दे तो नदियो मे अवश्य बाढ आवेगी ।

कळसै पाणो गरम है, चिडियाँ न्हावे धूर ।
ले अंडा चीटी चढै, तो वरखा भरपूर ।। ६ ।।
धुर असाढ, पडवा दिवस, जे अबर गरजत ।
छत्री-छत्री जूझवै, निहचै काळ पडत ।। ७ ।।
आसाढाँरी सूद नम, घण वादळ, घण वीज ।
नाळा - कोठा खोल दो, राखो हळ नै बीज ।। ८ ।।
सावण पहले पाखमे जे तिथ ऊणी काय ।
कइयक-कइयक देसमे टाबर वेचै माय ।। ९ ।।
सावण पहली पचमी, मेह न मॉडै आळ ।
पीव ! पधारो माळवै, हूँ जाऊँ मोसाळ ।।१०।।
सावण पहली पचमी, ना वादळ ना वीज ।
हल फाडो ईंधण करो, ऊभा चाबो बीज ।।११।।
कातक सुद अेकादसी, वादळ - विजळी होय ।
तो असाढमे, भड्डुळी ! वरखा चोखी जोय ।।१२।।

६—कलसेमे पानी गर्म हो, चिडियाँ धूलमे नहावे और चीटियाँ अडे लेकर ऊपर चढे तो (जान लो कि) भरपूर बर्षा होगी ।

७—आसाढ कृष्णा प्रतिपदाको आकाशमे बादल गरजे तो क्षत्रियोमे युद्ध होता है और निश्चय ही अकाल पडता है ।

८—आसाढ़ सुदि नवमीको खूब बादल और खूब बिजली हो तो नाले-कोठे खोल दो और हल तथा बीज पासमे रखो (वर्षा होगी) ।

९—सावण वदीमे यदि कोई तिथि घट जाय तो किसी-किसी देशमे ऐसा भारी अकाल पड़ता है कि माताएँ बालको तकको बेचने लगती हैं ।

१०—सावन कृष्ण पचमीको मेह न घिरे तो हे पति ! तुम मालवे जाओ और मै पीहर जाती हूँ (अकाल पडेगा) ।

मिगसर वद आठम घटा वीज समेती जोय ।
तो सावण वरसै भलो, साख सवाई होय ॥१३॥

पोस अँधेरी सत्तमी जो पाणी नहि देय ।
तो अदरा वरसै सही, जळ-थळ अेक करेय ॥१४॥

पोस मास दसमी दिवस वादळ चमकै वीज ।
तो वरसै भर भादवो, साधाँ ! खेलो तीज ॥१५॥

माघ सुदी पूनम दिवस चाँद निरमळो जोय ।
पसु वेचो, कण सग्रहो, काळ हळाहळ होय ॥१६॥

होळी सुक्क-सनीचरी, मगळवारी होय ।
चाक चहोडै मेदनी, विरळा जीवै कोय ॥१७॥

जेठ वदी दसमी दिवस जो सनिवासर होय ।
पाणी होय न धरण पर, विरळा जीवै कोय ॥१८॥

आखा रोहण वायरी, राखी स्रवण न होय ।
पोही मूळ न होय, तो महि डोलती जोय ॥१९॥

मूळ गळचो, रोहण गळी, अद्रा वाजी वाय ।
हाळी ! वेचो वळदिया, खेती लाभ नसाय ॥२०॥

१३—समेती—सहित । साख—फसल ।

१४—अँधेरी—कृष्णपक्षकी । आदरा—आर्द्रा नक्षत्रके समय (आषाढमे)

१५—खेलो तीज—आनंद मनावो ।

१६—कण—नाज । सग्रहो—जमा करो । हळाहळ काळ—भयकर अकाल ।

१७—चाक इ०—पृथ्वीकी हालत भयकर होगी ।

१९—आखातीजको रोहिणी नक्षत्र न हो, राखी पूनम (रक्षाबंधन) को श्रवण नक्षत्र न हो और पौषकी पूर्णिमाको मूल नक्षत्र न हो तो पृथ्वीके लोगोको भटकते देख लो (अकाल पड़ता है) ।

२०—मूल नक्षत्रमे पानी बरसे और रोहिणीमे पानी बरसे तथा आर्द्रा नक्षत्रमे हवा चले तो हे किसान ! बैल बेच दो, खेतीमे लाभ नही होगा ।

दो असाढ, दो भादवा, दो असोजके मॉय ।
सोना-चॉदी वेचकै, नाज विसावो, साय ! ॥२१॥
सुक्करवारी वादली, रहै सनीचर छाय ।
डंक कहै, सुण भड्डळी, विन वरस्यॉ नहि जाय ॥२२॥
जाडैमे सूतो भलो, बैठो वरखा काल ।
गरमीमे ऊभो भलो, चोखो करै सुकाळ ॥२३॥
मीन सनीचर, करक गुरु, जो तुळ मगळ होय ।
गेहूँ—गोरस—गोरडी, विरळा विळसै कोय ॥२४॥
मगळ-रथ आगे हुवै, लारे हुवै ज भाण ।
आरभ्या यूँही रहै, ठाली रहै निवाण ॥२५॥

२१—जिस बरस दो आषाढ़ या दो भाद्रपद या दो आसोज हो, उस बरस अकाल पडेगा और अन्न सोने-चादीसे भी महॅगा हो जायगा, इसलिऐ हे महाजनो ! सोना-चादी छोडकर अनाज इकट्ठा करो ।

२२—शुक्रका (बरसा) बादल शनिवार तक रहे तो वह बिना बरसे नही जाता ।

२३—द्वितीयाका चद्रमा जाडेमे सोया अच्छा, वर्षामे बैठा अच्छा और गर्मीमे खडा अच्छा, इससे सुकाल होता है ।

२४—यदि शनि मीन राशिमे, गुरु कर्कमे और मंगल तुलामे हो तो कोई बिरला आदमीही गेहूँ, दूध-दही और प्रियतमाका आनंद उठाता है (वर्षा न होनेसे गेहूँ नही पैदा होगा, न दूध-दही मिलेगा) ।

२५—मगलका रथ आगे हो और सूर्य (का रथ) पीछे हो अर्थात् मंगल सूर्यसे आगेवाली राशिमे हो तो आरंभ किये काम पूरे नहीं होते और जलाशय खाली रह जाते है (वर्षा नही होती) ।

मिरगा वाव न वाजिया, रोहण तपी न जेठ ।
क्यॉनै बॉधो झूॅपडा, बैठो वडला हेठ ॥२६॥
जेठ, दीत, भादूँ सनी, माह ज मगळ होय ।
परजा भटकै अन विना, विरला जीवै कोय ॥२७॥
रात्यूॅ बोलै कागला, दिनमे बोलै स्याळ ।
कै नगरी राजा मरै, (कै) पडै अचूको काळ ॥२८॥

२—कूट व पहेलियाँ

(१)

दधसुत कामण कर लिये करण हस-प्रतिपाळ ।
वीच चकोरन चुग लिये, कारण कोण, जमाल ? ॥ १ ॥
अरुणी राची करन पै, ताकी झिलकत कोर ।
पावकके भोरे भये, ताते चुगत चकोर ॥ २ ॥

२६—मृगशिर नक्षत्रमे (सूर्यके होते समय) हवा नही चली और जेठमे रोहिणी नक्षत्रमे (सूर्यके रहते समय) गर्मी नही पडी तो फिर क्यो झोपड़ियॉ बनाते हो, बड़के नीचे ही बैठे रहो (वर्षा नही होगी) ।

२७—जेठमे पॉच इतवार, भादोमे पॉच शनि और माघमे पॉच मगल हो तो प्रजा बिना अन्नके भटकती है और कोई बिरले ही जीते है ।

२८—रातमे कौवे बोले और दिनमे सियार बोलें तो या तो नगरीका राजा मरता है या अवश्य ही अकाल पड़ता है ।

२—कूट व पहेलियाँ

१—दधसुत—मोती । कामिनीने हंसोको चुगानेके लिऐ मोती हाथमे लिऐ पर हॅस उड़कर पास नही आते हैं और चकोर उन्हे चुग लेते हैं । हे जमाल, इसका क्या कारण है ?

२—अरुणी इ०—हाथोमे महॅदी लगी हुई थी, उसका प्रतिबिम्ब मोतियोपर पड़ रहा था इससे अङ्गारोके धोखेमे पड़कर चकोर मोतियोको चुग रहे हैं ।

गोरी दधसुत कर गह्यो, हसनके प्रतिपाळ ।
उडै न हस, चकोर चुगे, कारण कोण जमाल ? ॥ ३ ॥
कामण जावक-रग रच्यो, दमकत मुकता-कोर ।
इम हसा मोती तजे, इम चुग लिये चकोर ॥ ४ ॥
वायस, राह, भुजग, हर, लिखत त्रिया ततकाळ ।
लिख-लिख मेटै सुंदरी, कारण कोण, जमाल ? ॥५॥
माळन वेचत कँवळकँ, वदन छिपावत बाळ ।
लाज न काहूकी करै, कारण कोण, जमाल ? ॥ ६ ॥
सिव-अँग-भूखण कर ग्रहे, वण बैठी यो बाळ ।
पिव कारण विग्रह करै, कारण कोण, जमाल ? ॥ ७ ॥
सजिसोरह,बारहपहिरि, चढी अटा अेक बाळ ।
उतरी कोयल-बोल सुण, कारण कोण, जमाल ? ॥ ८ ॥
उमड घटा घन देखिकै चढी अटा पर बाळ ।
मोतिन लड़ मुखमे लयी, कारण कोण, जमाल ? ॥ ९ ॥
जमला ढूँढण हौ गयी, भूल पडी निसि ताल ।
अेक कँमळ दो पाँखडी, वीचो-वीच, जमाल ? ॥१०॥

४—कामण—कामिनीके हाथ मे महँदी लगी थी जिसका रंग मोतियोंमे प्रतिबिम्बित हो रहा था इसलिअे उन्हे अङ्गार समझकर हसोने छोड़ दिया और चकोरोने चुग लिया ।

५—राह—राहु ।

६—माळन—मालिनी । कँवळकूँ—कमलको । वदन—अपना मुख ।

नोट—मुखचन्द्रके सामने होनेसे कमल मुरझा जाते है इसलिअे बाला अपना मुख छिपाती है ।

८—सोरह—सोलह श्रृंगार । बारह—बारह आभरण ।

९—लड़—लट, लड़ी ।

इत आवत, उत जात है, भगतनके प्रतिपाळ ।
वसी सजवत कदम चढ, कारण कोण, जमाल ? ।।११।।
चद गहण जब होत है, दुनी देत है माल ।
विरहिणि लोग ज देत है, कारण कोण, जमाल ? ।।१२।।
त्रसावत सुन्दर भयी, गयी सरोवर-पाळ ।
सर मूक्यो, आणँद भयो, कारण कोण, जमाल ? ।।१३।।
देख, सखी! अेक आचरज, सरवर पैलै तीर ।
मृग जैसे पाणी पिवै, हाथ न झेलै नीर ।।१४।।
बाळपणै धोळा भया, तरुणपणै भया लाल ।
व्रध्धपणै काळा भया, कारण कोण, जमाल ? ।।१५।।

(२)

विरह वियापी रैण भर, प्रीतम विन तन खीण ।
वीण अलापी देख ससि, किस गुण मेल्ही वीण ? ।।१६।।
वीण अलापी देख ससि रयणी नाद सलीण ।
ससहर-मृग-रथ मोहियो, तिम हँस मेल्ही वीण ? ।।१७।।

१२—गहण—ग्रहण । दुनी—दुनिया ।

१३—त्रसावत—प्यासी ।

१४—पैलै तीर—परले किनारे । झेलै—छूता है ।

१५—धोळा—स्वेत । उत्तर—अफीम ।

१६—विरह इ०—विरहसे आकुल नायिकाने विनोदार्थ वीणा बजाना आरम्भ किया पर चन्द्रमाको देख करके उसे किसलिअे रख दिया ?

१७—वीण इ०—उसका वीणा बजाना सुनकर चन्द्रमाके रथके मृग मुग्ध हो गये और वे चलना भूल गये । यह देखकर नायिकाने हँसकर वीणाको रख दिया ।

सुन्दरि चोरे संग्रही, सब लीधा सिणगार।
नकफूली लीधी नही, कहसखि ! कोण विचार? ॥१८॥
अहर-रग रातो हुवै, मुख-काजळ मसि व्रन्न।
जाण्यो, गुंजाहळ अछै, तेण न ढूक्यो मन्न? ॥१९॥
परदेसाँ प्री आवियो, मोती आण्या जेण।
धण कर-कमळाँ झालिया, हँसकर नाख्या केण? ॥२०॥
कर राता, मोती नमळ, नयणे काजळ-रेह।
धण भूली गुंजाहळे, हँसकर नाख्या तेह ॥२१॥
बहु दिवसे पिव आवियो, सझिया त्री सिणगार।
निजर दिखायी आदरस, किम सिणगार उतार? ॥२२॥
इन्द्राँ-वाहण मासिका, तास-तणै उणिहार।
तस भख हूवो पाहुणो, तिम सिणगार उतार ॥२३॥

१८—सुन्दरि इ०—चोरोने किसी सुन्दरीको पकडकर उसके सब शृंगार छीन लिए, पर नकफूली (नाकका अेक गहना) नहीं ली, इसका क्या कारण ?

१९—अहर इ०—अधरका रंग लाल था, मुखपर लगे हुअे काजलका रग काला था। दोनोका प्रतिबिम्ब नकफूलीके मोतीपर पड़ रहा था, इससे चोरोने उसे गुंजा समझा और छोड़ दिया।

२०—परदेसाँ इ०—परदेशसे प्रियतमा आया जो प्रियतमके लिए मोती लाया। प्रियतमाने उन्हे हाथमे लिया पर हाथमे लेते ही हँसकर फेक दिया। सो क्यो ?

२१—कर इ०—हाथका रंग लाल था, मोती सफेद रगके थे, आँखोंमे काजलकी रेखा थी जिसका रग काला था। सफेद मोतियो पर हाथका लाल और काजलका काला रंग प्रतिबिम्बित हो रहा था जिससे प्रियतमाने उन्हे भूलसे गुंजाफल समझा और फेक दिया।

२३—इन्द्रा इ०—इन्द्रका वाहन हाथी, उसकी नासिका यानी सूँडके आकार वाला अर्थात साँप। तस इ०—पाहुना यानी प्रियतम उसका भक्ष्य बन गया।

वणि आणी रहसी नही, रहसी सुथारी ।
सोनारी जासी परी, (कह) भावज कूँभारी ॥२४॥५२॥

(३)

अजा सहेली ता रिपू ता जननी भरतार ।
ताके सुतके मीतको सिवरूँ वारवार ॥ १ ॥
ससिको सुत घटमे नही मोह-रिपुको नही लेस ।
भवन-जोव-सुतसो हियो, काह करूँ उपदेस ? ॥ २ ॥
सम्मन, वै फळ कूण-सा, जो पाके कडवास ।
काचा लगै सुवावणा, गड्डुर करै मिठास ? ॥ ३ ॥
सिवसुत तो सारँग भयो, तो सुत दीनी पूठ ।
भयँग-डसण-रिपु बोलियो, जद मैं आयी ऊठ ? ॥ ४ ॥

२४—वणिआणी इ०—इस दोहेके वणिआणी, सूथारी, सोनारी और कूँभारी शब्द श्लिष्ट हैं। वणिआणी—(१) बनियाइन (२) भावी बन आयी है। सुथारी—(१) सुथारिन (२) वह तेरी। सोनारी—(१) सुनारिन (२) वह स्त्री यानी सीता। कूँभारी—(१) कुम्हारिन (२) कुंभकर्णकी।

कूँभारी भावज अर्थात् कुंभकर्णकी भाभी मंदोदरी रावणसे कहती है कि अब बणिआणी अर्थात् भावी बन आयी है, वह नारी अर्थात् सीता रहेगी नही, जो कुछ रहेगी वही तेरी है (सू—सो, थारी—तेरी) और सो नारी (सो—वह। नारी—स्त्री) अर्थात् सीता चली जायगी।

१—अजा इ०—बकरीकी सहेली भेड़, उसका शत्रु काँटा, उसकी माता पृथ्वी, उसका पति इंद्र, उसका पुत्र अर्जुन, उसके मित्र श्रीकृष्ण।

२—ससिको सुत—बुध, बुद्धि। मोह-रिपु—ज्ञान। हियो—प्रेम।

३—कूण-सा—कौनसे। पाके इ०—पकनेपर कडवे हो जाते हैं।

उत्तर—मनुष्य।

सारँगनै सारँग गह्यो, सारँग बोल्यो आय ।
जो सारँग सारँग कहै, सारँग मुखसूँ जाय ॥ ५ ॥
लछमीपतरै कर वसै, पाँच अक परवाण ।
पहलो आखर छोडकर दीजै चतर-सुजाण ! ॥ ६ ॥
सिवसुत-माता-नाँवरा आखर च्यार सुवेस ।
मध्य वरण दो छोडकर भेजो, सजन हमेस ॥ ७ ॥
दीपक जळताँ जो पडै, तीन आँक परवाण ।
पहलो आखर छोडकर लाज्यो, चतर सुजाण ! ॥ ८ ॥
वायस-बीजो नाम, ते आगळ लल्लो ठवै ।
जे तू हुवै सुजाँण, तो तू बहिळो मोकळे ॥ ९ ॥
काजळ-वरणो, अे सखी ! मूवो अेक पुरख्ख ।
बाळनवाळा कोइ नही, रोवणवाळा लख्ख ॥१०॥
सख सरोखो ऊजळो, गज-हस्तीरो दंत ।
इणरो अरथ बतायकर, रोटी जीमो, कत ? ११॥

६—लक्ष्मीपति—विष्णु । उत्तर—सुदरशनका पहला अक्षर छोड़ दिया तो दरशन हुआ ।

७—सिव इ०—शिवके पुत्रकी माता पारवती, उसके बीचके दो अक्षर छोड़ देनेसे पाती रहा ।

८—दीपक इ०—दीपक जलते समय काजल बनता है उसका पहला अक्षर छोड़ दिया तो जल रहा ।

९—वायस—वायसका दूसरा नाम काग उसके आगे ळकार लगाया, कागळ हुआ (कागळ = कागद, चिठ्ठी) । वहिळो इ०—जल्दी भेजना ।

१०—काजळ-वरणो—काजलके रंगका, काला । मूवो—मरा । बाळन-वाळा—जलानेवाले । लख्ख—लाखों । उत्तर—कौवा ।

सीस जटा, पोथी गहै, सेत वसन गळ माँय ।
जोगी-जगम है नही, बामण-पंडत नॉय ॥१२॥
फूल खिले अबर थकी, फळ लागै महराण ।
जलमै माय मुवॉ पछी, सो तू हमको आण ॥१३॥
जळ जायो, थळ ऊपनो, विन डॉडी कण होय ।
गाथा राजा भोजकी विरळो वूझै कोय ॥१४॥
जनमी छी जद तीस गज, भर ज्वानीमे च्यार ।
मरती विरियॉ साठ गज, पडत ! करो विचार ॥१५॥
बाळपणै बुगलो हुवो, भर जोबन सूवो ।
इणरो अरथ बताय अब! किण विध काग हुवो ॥१६॥
गहरो फूल गुलाबरो झुक-झुक झोला खाय ।
नहि माळीकै नीपजै, नहि राजाकै जाय ॥१७॥
ना है खाट-खटोलडी, ना है जीया-जूण ।
राजा ! थारे देसमे च्यार पावरो कूण ? ॥१८॥
आकासॉमे उड रही, झुक-झुक झोला खाय ।
हाड हुवै, पण मॉस नहि, पडित ! अरथ बताय ॥१९॥

१२—उत्तर—लहसुन ।

१३—अबर थकी—आकाशमे । महराण—समुद्रमे । जलमै इ०—माके मरनेपर जनमता है । आण—ला दे । उत्तर—मोती ।

१५—उत्तर—छाया (प्रातः, दुपहर और संध्या समय) ।

१६—सूवो—सुग्गा । उत्तर—अफीम ।

१७—उत्तर—सूरज ।

१८—उत्तर—सेर (तोल विशेष) ।

१९—उत्तर—पतग ।

आठ पहर जळमे रहै, वसै नगरकै माँय ।
मच्छ, कच्छ, दादरनही, इणरो अरथ वताय ।।२०।।
च्यार खुणाँरी वावडी, पडी बजाराँ माँय ।
हाथी-घोडा डूबग्या, पिणघट खाली जाय ।।२१।।
रूँख वसै पछी नही, दूध देय नहि गाय ।
तीन नैण सकर नही, साजन ! अरथ बताय ।।२२।।
प्याला भरिया दूधका, ऊँधाँ लीयाँ जात ।
टपको अेक पडै नही, आ अचरजरी बात ।।२३।।
पडी पण भागी नही, भाग हुया हे च्यार ।
विन पाँखाँके उड गयी, सुरता करो विचार ।।२४।।
अेक अचूँबो देखियो, सिर पर निकळ्या दाँत ।
साजन ! अरथ वताय दे, सब जग वाको खात ।।२५।।
केसर भरियो वाटको, पड्यो महलकै हेठ ।
लाती तो लाजाँ मरूँ, देखै देवर-जेठ ।।२६।।
बाये कँवळे वा खडी, सुन्दर किय सिणगार ।
झब-झब झोला खा रही, याको अरथ विचार ।।२७।।

२०—उत्तर—जल-घडी ।
२१—खुणाँरी—कोनोंकी । पिणघठ—पनिहारी । उत्तर—शीशा (दर्पण) ।
२२—उत्तर—नारियल ।
२३—ऊंधा—उलटे । लीयाँ जात—लिये हुअे जाती है । उत्तर—स्तन ।
२४—भागी—टूटी । उत्तर—रात ।
२५—अचूँबो—अचभा । उत्तर—अनार ।
२६—वाटको—प्याला । उत्तर—केशरिया रँगकी पगड़ी ।
२७—कँवळे—ओर । झोला—झोके । उत्तर—नथ ।

हाळ घरे, हळ डूँगराँ, वळद गऊरै पेट ।
हाळी हीडै पालणै, भाती पूँचो खेत ॥२८॥
घर घोडी पिव माळवै, जोण समदाँ पार ।
चाँदा चाबक ले रह्या, सुरता करो विचार ॥२९॥
नौ गोदी, नौ आँगळी, नौ नानेरै जाय ।
मतो करूँ तो और जिणूँ काळ पड्याँ के खाय ॥३०॥
पाँच जणा, सो आँगळी, सीस पाँच, जी चार ।
चातर चाल्यो चाकरी, सुरता करो विचार ॥३१॥
पान सडै, घोडो अडै, विद्या वीसर जाय ।
रोटी जळै अँगारमे, को चेला ! किण दाय ? ॥३२॥
चरखलियो चूँ-चूँ करै, भूण मचडका खाय ।
गाडो अड्यो उजाडमे, कहो चेला ! किण दाय? ॥३३॥

३०—नौ बच्चे गोदमे है, नौ अँगुली पकडे (चल रहे) हैं, और नौ ननिहाल जा रहे हैं । इच्छा करूँ तो और उत्पन्न कर सकती हूँ, पर अकाल पडजाय तो क्या खायँगे ? उत्तर—काचरकी बेल ।

३१—पाँच आदमी हैं. सो अँगुलियाँ है, पाँच सिर है, पर जीव केवल चार हैं । इस प्रकार चतुर अपनी नौकरीपर जा रहा है । ध्यान लगाकर इसको साचो ।

उत्तर—चार आदमियोके कधेपर उठाया हुआ मृतक ।

३२—गुरू पूछता है—हे चेले ! बताओ क्या कारण है कि पान सडता है, घोडा अडता है, विद्या भूल जाती है और अगारोपर रखी रोटी जल जाती है ।

चेला सब प्रश्नोका अेक साथ उत्तर देता है कि गुरूजी ! फेरी कोनी (फिराया नही; पानोको उलटपुलट नही किया, घोडेको फिराया नही, विद्याकी आवृत्ति नही की, बाटी उलटी नही) ।

३३—चर्खा चलते समय चूँ-चूँ आवाज करता है, कुँवेका भूण मचमचा रहा है और गाड़ी उजाड़मे अडी पडी है ।

उत्तर—गुरूजी ! वाँग्यो कार्नी (तेल नहीं दिया) ।

कपडो घड बैठै नही, मूँज मेळ नहि खाय ।
जाट गधो मानै नही, कहो चेला! किण दाय ? ।।३४।।
गाडी पडी गवाडमे, पगाँ उभाणी जाय ।
बेटी बैठी बापकै, कहो चेला! किण दाय ? ।।३५।।८७।।

३—वैद्यक-संबंधी

दाँताँ लूण ज वापरै, भोजन ऊनो खाय ।
डावैं पसवाडै सुवै, जिण घर वैद न जाय ।। १ ।।
हरड, वहेडा, आँवळा, घी-सक्करमे खाय ।
हाथी दाबै खाखमे, साठ कोस ले जाय ।। २ ।।

३४—कपडा फिट नही होता, मूँज मेल नही खाती, और गधा जाट मानता नहीं ।

उत्तर—गुरूजी ! कूट्यो कोनी (कूटा नही) ।

३५—गाडी चौकमे ही पडी है, स्त्री नंगे पैर जाती हैं, और बेटी बापके घर बैठी है ।

उत्तर—गुरूजी ! जोडी कोनी (जोडी नही, जोडी = (१) बैलोकी जोडी, (२) पैरोकी जोड़ी यानी जूतियाँ और (३) कन्याकी जोड़ी यानी वर) ।

३—वैद्यक-संबंधी

१—जो दाँतोमे नमकका व्यवहार करता है (नमक का मजन करता है), गर्म (ताजा) भोजन खाता है और बाँयी करवट सोता है, उसके घर वैद्य कभी नही जाता (वह सदा नीरोग रहता है) ।

२—जो हरड़ बहेड़ा और आँवला इनको घी और शक्करके साथ खाता है वह इतना शक्तिवाला हो जाता है कि हाथीको बगलमे दबा साठ कोस तक ले जा सकता है ।

धात-वधारण, बळ-करण, जे, पिय ! पूछो मोय ।
दूध समान तिलोकमे और ओखद कोय ॥ ३ ॥६०॥

४—प्रकीर्णक

अहमद, लडका पढणमे, कह, किन झोका खाय ? ।
तन-घटमे विद्या-रतन, भरत हिलाय-हिलाय ॥ १ ॥

जळ पीधो जाडै, पाबासररै पाव्रटे ।
नैनकियै नाडै, जीव न धापै, जेठवा ! ॥ २ ॥

जगतणकूँ भगतण कहै, कहै चोरकूँ साह ।
चाकरकूँ ठाकर कहै, तीनूँ राह कु राह ॥ ३ ॥

साँझ पडी दिन आँथव्यो, चकवी दोनी रोय ।
चल चकवा ! वा देसमे, साँझ कदे नहि होय ॥ ४ ॥

३—हे प्रिय ! यदि धातुओकी वृद्धि करनेवाली और बलदायक औषधि मुझे पूछते हो तो दूधके समान दूसरी औषधि तीनो लोकोमे नहीं है ।

४—प्रकीर्णक

१—अहमद कहता है कि कहो, लड़के पढ़ते समय झोके क्यो खाते है (विद्यार्थी प्रायः सिर हिला-हिलाकर याद करते हैं)। फिर कवि उत्तर देता है कि शरीर-रूपी घडेमे विद्यारूपी रत्न हिला-हिलाकर भर रहे हैं (ताकि जरासी जगह भी खाली न रह जाय ।)

२—मानसरोवरके बडे तालाबमे जल पिया है अतः अब छोटी तलैयासे जी नही भरता ।

३—लोग संसारी स्त्री (वेश्या) को भगतण (भक्तिन, राजस्थानमे वेश्याको भी भगतिन कहते है) कहकर पुकारते है, जो वास्तव मे चोर है अैसे बनियेको शाहजी कहकर पुकारते हैं और गुलामको ठाकुर नामसे सम्बोधित करते है । अैसा करनेवाले तीनो ही कुराह पर जा रहे है ।

४—संध्या पडी, दिन छिप गया । चकवी वियोग-भयसे रो उठी और बोली कि हे चकवे, उस देशमे चलो जहाँ रात कभी नही होती (जीव और भवद्धामकी ओर संकेत) ।

साँझ पडी, दिन आँथव्यो, चकवी भयो वियोग ।
पणियारी यूँ भाखियो, देखो विधना-जोग ॥ ५ ॥
जा पणियारी ! भर घडो, कर न परायी वात ।
जिकण तुमारो दिन हरचो, तिकण हमारी रात ॥ ६ ॥
पणघट जाताँ पण घटै, पणघट वाको नाम ।
कहियो, पण कैसे रहै पणहारणके धाम ! ॥ ७ ॥
पणघट जाताँ पण घटै, पणघट कह सब कोय ।
कहियो, पण कैसे घटै, जब पण घट ही होय ? ॥ ८ ॥
मात-पिता सै वीसरै, बधू वीसारै ।
सूराँ पूराँ वातडी, चारण चीतारै ॥ ९ ॥९९॥
॥१२२७॥

५—६—संध्या पडी, दिन अस्त हो गया और चकवीके वियोग हुआ । उसे देखकर अेक पनिहारिन बोली कि विधाताका योग तो देखो । पनिहारिनका कथन सुनकर चकवीने उत्तर दिया कि हे पनिहारिन ! तू जा, अपना घडा भर मुझपर क्या दया करती है, अपनी ही ओर देख, जिसने तुम्हारा दिन छीन लिया उसीने हमारी भी रात छीन ली है ।

७—पनघटपर जानेसे पन (प्रतिष्ठा) घटता है, उसका नाम ही पनघट है, तब कहो पनहारिनके घर पन कैसे रह सकता है ?

८—पनघटपर जाने से पन घटता है, सब कोई उसे पनघट कहते हैं । पर जब पन पहले ही घटा हुआ है तो पनघटपर जानेसे फिर क्या घटेगा ?

९—माता, पिता आदि सब भूल जाते हैं, बधु भी भूल जाते हैं । पर पूरे शूरवीरो की कथाओंको चारण (कविजन) सदा स्मरण कराते है ।

टिप्पणी

(१) विनय

१—भगवानकी स्तुति

१—सिल ऊधरती सारि—अहल्या गौतम ऋषिकी स्त्री थी। ऋषिके शापसे वह शिला हो गई थी। रामचन्द्रजीने अपनी चरण-धूलिका स्पर्श कराकर उसका उद्धार किया था। कथाके लिये तुलसीकृत रामायण का बालकांड (दोहा २४२) देखो।

नाठो झीवर इ०—पिताकी आज्ञासे वनमें जाते हुए श्रीराम गंगाके किनारे पहुँचे तो उन्होंने गंगा पार करनेके लिये धीवरसे नाव लानेको कहा; पर वह बोला कि महाराज आपके चरणोंका स्पर्श करके पत्थर तक तरकर आदमी बन जाते हैं, तो बेचारी लकड़ीकी नाव क्या चीज है और यदि वह तर गई तो फिर मैं अपना पेट क्योंकर पालूँगा। इस प्रसंग-का बड़ा ही सुन्दर वर्णन तुलसीदासजीने रामायण, कवितावली आदि में किया है।

३—गरुड़—ये कश्यप और विनताके पुत्र तथा विष्णुके वाहन कहे गये हैं। इनकी गति बहुत तेज है। सूर्यका सारथी अरुण इनका छोटा भाई है।

वारण—ग्राहसे ग्रसित गजेंद्रकी रक्षाकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। भगवान गजेंद्रको बचानेके लिये चले, तो उन्हें गरुड़की चाल भी धीमी जान पड़ी और उसे छोड़कर पैदल ही दौड़ पड़े।

४—आधख—अध्यक्षता, प्रभुता।

५—त्हारी—आधुनिक रूप थारी = तेरी।

२—गंगाजीकी स्तुति

४—क्रम—सं०, कर्म राजस्थानीमें अक्षरके ऊपरका रेफ प्रायः पूर्व अक्षर के नीचे चला जाता है। अन्य उदाहरण, जैसे—ध्रम (धर्म) व्रन (वर्ण) क्रन (कर्ण) द्रप (दर्प) आदि। ऐसा होनेपर रेफके आगेवाला

अक्षर विकल्पसे द्वित्त भी हो जाता है, जैसे—ध्रम्म, क्रम्म, द्रप्प, ब्रन्न आदि ।

८—नारायण-पग-नीर इ०—गंगाजी भगवानके चरणोंसे उत्पन्न हुई हैं। जब भगवानने विराट रूप धारण किया था, उस समय ब्रह्माजीने उनके चरणोंको पखारकर जलको अपने कमंडलुमें भर लिया था और फिर भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न होकर गगाको पृथ्वीपर भेजा ।

३—करणीजीकी स्तुति

करणी—ये चारणी थी। इनका जन्म जोधपुर राज्यके सुयाप गॉवमें सवत् १३८७ वि० में और देहान्त १५१ वर्षकी अवस्थामे स० १५३८ में (अन्य मतानुसार १५९५ चैत्र शुक्ल ९, गुरुवारको*) हुआ था। ये देवीका अवतार मानी जाती हैं और देवीके रूपमें पूजी जाती हैं। इनका मदिर बीकानेर राज्यमें देशणोक नामक स्थानमें है। बीकानेरके संस्थापक राव बीकाजीकी इन्होंने बड़ी सहायता की थी। करणीजीके अन्य नाम—करणी, करनळ, किमियॉणी, महियासधू, आई, धाबळियाळी, देशणोकपत, लोवड़ियाळ आदि हैं।

१—वराह इ०—पुराणोके अनुसार भगवान कच्छप-रूपसे समस्त ब्रह्मांडको धारण किये हुअे हैं, कच्छपके ऊपर वराह है और वराहके ऊपर शेषनाग तथा शेषनागके ऊपर पृथ्वी है।

---

(२) नीति

१—मनस्वी पुरुष

४—कंथा करक न छॉड़िये इ०—मिलाओ, सामान्य नीतिमें २२ और २३ नंबरके दूहे।

---

*यथा—पनरंसे पिच्याणव चैत सकल गुर नम्म ।
देवी सागण देहसूँ पूगा जोत परम्म ॥

८—सींहॉं केहा सथ्थ इ०—मिलाओ,—

सिहनके लहॅंडे नही, हंसनकी नहि पॉंत।
लालनकी नहि बोरियॉं, साधु न चलै जमात॥

२—महापुरुष

१—वडा वडाई ना करै इ०—मिलाओ,—

Saith a false diamond, 'what a jem am I!'
I doubt its value from its boastful cry.

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

३—सज्जन

२—तरवर कदे न फळ भखै इ०—मिलाओ,—

पिबति नद्यः स्वयमेव नाभः स्वयं न खादंति फलानि वृक्षाः।
नादंति सस्य खलु वारिवाहाः परोपकाराय सता विभूतयः॥१॥
छायावतो गतव्यालाः स्वारोहाः फलदायिन।
मार्गद्रुमा महातरश् च परेषामेव भूतये॥२॥

३—तखत विराज्या जानरा इ०—मिलाओ,—

गुरु गोविद दोनूॅं खडे, काके लागूॅं पॉंय।
बलिहारी गुरु आपणै, गोविद दियो बताय॥

—कबीर

४—सच्चा मित्र

१—हर अरजनरै हेत इ०—महाभारतके युद्धमें भगवान श्रीकृष्णने अर्जुनके सारथीका काम किया था।

६—सत्संगति

२—मळयागर मंझार इ०—मिलाओ,—

कि तेन हेम-गिरिणा रजताद्रिणा वा।
यत्राश्रिताश् च तरवस् तरवस् त एव॥

मन्यामहे मलयमेव यदाऽऽश्रयेण ।
कंकोल्ल-निम्ब-कुटजान्यपि चंदनानि ॥

—नीतिशतक

१०—कुमित्र

१—मूरख मित्र न कीजिये इ०—मूर्ख मित्रसे बुद्धिमान शत्रु अच्छा। इसपर अेक कथा है कि, अेक राजाके पास अेक बंदर था जो बड़ी भक्तिके साथ राजाकी सेवा करता था। अेक दिन राजा सो रहा था और बंदर पंखा लेकर हवा कर रहा था। थोड़ी देरमें अेक मक्खी आकर राजाके वक्षस्थल पर बैठ गई। बंदर के उड़ानेपर वह उड़ गई पर तुरन्त ही फिर आकर बैठ गई। बंदर बारबार उड़ानेका प्रयत्न करता और मक्खी उड़-उड़कर फिर बैठ जाती। तब मूर्ख बंदरने क्रोधमें भरकर पास पड़े हुअे खड्गको उठा लिया और मक्खीको मारनेके लिअे राजाकी छातीपर दे मारा। मक्खी तो तुरन्त उड़ गई पर राजाके दो टुकड़े हो गये।

पंचतंत्रमें इसी भावका यह श्लोक है—

पंडितोऽपि वर शत्रुर्, न मूर्खो हितकारकः।
वानरेण हतो राजा, विप्राश् चौरेण रक्षिताः॥

१२—अविवेकी पुरुष

२—मच्छ गळागळ—मात्स्य न्याय। इसकी परिभाषा संस्कृत ग्रंथोंमें इस प्रकार लिखी है—

१. प्रबल-निर्बल-विरोधे सबलेन निर्बल-बाध-विवक्षाया तु मात्स्यन्यायावतारः। यथा प्रबला मत्स्या निर्बलास्तान् नाशयंति तथाऽराजकेऽमुकप्रदेशे प्रबला जना निर्बलान् नरान् नाशयंति—इति न्यायार्थः।

—रघुनाथ वर्मा

२. परस्परामिषतया जगतो भिन्नवर्त्मनः।
दंडाभावे परिध्वंसी मात्स्यो न्यायः प्रवर्त्तते ॥

—कामंदकीय

३. अत्र बलवंतो दुर्बलान् हिंस्युरिति मत्स्यन्यायः अेवं स्याद्—इत्युक्तम्।

——कूल्लूक-कृत मनुस्मृति-टीका

१३—मूर्ख

७—सुसै सिघ इ०—इसपर अेक कहानी है कि अेक सिंह किसी वनमें बहुत-से पशुओंको मारा करता था। तब सब पशुओंने मिलकर उससे कहा कि आप हम सबका संहार न करें, हम आपके भोजनके लिअे एक पशु प्रतिदिन भेज दिया करेंगे। सिंहने इस शर्त्तको स्वीकार कर लिया और प्रतिदिन अेक पशु उसके पास आने लगा। अैसा होते-होते किसी दिन अेक खरगोशकी बारी आई। सिंहसे सब पशुओका पिंड किस प्रकार छूटे यह सोचता हुआ वह सिंहके भोजनके समयको टालकर संध्या समय सिंहके पास पहुँचा। उसका छोटा शरीर, और फिर उसे देरसे आया देखकर सिंह बड़ा क्रुद्ध हुआ। खरगोशने नम्रताके साथ कहा कि महाराज, मेरा छोटा शरीर देखकर पशुओंने मेरे साथ चार और खरगोश भेजे थे पर मार्गमें हमें एक दूसरा सिंह मिला, जिसने हम सबको रोक लिया और हमसे पूछा कि तुम कहाँ जाते हो? मैंने सब हाल सुनाया तो वह क्रोधमें भरकर बोला कि वनका राजा तो मैं हूँ, सब पशुओंको मेरे पास बारी-बारीसे अेक पशु भेजना चाहिअे, यदि तुम्हारा सिंह वनका राजा बनना चाहे तो वह आकर मुझसे युद्ध कर ले। यह कहकर उसने उन चार खरगोशोंको रख लिया और मुझे आपके पास भेजा है।

खरगोशकी बातें सुनकर सिंह क्रोधमें भरकर बोला कि चल, बता, वह सिंह कहाँ है? पहले उसको मारकर फिर तुझे खाऊँगा। तब खरगोश

सिंहको अेक कुअे के पास ले गया और उसके भीतर देखकर कहने लगा कि महाराज, वह दूसरा सिह तो आपके डरके मारे इस कुअे में छिप गया है। सिहने कुअेके भीतर देखा तो उसे अपनी परछाईं दिखाई दी। उसे ही दूसरा सिह समझकर वह कुअेमें कूद पड़ा और डूबकर मर गया। इस प्रकार खरगोशने अपनी बुद्धिसे दुष्ट सिहको मारकर सबके प्राण बचाये।

१५—*कजूस*

१—बावन अक्खर—वर्णमालामें ५२ अक्षर होते हैं अतः सारे वर्णोंमें। यह कंजूसकी उक्ति है।

२०—*प्रारब्ध*

२—वेह—यह शब्द 'विधि' से बना है और इसका अर्थ विधाता है। विधाता स्त्री मानी जाती है और उसे वेह-माता भी कहते हैं।

२७—*अन्योक्तियाँ*

२—माळी ग्रीषम माँय इ०—कविराज बाँकीदासजी राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। वे जोधपुर-महाराज मानसिहजीके यहाँ रहते थे। प्रसिद्धि प्राप्त करनेके पूर्व, अपनी सामान्य स्थितिके समय, वे रायपुरके ठाकुर अर्जुनसिहके आश्रयमें रहते थे। अेक दिन कविराजजी महाराज मानसिहजीके साथ हाथीपर चढ़े जा रहे थे। उस समय उक्त ठाकुरने उनसे पूछा कि क्या आपको उन पुराने गाँवोंकी स्मृति बनी हुई है, जहाँ आप पहले आते-जाते थे। इसपर कविराजजीने यह दूहा कहा।

८—सूवा सेमळ देखकर इ०—सेमलके पेड़में गहरे लाल रंगका फूलोंका गुच्छा आता है और उनमें फलकी जगह डोडी लगती है। गहरे रंगसे लुब्ध होकर सुग्गा आशा लगाये रहता है कि पकनेपर बड़ा मीठा और रसीला फल मिलेगा, पर डोडीके फूटनेपर उसमें रसीले गूदेकी जगह रुई निकलती है। मिलाओ—

सेमर सुवना सेइया, दुयइ ढेंढी की आस।
ढेंढी फूट चटाक दे, सुवना चला निरास॥ —कबीर

२८—सामान्य नीति

२२—कळह करये मत इ०—इस संबन्धमें यह कथा प्रसिद्ध है। मारवाड़के राव चूँडाका मोहिलोंसे वैर था। अपने अंतिम दिनोंमें उसने मोहिलवंशकी अेक राजकुमारी किशोरकँवरीसे विवाह किया। रानीकी नई अवस्थापर मुग्ध होकर रावने राज्यका सारा प्रबंध रानीके हाथमें सौंप दिया। उसने घोड़ोंको जो घी दिया जाता था उसे बंद करवा दिया। यह हाल सुनकर रावजी ने यह दूहा कहा। तब रानीने आगेवाले दूहेसे इसका उत्तर दिया। रावजी चुप हो रहे। घोड़ोंका घी बंद करके रानीने सरदारोंको भोजनके साथ जो घी मिलता था, उसको भी घटाना शुरू किया और अपनी कारगुजारी जतानेको रावजीसे कहा कि जहाँ ३३० मन घी प्रतिदिन उठता था, वहाँ मै केवल १ मन घी खर्च करती हूँ। रावजी ने बाहर आकर देखा तो तबेलेमें घोड़े किसी कामके न रह गये थे और सरदार अपने-अपने घर चले गये थे। तब रावजीने दुखी होकर कहा कि मोहिलाणी, तूने मेरा राज्य खोया और मुझे मारा।

३४—वाँका रहज्यो वालमा इ०—मिलाओ,—

टेढ जानि संका सब काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू॥ —तुलसीदास

सीधे ऊँटपर दो चढै, यह कहावत राजस्थानमें प्रसिद्ध है।

११६—भलि मरवणरी वात इ०—यहाँ ढोला-मारवणीरी वात नामक कथासे अभिप्राय है। पहले ग्वालियरके पास नरवरमें कछवाहे राजपूतों का राज्य था। उनमें संवत् १००० के आस-पास नळ नामक राजा हुआ जिसका पुत्र ढोला उपनाम साल्हकुमार था। इसका विवाह पूगळके पँवार राजा पिंगळकी कन्या मारवणीसे हुआ था। ढोला-मारूकी वातमें इन्हींकी कहानी है। यह कथा राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध थी और है। इसके अनेक दूहे अब भी लोगोंकी जबानपर मिलते हैं। यह कथा इस प्रकार है—

नरवरमें नळ नामका राजा था। उसके ढोला नामका कुँवर था। अेक बार पूगळमें अकाल पड़ा तो पूगळका राजा पिंगळ सपरिवार नळके

यहाँ आकर रहा। पिंगळकी रानीको ढोला बहुत पसंद आया और उसके हठसे राजाने अपनी डेढ़ वर्षकी कन्या मारवणी का विवाह ढोलाके साथ कर दिया। ढोलाकी अवस्था उस समय तीन वर्ष की थी। इसके बाद पिंगळ अपने देशको लौट गया। पूगळ नरवरसे बहुत दूर था और मार्ग खतरनाक था, इसलिअे ढोलेके बड़े होनेपर नळने उसका दूसरा विवाह माळवाकी राजकुमारी माळवणीके साथ कर दिया और ढोलाको पहले विवाहकी बात मालूम नहीं हुई। इधर मारवणी बड़ी हुई तो पिंगळने ढोलाके पास कई समाचार भेजे, पर माळवणीने अेसा प्रबंध कर रखा था कि पूगळकी ओरसे आनेवाला कोई आदमी ढोलेके पास न पहुँचने पावे और ढोलेको मारवणी का हाल न मालूम हो। अंतमें पिंगळने कई ढाढियोंको नरवर भेजा। वे माळवणीके आदमियोंसे छिपकर ढोलाके महलके नीचे जा टिके और रातभर माँड रागके विरहोद्दीपक सुरमें मारवणीके संदेशको गाते रहे। ढोलेने यह सब सुना और उसके मनमें व्याकुलता उत्पन्न हुई। प्रातःकाल उसने ढाढियोंको अपने पास बुलाया और उनसे मारवणीका सब हाल उसे मालूम हुआ।

मारवणीका हाल सुनकर ढोला मारवणीके प्रति आकृष्ट हुआ और उसे लिवा लानेके लिअे पूगळ चलनेका विचार करने लगा। पर माळवणी भी उससे बहुत प्रेम करती थी और उसके विरहको नहीं सह सकती थी। इसलिअे उसने ढोलाको रोकनेके बहुत उपाय किये—और लगभग साल-भर ढोला रुका भी रहा—पर अन्तमें वह अपना तेज ऊँट लेकर चल ही दिया।

मार्गमें अनेक विघ्नोंके उपरांत ढोला पूगळ पहुँचा। वहाँ बड़ा हर्ष हुआ। पन्द्रह दिन वहाँ रहकर वह मारवणीके साथ नरवरको चला। मार्गमें सोती हुई मारवणीको अेक पैणा साँप डस गया। ढोला उसके साथ जलनेको तय्यार हुआ, पर इतनेमें अेक योगी आ निकला और उसने मारवणीको जिला दिया।

ऊमर नामका अेक सरदार था। वह मारवणीको हथियाना चाहता

था। उसने देखा कि ढोला अकेला जा रहा है, तो उसने मारवणीको छीन लेनेका निश्चय किया। फौज लेकर वह भी चल पड़ा। मार्गमें ढोला मिला। ऊमरने बड़ी मनुहारें करके ढोलाको ऊँटसे उतार लिया और सब एक जगहपर बैठकर शराब पीने लगे। ऊमरके साथ एक गायिका थी जो मारवणीके पीहरकी रहनेवाली थी। उसे ऊमरका षड्यंत्र मालूम हो गया और उसने मारवणीको सचेत कर दिया। मारवणी ऊँटके पास बैठी थी, उसने तुरन्त ऊँटको छड़ीसे मारा। जब ऊँट दौड़ा तो ढोला उसे पकड़नेको पीछे-पीछे दौड़ा। मारवणी भी दौड़कर पास पहुँच गई और उसने सारा हाल ढोलासे कह दिया। तब दोनों तुरन्त ऊँटपर सवार होकर चल दिये। जल्दीमें ऊँटका पैर बँधा ही रह गया। फिर भी ऊँट इतना तेज गया कि ऊमर ढोलाका पीछा करनेमें असमर्थ रहा। इसके पश्चात् दोनों सकुशल नरवर लौट आये। *इस विषयका ढोला-मारू नामक दूहात्मक लोक-गीत राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध है।

---

(३) वीर

१—सामान्य

१—मिलाओ आगे 'विशेष वीर' में दूहा नं० १,७६ और ९०।

२—राजपूतोंकी ३६ शाखाएं कही गई हैं। छत्तीस शाखाएं कौन-कौन हैं इसपर मतभेद है। कुछ नाम ये हैं—(१) गुहिलोत (२) राठोड़ (३) कछवाहा (४) तँवर (५) चोहाण (५) सोळंकी या चालुक्य (७) पँवार (८) पड़िहार (९) चावड़ा (१०) यादव (११) मोहिल (१२) दहिया (१३) जोइया (१) डोड (१५) झाला (१५) वाला (१६) गोड़ इत्यादि।

---

*इस काव्यका एक सुन्दर संस्करण काशीकी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है, जिसमें कथाके विविध रूपान्तर, पाठांतर, भाषान्तर, टिप्पणी, शब्दकोष, व्याकरण आदिका समावेश किया गया है।

२२—धवळा उत्तम जातिका बैल होता है। धवळे बैलके सम्बन्धमें राजस्थानके सुप्रसिद्ध कविराज वाँकीदासने धवळ-बत्तीसी नामक रचना दूहोंमे की है जो नागरी-प्रचारिणी-सभासे प्रकाशित बाँकीदास-ग्रन्थावळीके प्रथम भागमे प्रकाशित हो चुकी है।

२८—'मै परणंती परखियो' से आरम्भ होनेवाले कुछ और दूहे हास्य और व्यंग विभागमें देखिये (नम्बर ४६—४७)।

३३—'सखी हमीणे कंथरी' से आरम्भ होनेवाले कुछ और दूहे हास्य और व्यंग विभागमें देखिये (नम्बर ४८—४९)।

४१—मिलाओ—

> भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कन्तु ।
> लज्जेजंतु वयसिअहु जइ भग्गा घर अेन्तु ॥

—हेमचन्द्रके प्राकृत-व्याकरणसे उद्धृत ।

३—विशेष वीर

१—महाराणा प्रतापसिंह (१५९७-१६५३)—ये सुप्रसिद्ध स्वतंत्रताके पुजारी महाराणा मेवाड़के राणा साँगा के पोते तथा राणा उदयसिंहके बेटे थे। इनका जन्म स० १५९७ की जेठ सुदी ३ को हुआ। यद्यपि ये पाटवी कुमार थे तो भी राणा उदयसिंहने छोटी राणी भटियाणीपर विशेष प्रेम होनेके कारण उसके बेटे जगमलको राज्यका उत्तराधिकारी बनाया। परन्तु मेवाड़के आपत्ति-कालको देखते हुअे वह राजा होनेके सर्वथा अयोग्य था, इसलिअे मेवाड़के सरदारोंने प्रतापसिंहको ही गद्दीपर बिठाया।

उस समय दिल्लीका बादशाह अकबर था। अेक-अेक करके राजस्थानके सभी हिन्दू राजाओंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, पर मेवाड़के राणाने अैसा नहीं किया। अकबरने मेवाड़को अधीन करनेका बहुत प्रयत्न किया पर स्वतंत्रताके अमर-पुजारी राणा प्रतापने उसकी इच्छा पूरी न होने दी। भयंकर विपत्तियोंको सहन करते हुअे उन्होंने

अपनी स्वतंत्रता कायम रखी। विशेष जाननेके लिअे नीचे लिखी पुस्तकें देखनी चाहिअे—

१—महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत राजपूतानेका इतिहास।

२—इन्ही ओझाजीका उदयपुरका इतिहास, जिल्द पहली।

३—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द कृत प्रताप-प्रतिज्ञा नाटक।

४—हनुमन्तसिह रघुवंशी कृत मेवाड़का इतिहास।

५—टाड कृत राजस्थानका इतिहास, खण्ड पहला।

६—राधाकृष्णदास कृत राजस्थानकेशरी या महाराणा प्रताप नाटक।

७—श्रीराम शर्मा कृत महाराणा प्रतापसिह (अंग्रेजी)

६६—बादळ (१३५९ के लगभग)—यह और इसका चाचा गोरा मेवाड़के सरदार थे। उस समय मेवाड़मे राणा रतनसेन राज्य करता था। उसके पदमणी नामकी राणी थी जो बहुत सुन्दर थी। अलाउद्दीनने उसे प्राप्त करनेके लिअे चित्तोड़पर आक्रमण किया पर उसे जीत न सका। अन्तमे उसने छलसे काम निकालनेका विचार किया और राणासे कहला भेजा कि मुझे केवल अेक बार पदमणीको दिखा दीजिये, फिर मै लौट जाऊँगा। राणाने यह बात मान ली। बादशाह भीतर बुलाया गया और वहाँ उसका बड़ा आदर-सत्कार हुआ। दर्पणमे पदमणीके मुखकी परछाई देखनेके बाद वह लौट गया। राणा उसे पहुँचानेके लिअे साथ गया। किलेसे बाहर निकलतेही बादशाहने राणाको पकड़ लिया और कैद करके साथ ले गया तथा कहलवा भेजा कि पदमणी मिलनेपर ही राणाको छोड़ूँगा। इसपर पदमणी गोरा और बादळके पास गई और उसने उनसे सहायता माँगी। उन्होंने कपटका जवाब कपटसे देनेका निश्चय किया और बादशाहसे कहलवा भेजा कि हम पदमणीको ला रहे हैं, उसके साथमें पाँच सौ डोलियोंमें उसकी पाँच सौ सखियाँ भी आवेंगी। फिर उन्होने डोलियोंके अन्दर सशस्त्र योद्धा बिठा दिये और कहारोंकी जगह भी योद्धाओंको ही रखा। पदमणीकी डोलीमे अेक लुहारको बिठा दिया।

इस प्रकार बादशाहके पास पहुँचे और उससे कहलाया कि राणी पहले अपने पतिसे मिलना चाहती है। बादशाहकी आज्ञा मिलनेपर पद्मणीकी डोली राजाके पास गई और भीतर बैठे लुहारने राजाके बन्धन काट दिये और राजा घोड़ेपर सवार होकर बादळके साथ चित्तोड़को चल दिया। पीछे गोरा और बादशाहकी सेनामे भयंकर युद्ध हुआ, जिसमे गोरा काम आया। उस समय बादळकी अवस्था बारह बरसकी थी।

६९—महाराणा अमरसिह (१६१६-१६७६)—ये महाराणा प्रतापके पुत्र थे। प्रतापकी मृत्युके उपरान्त उन्होंने स्वतंत्रताका युद्ध जारी रखा। उस समय दिल्लीका बादशाह जहाँगीर था और उसने प्रण कर लिया था कि मेवाडको चाहे जिन शर्तोंपर, जैसे हो वैसे, अवश्य ही अपने अधीन करूँगा। उसने अपने बेटे शाहजादे खुर्रमको, जो आगे चलकर शाहजहाँ के नामसे बादशाह हुआ, सेनापति बनाकर भेजा। महाराणाने यथा-शक्ति बादशाही सेनाका सामना किया, पर निरन्तर युद्धसे उनके बड़े-बड़े सरदार मारे गये और ऐसी स्थिति उत्पन्न होगई कि राणाको या तो देश छोड़कर भागना पड़े या कैद होना पड़े। राजपूत सेना भी निरन्तर युद्धसे थक गई थी और सरदार लोग सन्धि कर लेना चाहते थे। उधर बादशाह भी उदार शर्तोंके साथ सन्धि करनेको तय्यार था, क्योंकि उसे तो नामके लिअे मेवाड़को अधीन करना था। महाराणाने सरदारोंकी इच्छा तथा परिस्थितिको देखकर आन्तरिक इच्छाके विरुद्ध सन्धिके लिअे स्वीकृति दे दी। पर इससे उनके चित्तको बड़ा दुःख हुआ और वे राज्यकार्य युवराजको सौपकर अेकान्तवास करने लगे। उसने प्रतापसे भी अधिक लड़ाइयाँ लड़ीं और प्रतापसे कष्ट भी कम नही उठाये, पर बादशाहसे सन्धि कर लेनेके कारण उनका वैसा नाम नही हुआ।

७२—महाराणा राजसिंह (१६८६-१७३७)—ये महाराणा अमरसिंहके परपोते थे। बड़े वीर और प्रतापी राजा हुअे। उस समय दिल्लीका बाद-शाह औरंगजेब था। किशनगढ़की राजकुमारी चारुमतीसे बादशाह विवाह करना चाहता था, पर चारुमती नही चाहती थी। उसने राजसिंहको

पत्र लिखा जिसपर राजसिंह ससैन्य किशनगढ़ पहुँचे और चारुमतीसे विवाह कर उसे मेवाड़ ले आये। बादशाह इससे बड़ा क्रुद्ध हुआ। जब बादशाहने जजिया कर जारी किया तो राणाने उसका विरोध किया। जोधपुरके बालक महाराज अजीतसिंहको बादशाहने पकड़ना चाहा, तो उसने राणाके यहाँ शरण ली। इन सब कारणोंसे बादशाहने राजसिंहपर चढ़ाई की। बहुत दिनों तक लड़ाई होती रही, पर महाराणाकी कोई विशेष हानि नहीं हुई। इस युद्धमें राठोड़ोंने भी पूरी सहायता दी थी। संवत् १६३७ में महाराणा कुम्भलगढ़ जाते हुअे, ओड़ा नामक गाँवमें ठहरे जहाँ किसीने भोजनमें विष मिला दिया, जिससे उनका देहान्त हुआ (आगे अैतिहासिक विभागमें दूहा नं० १६ देखिये।)

७४—राव जगमाल—ये मारवाड़के राठोड़ राव मल्लिनाथ (१३८८—१४५६) के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद गद्दीपर बैठे। इन्होंने माँडूके सुलतानको युद्धमें हराकर उसकी गीदोली नामक रूपवती राजकुमारीको छीन लिया था। युद्धमें सुलतान जगमालकी मारसे घबराकर महलोंमें भाग गया था। उस समयका यह दूहा है।

७५—राव अमरसिंह—ये जोधपुर-महाराज गजसिंहके बड़े बेटे थे। उद्धत स्वभावके होनेके कारण पिताने इनको त्याज्य पुत्र करके (सं० १६९० छोटे बेटे जसवंतसिंहको जोधपुरका राज दिया। जोधपुरसे निक‍ जानेपर वे बादशाह शाहजहाँके यहाँ गये। वहाँ बादशाहने उनको अप चाकरीमें रखकर रावके खिताबके साथ नागोरका पट्टा लिख दिय (१६९४)। नागोरकी सीमा बीकानेर-राज्यसे मिली हुई थी। किसी सम‍ अेक मतीरे की बेल नागोरकी हदमें उगी, पर बढ़कर बीकानेरकी हदमें चली गई। जब उसमें फल लगा तो नागोर और बीकानेरके आदमियोंमें झगड़ा हो गया। नागोरवाले कहते थे कि फल हमारा है, क्योंकि बेल हमारी हदमें उगी है। बीकानेरवाले कहते थे कि फल हमारा है, क्योंकि हमारी हदमें लगा है। विवाद बढ़ते-बढ़ते युद्धकी नौबत पहुँची। बीकानेरवाले विजयी हुअे और फल ले गये। अमरसिंहने अपनी सेनाकी हारकी

बात सुनी, तो नागोरमें अपने प्रधानको लिखा कि नई सेना भेजकर मतीरा छीन लाओ। यह बात बादशाह तक पहुँची। उसने अमरसिंहको सेना वापिस बुला लेनेके लिअे कहा और मामला निपटानेके लिअे अपना अेक अमीन भेज दिया। पर अमरसिंहने इस आज्ञाको माननेसे इनकार कर दिया। शाही दरबारके नियमके मुताबिक प्रत्येक उमरावको बारीसे शाही ड्यौढ़ीपर पहरा देना पड़ता था। जब अमरसिंहकी बारी आई तो उसने इनकार कर दिया। इससे बादशाहने क्रुद्ध होकर उनपर सात लाखका जुर्माना कर दिया। दूसरे दिन अमरसिंह दरबारमें आये तो बख्शी सलाबतखाँने जुर्माना दाखिल करनेकी बात भरे दरबारमें कही। मतीरेवाले मामलेमें भी सलाबतखाँने बीकानेरका पक्ष लिया था। बातोंही बातोंमें बात बढ़ गई और बख्शीने अमरसिंहको गँवार कहकर पुकारा। इसके पहले ही अमरसिंहने अपनी कटार बख्शीके पेटमें भोंक दी। बादशाहकी ओर भी कटार फेंकी, पर वह खंभेसे टकरा गई। बादशाह महलमें चला गया। अमरसिंह लड़ते-भिड़ते बुर्जपर चढ़ गये और वहाँसे आमखासके मैदानमें घोड़े सहित कूद पड़े। घोड़ा तो तुरंत मर गया पर अमरसिंह सकुशल घर पहुँच गये। पीछे उनके साले अर्जुन गौड़ने धोखेसे उन्हें मार डाला।

७६—दुर्गादास राठोड़ (१६९४—१७७५)—ये राजस्थानके अेक प्रख्यात वीर हो चुके हैं। ये जोधपुरके महाराज जसवंतसिंहके सरदारोंमें से थे। इनके पिताका नाम आसकरण था। ये बचपनसे ही बड़े तेजस्वी थे। बचपनमें अेक बार ये अपने गाँवके बाहर टहल रहे थे। उसी समय राज्यके ऊँटोंका अेक टोला वहाँसे निकला। चरवाहेकी बेखबरीसे ऊँट अेक किसानका खेत चरने लगे। बेचारे किसानने चरवाहेसे ऊँटोंको हटानेके लिअे कहा, पर उसने कुछ ध्यान न दिया। इस पर दुर्गादासने उसे रोका, पर वह तो राज्यके ऊँटोंका चरवाहा था। उनसे भी बिगड़ उठा और उन्हें बुरा-भला कहने लगा। इसपर दुर्गादासने तलवार निकालकर चरवाहेका सिर धड़से उड़ा दिया। महाराज जसवंतसिंहजीके पास

तक यह मामला पहुँचा, पर उन्होंने दुर्गादासको कुछ नही कहा; उलटे उनकी प्रशंसा करते हुअे उन्हें अपनी चाकरीमें रख लिया।

अेक समय दुर्गादासजी महाराजके साथ शिकारको गये। वहाँ शिकार से लौटनेपर वे अेक वृक्षके नीचे सो गये। थोड़ी देरमें उनके मुँहपर धूप आ पहुँची। यह देख स्वयं महाराजने अपने वस्त्रसे उनपर छाया कर दी। अन्य सरदारोंके यह कहनेपर कि आपको स्वयं अैसा करना उचित नहीं, महाराजने कहा कि आज मै इसपर इसलिअे छाया कर रहा हूँ कि यह किसी दिन सारे मारवाड़पर छाया करेगा। महाराजका यह कथन आगे चलकर पूरा-पूरा सच हुआ।

बादशाह औरंगजेब जसवंतसिहसे प्रसन्न न था। उसने उन्हें काबुल-में नियुक्त किया। वहाँ उनकी मृत्यु होनेपर औरंगजेबने जोधपुरका राज्य खालसे कर लिया। जब उसे मालूम हुआ कि महाराजकी रानियाँ गर्भवती हैं, तो उन्हें दिल्ली बुलाया। मार्गमें रानियोंके दो पुत्र हुअे। उनके दिल्ली पहुँचनेपर औरंगजेबने राजकुमारोंको अपने हाथमें करना चाहा और अपने अेक सेनापतिको राठोड़ोंके डेरेपर भेजा। दुर्गादासने राज-कुमारो को पहले ही निकाल दिया। बहुत-से राजपूत शाही सेनाके साथ लड़कर काम आये। दुर्गादासने बचे हुअे आदमियोंके साथ मारवाड़का रास्ता लिया और फिर राजकुमार अजीतसिहके साथ उदयपुरके महाराणा राजसिहके पास पहुँचे। राणाने उन्हें सहायता दी और अजीतसिहको पहाड़ोंमें रखा। इसके बाद शाही सेनाके साथ बहुत समय तक युद्ध होता रहा। अतमें बादशाहको सधि करनी पड़ी। अजीतसिहने धीरे-धीरे सारा मारवाड़ अपने हाथमे कर लिया।

अंत समयमे अजीतसिंहके बर्त्तावसे रुष्ट होकर दुर्गादास मेवाड़ चले आये, जहाँ राणाने उनको अेक अच्छी जागीर देकर अपने यहाँ रख लिया। उनका देहांत उज्जैनमें सिप्रा नदीके किनारे अस्सी वर्षकी अवस्थामे सवत् १७७५ में हुआ। अजीतसिहके व्यवहार और दुर्गादासके मरणके सबंधमें यह आधा दूहा प्रसिद्ध है—

इण घर याही रीत, दुरगो सिपरा दागियो।

७९—वल्लसिह—जोधपुरमें चाँपावत खाँपके गोपाळदास नामक सरदार थे। उनके आठ पुत्र थे और आठो ही परम प्रसिद्ध वीर और साके करनेवाले हुअे। उनके नामो और कामोका उल्लेख इस छप्पयमे है—

मॉडव्र राघवदास[१] पिता जुध जामळ पेठो
हाथी[२] जंगळ हेत सेल वाहणूॅ सहेठो
हरियो[३] वागड खेत साथ सब्रळॉ दळ भजे
खेतसिह[४] अजमेर दळॉ ऊथळ रण गंजे
आगरे वल्ल[५], भोपत[६] दिली[७], वीठल[८] उज्जीणीवरॉ
कुल मॉहि वडा साका किया रण सामॅत गोपाळरॉ

इनमें वल्लूजी नागोरके महाराज अमरसिहजीके दरबारमें रहते थे। रावजीके कुछ पालतू मेंढे थे और जब वे चरने जाते थे, तब ताजीमी सरदार बारी-बारीसे उनके साथ जाते थे। जब वल्लसिहकी बारी आई तो उनने कहा कि यह हमारा काम नही। इसपर रावजीने व्यंगसे कहा कि ये तो मेंढे क्या चरावेंगे, पतसाही घड़ मोड़ेंगे (शाही सेनाको परास्त करेंगे)। इसपर वल्लूजी रुष्ट होकर वहाँसे चले आये। कुछ दिनो तक वीकानेर और उदयपुरमे रहकर बादशाहकी चाकरीमें चले गये। जब सलाबतखाँके झगड़ेमे राव अमरसिह मारे गये, तो उनकी रानियोने सती होना चाहा, पर रावजीकी मृतदेह कैसे मिले, यह समस्या थी। अतमें उनने वल्लूजीकी शरण ली। वल्लूजी वीरतासे शाही सेनाको परास्त करके शरीर को ले आये और रानियाँ सती हुई। इस प्रकार रावजीके कहे हुअे व्यग को उनने सत्य कर दिखाया। इस लड़ाईमें वल्लूजी काम आये।

८१—केसरीसिह—जोधपुरके महाराज अभयसिहके समयमें जयपुरके महाराज सवाई जयसिहने जोधपुरपर आक्रमण किया और बिना लड़े ही उन्हें विजय प्राप्त हुई। लौटते समय बखरी-ठाकुर केसरीसिह कही जाते हुअे देख पड़े तो जयपुरकी सेनामेंसे किसीने गर्वसे कहा कि देखो हमारी तोपे मारवाड़से भरी-की-भरी वापिस जाती हैं। केसरीसिंहको यह बात चुभ गई और महाराज जयसिंहके समझानेपर भी उनने युद्ध छेड़ दिया

और वीरतासे लड़ते हुअे काम आये। इस प्रकार जयपुरवालोंको बिना युद्धके विजयी नही होने दिया।

८२—कीरतसिह सोढा—ये जोधपुरके महाराज मानसिहजीके सरदार थे। संवत् १८६२ में ठाकुर सवाईसिहके उपद्रवपर जब विद्रोहियोने जोधपुरके किलेको घेर लिया तो महाराजने कहा कि अब हल्ला रुकना असभव है। यह सुनकर कीरतसिहने प्रण किया कि मैं अभी रोकता हूँ। यह कहकर जूझ पड़े और वीरतासे लड़कर काम आये। विद्रोहियोका हल्ला हट गया।

८३—भीवसिह—धनजी और भींवजी ये दोनों पाली-ठाकुर मुकनसिह-जीके यहाँ रहते थे। धनजी गहलोत और भीवजी चोहाण थे तथा संबंधमें मामा-भानजा होते थे। अेक बार जोधपुर जाते समय मुकनसिह इनकी ढाणीके पास ठहरे। वहाँ इनका रेवड़ चर रहा था। मुकनसिहके आदमी उसमेंसे दो भेड़ोंको उठा लाये और उन्हें काट डाला। धनजी-भीवजीको यह हाल मालूम हुआ तो वे दोनो आये और पेड़पर टँगे दोनो जानवरों को ले गये और जाते समय कहा कि राजपूतोंके जानवर खाना सहज नही होता। मुकनसिहको अपने आदमियोका यह दुर्व्यवहार मालूम हुआ तो उनने माफी माँगी और धनजी-भीवजीकी तेजस्विताको देखकर उन्हें अपने पास रखना चाहा। उनने धनजी-भीवजीसे कहा कि मै आपसे अेक याचना करता हूँ, क्या आप देंगे? धनजी-भीवजीने राजपूती उदारतासे कहा कि अवश्य। तब मुकनसिहने उनका अपने साथ रहना माँग लिया। फिर दोनोंको साथ लेकर वे जोधपुर पहुँचे। वहाँ छिपियाके ठाकुर प्रतापसिह मुकनसिहसे बैर रखते थे। अेक दिन राजमहलमें महाराजके पास जाते हुअे मुकनसिहको अेकांतमें निश्शस्त्र देखकर प्रतापसिहने उनको मार डाला और आप पोळमे छिप गये। धनजी और भीवजीने यह बात सुनी तो तुरंत वहाँ पोळमें पहुँचे और दरवाजा तोड़कर प्रतापसिहको मार डाला। फिर राज्यकी सेनासे लड़ते हुअे काम आये।

८७—राव कॉधळ—ये मारवाड़के राव रिड़मलके पुत्र तथा राय

जोधाके छोटे भाई थे। कहते हैं कि अेक बार रावके दरबारमें कॉधळजी बैठे थे। थोड़ी देरमें वीकाजी आये और कॉधळजीसे धीरे-धीरे बात करने लगे। राव जोधाजीने हँसीमें कहा कि आज काका-भतीजा अैसे सलाह कर रहे हैं, मानो कोई नया राज्य स्थापित करेंगे। वीकाजी तो कुछ नही बोले, पर कॉधळजीने अरज की कि महाराजकी कृपा रही तो यह कोई बड़ी बात नही। फिर कई सरदारों तथा सेनाके साथ वीकाजीको लेकर चल पड़े और जोधपुर राज्यके उत्तरमें स्थित बागड़ देशपर अधिकार करके वहाँ नया राज्य कायम किया। धीरे-धीरे भटनेर और हिरसार तकका प्रदेश अधिकारमे कर लिया। इस प्रकार अपनी वीरतासे रावजी-ने अेक बड़ा राज्य खड़ा कर दिया। सं० १५४६ मे वे हिस्सारके सूबेदार सारंगखाँके साथ युद्धमे वीरगतिको प्राप्त हुअे। उनकी मृत्युका हाल सुनकर जोधाजी और वीकाजीकी सम्मिलित सेनाओने सारंगखाँपर आक्रमण किया और उसे युद्धमे मार डाला।

८८—पदमसिह—ये वीकानेरके महाराज करणसिहके छोटे पुत्र थे। असाधारण वीर थे। इनने अेक बार युद्धमें औरंगजेबकी प्राणरक्षा की थी। इनमें इतना बल था कि अेक बार किसी नवाबके हाथीको हौदे सहित पकड़कर अपने पिताके हाथीके बराबर, जिसपर खुद भी सवार थे, खीचकर भिड़ा दिया। उनका खड्ग अभी तक राज्यके शस्त्रागारमें रखा है। वह इतना भारी है कि अेक आदमी उसे दोनों हाथोसे भी नहीं उठा सकता। वे उसे अेक हाथसे चलाते थे।

अेक बार औरंगाबाद में उनके छोटे भाई मोहनसिह के अेक पालतू हरिणको, जो फिर रहा था, कोतवालने पकड़ लिया। मोहनसिह मॉगने गये तो कोतवालसे झगड़ा हो गया और कोतवालने उनका सिर काट लिया। पदमसिहको यह मालूम हुआ तो वे तुरंत वहाँ पहुँचे। कोतवाल प्राण बचानेके लिअे दरबारमें जा बैठा। पदमसिंह भी दरबारमें जा पहुँचे और वहीं भरे दरबारमें कोतवाल का सिर उड़ा दिया।

८९—कुसळसिह—ये भूकरकाके ठाकुर थे जो वीकानेरका अेक

ठिकाना था। किसी कारणसे बीकानेर-महाराज जोरावरसिंहजी उनसे अप्रसन्न हो गये थे, इसलिअे वे, अपने ठिकानेमें ही रहते थे। जब जोधपुर-महाराज अभयसिंहजीने बीकानेरपर आक्रमण किया तो पुरोहितजीके कहनेसे महाराजने उनको खास रुक्का भेजकर सहायताके लिअे बुलवाया। स्वामीपर संकट पड़ा देख, अपने अपमानपर ध्यान न देकर, वे तुरत ५००० सवार व पैदल सेना लेकर चल पड़े। उनकी वीरताके कारण अभयसिंहको विफलमनोरथ होकर लौटना पड़ा।

९०—महाराज मानसिंह—ये आमेर (वर्तमान जयपुर-राज्य) के महाराज थे और सम्राट अकबरके अेक प्रधान सेनापति थे। बादशाहके दरबारमें इनका बहुत ऊँचा ओहदा था। बंगाल और काबुल जैसे दूर-दूरके प्रांतोंको जीतकर इन्होंने मुगल-साम्राज्यमें मिलाया। ये बड़े भारी दानी भी थे। हरिनाथ कविने इनकी प्रशंसामें दो दूहे पढ़कर अेक लाख रुपये दानमें पाये :

बलि बोई कीरति लता, करण करी द्वै पात।
सींची मान महीपने, जब देखी कुँमळात॥ १॥
जाति जाति ते गुन अधिक, सुन्यो न कबहूँ कान।
सेतु बाँधि रघुबर तरे, हेला दे नृप मान॥ २॥

कहते हैं कि जब इनकी सेनाने अटक नदीको पार करके म्लेच्छ भूमि में जानेके लिअे अनिच्छा प्रकट की तो इनने नीचे लिखा दूहा कहकर उसे अटक पार जानेको राजी किया—

सबै भूम गोपाळकी तामें अटक कहा।
जाके मनमें अटक है, सोई अटक रहा॥

इनका विस्तृत इतिहास जयपुर-निवासी पुरोहित हरिनारायणजी बी० अे० द्वारा लिखित और बिड़ला-कालेज-मेगेजीन (पिलाणी) के चौथे तथा पाँचवें भाग में प्रकाशित 'महाराज मानसिंह प्रथम' नामक निबंध में छपा है।

९१—महाराज जयसिह—(१६६८-१७२४) ये आमेरके महाराज बड़े प्रतापी हुअे। ये शाहजहाँ और औरंगजेबके सेनापति थे। शिवाजीको समझा-बुझाकर इन्होने औरंगजेबके दरबारमे भेजा था। हिंदीके सुप्रसिद्ध कवि बिहारीलाल इन्हीके दरबारमे रहते थे। उन्हें प्रत्येक दूहेके लिअे अेक अशर्फी इनाममें मिलती थी।

९२—राव शेखाजी—ये राजस्थानमे अेक सुप्रसिद्ध वीर हो चुके हैं। जयपुर राज्यका पश्चिमोत्तर विभाग इन्हीके नामसे शेखावाटी कहलाता है। आमेर-जयपुरके महाराज उदैकरणके पुत्र बालाजी हुअे, जिनके पुत्र मोकळजीके पुत्र राव शेखाजी थे। मोकळजीके बड़ी उम्र तक कोई पुत्र नहीं हुआ, जिससे वे बड़े खिन्न थे। अतमे शेख बुरहान नामक अेक फकीरके आशीर्वादसे उन्हें पुत्रप्राप्ति हुई, जिसका नाम शेखा रखा गया। यह शेख तैमूरके साथ आया था और इसलाम के प्रचारार्थ यहीं रह गया था। उसकी क़ब्र शेखावत राजपूतो का तीर्थस्थान है। उसी कारणसे शेखावत सुअरका माँस नही खाते तथा हलालका माँस खा लेते हैं। बच्चे के गलेमें बही तथा झंडेमें नीला निशान भी उसी फकीरकी यादगार है। शेखाजीने आमेरके महाराज चद्रसेनको पराजित कर अपनेको स्वतत्र बना लिया। गोड़ राजपूतोसे उनने ११ लड़ाइयाँ लड़ी और अन्तमें उनकी मृत्यु गोड़ोकी लड़ाईमें ो संवत् १५६६ में हुई। इन लड़ाइयोका कारण इस प्रकार था कि ाटवा नामक स्थानपर गोड़ एक तालाब खुदवा रहे थे और उनने ह नियम बना दिया था कि जो कोई उधर के मार्गसे जाय, अेक टोकरी मट्टी खोदकर अवश्य बाहर डाल दे। अेक राजपूत अपनी स्त्रीका गौना रवा कर जाता हुआ उधर आ निकला। गोड़ोने उससे मिट्टी खोदकर ाहर डालनेको कहा और उसने अैसा कर दिया। पर गोड़ोने उसपर बाव डाला कि उसकी स्त्री भी अैसा करे। राजपूतने इसका विरोध किया, (उद्दंड गोड़ोंने उसकी अेक न सुनी। इसपर वह वीर अपनी स्त्रीकी ानरक्षाके लिअे प्राणोंपर खेल गया। उसकी विधवा नववधूने शेखाजीके स जाकर अपना दुखड़ा रोया। इसपर शेखाजीने गोड़ोपर आक्रमण या। गोड़ परास्त तो हो गये, पर शेखाजी भी वीरगतिको प्राप्त हुअे।

९३—राव शिवसिंह—ये शेखाजीके वंशज और शेखावाटीके अंतर्गत सीकरके राजा थे। इनने सं० १७७८ से १८०५ तक राज्य किया। ये बड़े प्रतापी और प्रभावशाली नरेश हो चुके हैं। अेक बार जयपुर-नरेश सवाई जयसिंहजीके साथ शिवसिंह मालवाकी ओर जा रहे थे। मार्गमें मौजाबादमें पड़ाव हुआ। वहीं अजमेरसे मारवाड़-नरेश अभैसिंहजी भी आ मिले। वर्षाऋतु थी। अेक बार सात दिन लगातार वर्षा हुई। भोजन का प्रबंध कठिन हो गया और सब लोग व्याकुल हो उठे। यह देखकर रावजीने अपने खेमेमें कड़ाह चढ़वाकर खीचड़ा बनवाया। रावजीका यह नियम था किभोजन बन जानेपर नगाड़ा बजाते थे, जिसको सुनकर भोजन करनेवाले लोग आ पहुँचते थे और सबके भोजन करनेके बाद स्वयं भोजन करते थे। इस बार भ ऐसा ही किया और नगारेका शब्द सुनकर जयपुर तथा मारवाड़के सैनिक भी उनके डेरेमें पहुँच गये और खीचड़ा खाकर तृप्त होकर लौटे। फिर रावजीने दोनों नरेशोंसे भी पधारनेकी प्रार्थना की और तीनोंने मिलकर भोजन किया। इस पर प्रसन्न होकर जयपुर-नरेशने १००) रोजानेका रसोवड़ा खर्च और ६००) वार्षिक थालका नियत कर किया। सीकर-राज्यके करमें यह ६००) की रकम अब भी जयपुरकी ओरसे मुजरा दी जाती है। इसीपर कविने यह दूहा कहा था। इस विषयके अेकाध दूहे और यहाँ दिये जाते हैं :

अभैसिंघ, जैसिंघ, हिंदू सै भेळा हुवा।
सुजस लियो सिवसिंघ सारो दोलतसिंघवत ॥ १ ॥
मारू मेवाडाह, सोढा, जाडेचा समा।
ढकिया, ढूँढाडाह, सुजस तिहारै, सेवसी ॥ २ ॥

९४—सादूळसिंह—ये खेतड़ीवालोंके पूर्वज बड़े प्रतापी राजा हुअे। इनने झूँझणूके कायमखानी नवाब रुहेलखाँको हराकर झूँझणू छीन लिया—

सत्रह सो सत्तासियै अगहन मास उदार।
सादै लीनी झूँझणू सुद आठम सनिवार ॥

इसी प्रकार आसपासके मुसलमान शासकोंको हराकर इनने नरहड़, सिघाणा, सुलताना आदि स्थान अपने अधिकारमे कर लिये। इनका देहांत १७९९ मे हुआ। इनके विपयमें यह छंद प्रसिद्ध है-—

इण राजा सादूळ पकड बूँदी विचळाई।
इण राजा सादूळ लक जिम रिणी लुटाई॥
इण राजा सादूळ लिया वैराट सिघाणा।
इण राजा सादूळ दिया नरहड सिर थाणा॥

९५—जुझारसिह–ये सादूळसिहजीके दादा और उदयपुर (शेखावाटी) के राजा दानवीर टोडरमलके पुत्र थे। इनने गुढा नामक गॉव बसाया और वहीं रहने लगे। इनके पिताने मृत्युके पूर्व केड नामक गॉवको, जो मुसलमानोके अधिकारमे था, अपने अधिकारमे देखने की इच्छा प्रकट की। इनने झट केडपर धावा बोल दिया और उसे विजय कर लिया, पर लौटनेके पूर्व ही पिता की मृत्यु हो गई। मरते समय पिता अपनी खास ढालतलवार जुझारसिहको दे गये।

९६—जोरावरसिह—ये सादूळसिहके बड़े बेटे थे। बड़वासीके नवाब मानुल्लाखॉके हाथसे उनके मुखपर घाव हो गया, जिसे लक्ष कर कविने यह दूहा कहा।

९७—अभयसिह—इनने १८५७ से १८८३ तक खेतड़ीमें राज्य किया। मारवाड़मे भीमसिहजी के बाद उनके भाई मानसिहजी गद्दीपर बैठे। उसी समय मारवाड़के कई सरदारोने धोकळसिंह नामक अेक दूसरा गद्दीका हकदार खड़ा किया, जिसे वे भीमसिहजीका पुत्र बतलाते थे। जयपुर और बीकानेरने धोकळसिहका पक्ष लिया पर अमीरखॉके विश्वास-घातके कारण उन्हें सफलता नही मिली। बचपनमे धोकळसिहको शरण देनेका साहस और किसीको नही हुआ, पर अभयसिहने उसे सम्मान सहित अपने पास रखा।

९८—सुलतानसिंह—ये फतहपुर (शेखावाटी) में रहनेवाले गोड़ राजपूत थे। इनको आखेटका बड़ा दुर्व्यसन था। आखेट जाते समय

मार्गमें अेक सॉझासर गॉव पड़ता था जहॉ बारहठ मुकनजी चारण रहते थे। वे सुलतानजीको सदा उपालभ देते थे। अेक दिन सुलतानजीने कहा कि यह दुर्व्यसन तो मरनेतक मुझसे न छूटेगा, कोई अैसा उपाय बताइये, जिससे मेरी सद्गति हो। बारहठजीने कहा कि धर्मयुद्धमें प्राण दीजिये। पीछे फतहपुरपर पचाधोंका आक्रमण हुआ, तो सुलतानजीने उनका सामना किया और वीरगति पाई।

१००—ऊगो—यह गारापुर पाटणके राजा वालाका छोटा भाई था। जूनागढगिरनारका राजा कैवाट सरवहियो इसका मामा था। कैवाटके कई सरदारोने उससे राज्य छीननेका विचार किया, पर ऊगोकी वीरताके कारण अैसा नही हो सका। तबसे उसके यहॉ ऊगोका प्रभाव बढ़ गया। अेक बार कोई सौदागर दो बहुमूल्य ढालें लाया और राजाकी नजर की। उनमेंसे अेक राजकुमारने और दूसरी ऊगेने ले ली। इसपर कैवाटने कहा—भाणेज, अेक हाथसे ताली बजाते हो ? ऊगोने उत्तर दिया कि मेरे तो अेक ही हाथसे ताली बजती है, आप जब चाहें परीक्षा करके देख लें। इसके बाद कोइलापुर-पाटणके राजा अणॅतराय सॉखलेने कपटसे कैवाटको पकड़ लिया और उसे पिजरेमें डाल दिया। पिजरेको जमीनमें गड़वा दिया और ऊपरसे मार्ग बहने लगा। ऊगेको यह बात मालूम हुई तो उसने मैगळ भाटको कैवाटका पता लगानेको भेजा। कैवाटने मैगळसे कहलवाया कि ऊगेको कहो कि अब अेक हाथसे ताली बजावे। फिर ऊगेने ‘शठे शाठ्यं’ वाली नीतिको लेकर गुप्तरूपसे अणॅतरायके नगरमें प्रवेश करके उसपर धावा बोल दिया और उसको पराजित कर कैवाटको छुड़ाया। कैवाटकी यह कहानी राजस्थानमे बहुत प्रसिद्ध है। (विशेषके लिअे देखो प० सूर्यकरण पारीक द्वारा सपादित ‘राजस्थानी वार्ता’ नामक पुस्तकमे कैवाट सरवहियेकी वात)।

१०४—तगो—कहानियोंमें यह बादशाह अलाउद्दीनका अेक सरदार बताया गया है। जाळोरके राजाका भाई राणकदे बादशाहके यहॉं नजरबंद था। उसकी निगरानी तगेके सुपुर्द थी। अेक दिन तगेने

राणकदेको तू कहकर पुकारा। तब पास बैठे आसे चारणने यह दूहा तगेसे कहा। इसपर राणकदेने कटारसे तगेको मार डाला।

१०५—रहीम—हिंदीका सुप्रसिद्ध कवि है। यह अकबरका सेनापति था। बड़ा दानी था। यह दूहा तथा आगे 'दानवीर' के ७ और ८ नंबरके दूहे जाडा नामक चारणके कहे हैं (आगे ऐतिहासिकमे दूहा नं ३९ देखिये।)

४—दानवीर

१—जाम ऊनड—यह जाड़ेचा भाटी वंशका था और सिंधका राजा था। बड़ा भारी दानी हुआ है।

२—गोड़ वछराज—यह अजमेरका राजा था। इसने अनेक अरब-पसाव दान दिये थे।

अड़ब-पसाव—अेक प्रकारका दान जिसमें अरब रुपये नकद, या हाथी-घोड़े, जागीर आदि के रूपमें अरब का धन; दिया जाय। इसी प्रकार करोड़-पसाव और लाख-पसाव नामक दान होते हैं।

३—सॉगो—गुजरातमे नागरचाळ नामक गॉवमे रहनेवाला गोड़ राजपूत था। उसकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी और वह भेड़े चराकर किसी प्रकार निर्वाह करता था। अेक बार राजस्थानके सुप्रसिद्ध बारहट ईसरीदासजी उस गॉवमें जा निकले और सॉगेके यहॉ ठहरे। सॉगेकी माताने बड़े कष्टसे भोजनकी सामग्री अेकत्र करके उन्हें भोजन करवाया। सॉगेने (जिसकी अवस्था उस समय केवल १४ वर्ष की थी) बारहटजीसे अर्ज की कि इस समय तो आपको भेंट देने लायक मेरे पास कुछ भी नहीं, पर जब मेरी भेड़ोकी ऊन उतरेगी तो उसका कंबल बनाकर भेंट करूँगा। उसके हृदयकी उदारतासे बारहटजी प्रसन्न हुअे और वहॉसे आगे पधारे। अेक दिन सॉगा नदीके किनारे भेड़े चरा रहा था, तो नदीमें बाढ़ आई और सॉगाको बहा ले गई। उस समय उसे बारहटजीको कबल देनेकी बात याद आई। प्रतिज्ञाको अधूरी रहते देख उसे बड़ा दुःख हुआ। तब उसने चिल्लाकर दूहा कहा कि शायद कोई कहीं सुन

रहा हो तो उसकी मातासे जाकर कह देगा। सॉगेकी मृत्युसे माता बिलकुल ही निराश्रय हो गई, पर पुत्रकी प्रतिज्ञा उसे सदा याद रहती। जब बारहटजी दुबारा आये तो माताने कंबल उन्हें भेट किया। जब बारहटजीको रसोई परोसी गई तो उनने पूछा कि सॉगा कहाँ गया? माताने पहले तो कहा कि आप भोजन कीजिये, वह यही कहीं गया है। पर बारहटजीने आग्रह किया तो बुढ़ियाने रोते-रोते सब हाल सुना दिया। कहते हैं कि यह बात सुनकर बारहटजी उसी समय नदीपार गये और सॉगाको आवाज दी और उस आवाजको सुनकर सॉगा नदीमे बहता हुआ बाहर निकल आया।

४—जगदेव पॅवार—यह धारके राजा उदयादित्यका छोटा पुत्र था। सौतेली माताके व्यवहारसे दुखी होकर गुजरातके राजा सिद्धराज जयसिह सोळंकीके यहाँ चला गया। यह बड़ा बीर तथा दानी हुआ है। लोककथाओमें इसकी बड़ी प्रशंसा गाई गई है। कहा जाता है कि अेक बार देवीने कंकाळी भाटिनी बनकर जयसिहके आगे जगदेवकी दानवीरताकी बड़ाई की, जिसपर जयसिहने कहा कि तू जगदेव के पाससे दान ले आ, मै उसका चौगुना दूँगा। भाटिनीने यह बात जगदेवसे कही। जगदेवने सोचा कि और किसी दानमे तो राजासे बढ़ नही सकता, अतः शीशदान ही देना चाहिअे। भाटिनी जगदेवका सिर थालीमे लेकर जा रही थी कि मार्गमे जगदेवका भानजा मिला। उसने भी अपना अेक नेत्र निकालकर थालीमे रख दिया। भाटिनीने राजाके पास जाकर कहा कि अब जगदेवसे चौगुना दान दो। राजाने रानी तथा कुमारसे सलाह की, पर वे अपना सिर देनेको तय्यार न हुअे। राजा पराजित हुआ।

५—करणसिह—यह वीकानेरके महाराज लूणकरणका बेटा था। बड़ा दानी था। अेक चारणको करोड़-पसाव नामक दान दिया। जो कुछ पास था वह सब दे चुकनेपर भी जब करोड़की रकम पूरी नही हुई तो उसने बाकी रकमके बदले अपने दो लड़के चारणको दे दिये।

६—रायसिंह—ये वीकानेरके महाराज थे। बड़े वीर, दानी और

प्रतापी हुअे हैं। अकबरके सेनापति थे तथा बादशाहके दरबारमें जय-पुरवालो के बाद उन्हींका दर्जा था। इनने अेक चारणको करोड़का दान दिया और रुपया लेनेके लिअे खजानचीके पास भेजा। खजानचीने इतनी बड़ी रकम देनेमे आनाकानी की तो चारण महाराजके पास लौट आया। तब महाराजने उसे चौथाई करोड़ और मिलाकर कुल सवा करोड़ रुपये अपने सामने दिलवाये।

९—किशनसिंह—ये शेखावाटीके सुप्रसिद्ध वीर सादूळसिंहजीके पुत्र और खेतड़ीके स्थापक राव भोपाळसिंहजीके पिता थे। इनकी राज-धानी झूँझणू थी। ये बड़े दानी और उदार थे। अपने भाई की बेटीके विवाह मे इनने राजगढका परगना बीकानेर-नरेशको दहेजमें दिया था। स० १८०२ मे इनका देहान्त हुआ।

१२—जगतसिंह—ये उदयपुरके राणा थे। इनने १६८४ से १७०९ तक राज्य किया। ये बड़े उदार और दानी थे। अनेक देवमदिर बनवाये तथा कई तुलादान किये। महाराणा राजसिंह इन्हीके पुत्र थे।

१६—भीमसिंह—ये उदयपुरके महाराणा (१८३४–१८८५) थे। बड़े दानी, उदार और बलवान् थे। इनकी उदारताकी कई कहानियाँ प्रसिद्ध हैं—

(१) अेकबार महाराणा सो रहे थे और अेक सेवक पैर दबा रहा था। महाराणाके पैरमे सोनेका छल्ला था। सेवकने उसे निकाल लेना चाहा, पर बीचमे अटक जानेसे वह नही निकला। तब सेवकने थूक लगाकर उसे निकाल लिया। इसपर महाराणा जाग पड़ा और बोला—छल्ला निकालना था तो यो ही निकाल लेता, मेरा पैर क्यो अपवित्र किया। फिर उठकर स्नान किया पर सेवककी निर्धन स्थिति देखकर उसे कोई दड नही दिया।

(२) अेक चारण अेक बार अपनी कन्याके लिअे रुपये माँगने आया। महाराणाने उसे दे दिया। इसी तरह दो रोज बाद फिर आया, पर यह जानते हुअे भी कि यह झूठा है, महाराणा उसे रुपये देता रहा।

इससे चारण लज्जित हुआ और चौथे रोज सारा धन लाकर महाराणाके सामने रख दिया और कहा कि मै तो आपकी परीक्षा करता था, राज्यकी अैसी स्थितिमें भी आपकी उदारतामे कोई कमी नही हुई। यह कहकर चारण धन लौटाने लगा। पर महाराणाने दिया हुआ धन वापिस नही लिया, उलटा उसे और भी दिया।

(३) कविता बनाकर लानेपर महाराणाके दरबारसे कई चारणो को पुरस्कार मिला, पर अेक चारणको कुछ भी न मिला। वह दूसरोंसे कहने लगा कि तुमने तो प्रशंसा करके दान पाया है, मै निंदा करके दान लूँगा। अेक रोज जब राणाजीकी सवारी कही जा रही थी, तब उसने मार्गमें खड़े होकर यह पद पढ़ा—

भीमा, तू भाठो मोटा मगरा मॉयलो।

इसपर लोगोंने उसे फटकारा, पर राणाने कहा कि कहने दो, शायद इसके चित्तमें कोई भारी दुःख है। तब चारणने दूसरी लाइन पढ़ी—

कर राखूँ काठो सकर ज्यूँ सेवा करूँ ॥

राणाने प्रसन्न होकर उसे औरोंकी अपेक्षा दुगुना दान देकर बिदा किया।

१८—ठाकुर खगारसिह—अेक बार कोई बारहट (चारण) इनके यहाँ आकर ठहरे। आधी रातके समय उनने अपने सोये हुअे नौकरसे हुक्का भरकर लानेको कहा। नौकरको नही उठता देखकर ठाकुर साहब स्वयं हुक्का भर लाये। बारहटजीने देरी होनेके कारण, उन्हें अपना नौकर समझकर, दो-चार कोरड़े मार दिये। ठाकुर साहब कुछ नही बोले और जाकर सो गये। प्रातःकाल बारहटजीने नौकरको फिर रातकी देरीके लिअे धमकाया। उसने कहा कि बारहटजी, मै तो रातको उठा ही नहीं, हुक्का कौन लाया? सच्चा हाल मालूम होनेपर उन्होने यह दूहा कहा।

———

(४) ऐतिहासिक और भौगोलिक

१—ऐतिहासिक

१—हाडा—यह चोहाण राजपूतोंकी अेक शाखा है। हाडोकी रियासतें बूँदी और कोटा हैं।

देवड़ा—यह भी चोहाणोकी शाखा है। इनकी रियासत सिरोही है।

राठोड़—इनके मुख्य राज्य आजकल जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, सीतामऊ, सैलाणा आदि हैं।

रणवंका राठोड़—यह वाक्य जोधपुर-राज्यका सिद्धान्त-वाक्य अर्थात् मोटो Motto था।

२—चूँडो—यह महाराणा लाखाका ज्येष्ठ राजकुमार था। यह राजस्थानका भीष्म कहा जाता है। अेक बार मारवाड़के राव रणमलने अपनी बहन हंसबाईकी सगाईका नारियल कॅवर चूँडाके लिए भेजा। दरबारमें राणाने हॅसीमें कहा कि जवानोके लिअे नारियल आते हैं, हमारे जैसे बूढोके लिअे कौन भेजे ? पिताकी यह बात सुनकर चूँडाने राव रणमलसे कहलाया कि अपनी बहनका विवाह महाराणाके साथ कर दीजिये। रणमलने कहा कि अैसा होनेसे मेरे भानजेको राज्य नहीं मिल सकता, क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र तो आप हैं। इसपर चूँडाने राज्यका अधिकार छोड़ देनेका प्रतिज्ञापत्र लिख दिया और पिताको उनकी इच्छाके विरुद्ध नया विवाह करनेको बाध्य किया। तबसे महाराणाकी ओरसे दिये हुअे पट्टे-परवाने तथा सनदो आदिपर भालेका चिह्न बनानेका अधिकार चूँडा और उसके मुख्य वंशधरको दिया गया।

शेखो—ऊपर वीर रसमें 'विशेष वीर' का दूहा नं० ९२ देखिये।

आमेर—जयपुर-राज्यकी प्राचीन राजधानी ऑबेर थी, अतः समस्त राज्य ऑबेर-राज्य कहलाता था।

दूदा—यह जोधपुर बसानेवाले राव जोधोजीका पुत्र और राव बीकोजीका छोटा भाई था। इसने मेड़ताको जीतकर वहाँ अपना निवास

बनाया। जोधपुरमें यह प्रसिद्ध वीर हो चुका है। चित्तोड़का रक्षक जयमल इसका पौत्र था तथा भक्तशिरोमणि मीरॉबाई इसकी पौत्री थी।

वीदो—यह राव जोधोजीका पुत्र तथा राव वीकोजीका सगा भाई था। जोधोजीने इसे मोहिलवाटीका शासक नियत किया और इसने मोहिल्लोको अधीन करके सारी मोहिलवाटीपर अधिकार कर लिया। यह प्रदेश इसके नामपर अव वीदावाटी कहलाता है। आगे चलकर वीदोजीने वीकोजीकी अधीनता स्वीकार कर ली। वीदावत ठाकुर वीकानेरके ४ सिरायतोमें से थे।

३—पातळियो—यह प्रतापका दूसरा रूप है। रावराजा प्रतापसिह जयपुर-महाराज उदयकरणजीके वंशज थे। अलवर राज्यकी स्वतंत्र स्थापना इन्होने की।

माधो—महाराज माधवसिह जयपुर-नरेश सवाई जयसिहके छोटे पुत्र थे। इनकी माता उदयपुर राज्यवशकी थी, जिसके विवाहके समय यह निश्चय हुआ था कि उसीका पुत्र जयसिहके बाद गद्दीपर बैठेगा चाहे वह बड़ा पुत्र न भी हो। जयसिहकी मृत्युके बाद सरदारोने ज्येष्ठ पुत्र ईसरी-सिहको गद्दीपर बिठाया। मेवाड़के राणाने माधवसिहका पक्ष लिया। बहुत समय तक युद्ध होता रहा। अतमे ईसरीसिहके विप द्वारा आत्महत्या कर लेनेपर माधवसिह राजा हुअे। इनने सं० १८१६ मे मराठोसे रण-थंभोर किला जीता।

वखतावर—ये खेतड़ी-नरेश अभयसिहके पुत्र थे। स० १८८३ से १८८६ तक इनने खेतड़ीका राज्य किया। पिताके जीवनकालमे इनने धूलाके राजावत सरदारसे बाघोरका किला जीता था।

४—नाग—यह भारतवर्षकी अेक अत्यन्त प्राचीन जाति थी जो संभवतः अनार्य थी। इसका राज्य समस्त भारतमे था अैसा जान पड़ता है। राजस्थानमें पहले इन्हीका प्रभुत्व था और नागोर इन्हीका बसाया बताया जाता है। परमारोने इनका राजस्थानका राज्य नष्ट कर दिया।

५—पॅवार—इनको प्रमार या परमार भी कहते हैं। प्राचीन कालमें

इनका राज्य बहुत विस्तृत था। सवत् चलानेवाले विक्रमादित्य और भोज आदि सुप्रसिद्ध राजा इसी वंशके थे। मारवाड़में पहले इनके नौ राज्य थे, जिससे अब भी 'नौ-कोटी मारवाड़' की कहावत प्रसिद्ध है।

६—ज्यॉ पॅवार त्यॉ धार है—इस पर अेक कथा है कि धाराके अेक पॅवार राजाने जेसळमेरके अेक व्यापारीको पकड़कर उसका सब धन ले लिया। छूटनेपर वह जेसळमेरके राजा देवराजके दरबारमें जाकर पुकारा। देवराजने अपनी प्रजाके अपमानको अपना ही अपमान समझा और तुरंत प्रतिज्ञा की कि जबतक धाराको न जीत लूँगा, तबतक जल भी नही पिऊँगा।

धारा जेसलमेरसे बहुत दूर थी और फिर जाते ही उसे जीत लेना भी असंभव था। तब तक बिना जल पिये रावळजी कैसे जीवित रहेंगे, यह सोचकर सारे सरदार चिंतित हुअे। अंतमें अेक उपाय सोचा गया कि मिट्टीकी धारानगरी बनाई जाय और राजा उसे ही विजय कर जलपान करें तथा बादमें धारापर आक्रमण करनेकी तय्यारी की जाय। समझाने पर रावळने यह सलाह मान ली। धाराका मिट्टीका दुर्ग बनाया गया और रावळके यहॉ रहनेवाले पॅवार सरदार उसकी रक्षाके लिअे तय्यार हुअे। रावळ सेनाके साथ दुर्गको ध्वस्त करनेके लिअे आये तो पॅवार सरदार तेजसी और सारंगने सचमुचका युद्ध छेड़ दिया। लोगोंने समझाया तो बोले कि धारा हमारी मातृभूमि है, उसका नाश हम नही देख सकते चाहे वह कृत्रिम ही क्यो न हो, जब तक अेक भी पॅवार जीवित है तव तक रावळ इस दुर्गको विजय नही कर सकते—जहॉ धारा है वहॉ पॅवार हैं और जहॉ पॅवार हैं वहॉ धारा है। अंतमें लड़ते हुअे सारे पॅवार योद्धा मारे गये अेवं उसके बाद ही रावळ उस नकली दुर्गको विध्वस्त कर सके। धन्य है इन वीरोंका अभूतपूर्व मातृभूमि-प्रेम!

७—यह जूनागढ़ गिरनारके जूड़ासमा राजा खेंगारकी रानी राणक देवड़ीका कथन है।

राणक देवड़ी—यह सोरठ जूनागढ़के राणा खेंगार चूड़ासमाकी रानी थी। इसके विषयमें यह दूहा प्रसिद्ध है—

जाई ती देवंगणा, पाळी आड कुँभार।
मन राख्यो जेसिघदे, परणी रा' खेंगार॥

खेंगारकी गुजरातके राजा सिद्धराज जयसिहके साथ शत्रुता थी। अपने भानजेके विश्वासघातसे सिद्धराजके आक्रमणमें खेंगार मारा गया और राणक देवड़ी सिद्धराजके हाथमें पड़ी। सिद्धराजने उसे अपनी रानी होनेके लिअे कहा और राणकके अस्वीकार करनेपर उसके सामने ही उसके पुत्र माणेराको मार डाला और राणकको पकड़ ले गया। पर अन्त में उसने उसे सती होनेकी अनुमति दे दी। इस कथापर कन्हैयालाल माणेकलाल मुंशीने गुजरातीमे 'गुजरातनो नाथ' और 'राजाधिराज' नामक दो बड़े ही सुन्दर उपन्यास लिखे हैं।

गिरनार—सोरठमें अेक पहाड़।

८—माणेरा—यह राणक-देवड़ीका पुत्र था। खेंगारके मारें जानेपर सिद्धराज महलोंमें घुस आया, तो माणेराने अपनी छोटी-सी तलवारसे सिद्धराजपर वार किया। सिद्धराजने राणकके सामने ही निर्दयतासे उसे मार डाला।

१०—रावळ भोजदेव—ये भाटी राजपूत और लोद्रवाके (जिसे अब जेसळमेर कहते हैं) राजा थे। इनके चाचा जेसळ राज्यको अपने हाथमें करना चाहते थे। और कोई उपाय न देख राव जेसळ शहाबुद्दीन गोरीके पास पहुँचे और उसके सेनापति मजेजखाँको चढ़ा लाये। भीषण युद्ध हुआ जिसमें भोजदेव काम आये। ये संवत् १२०४ में गद्दीपर बैठे थे।

११—भटियाणी राणी—यह जेसळमेरके राव लूणकरणकी कन्या थी। इसका नाम ऊमादे था। जोधपुरके महाराज मालदेवके साथ इसका विवाह हुआ था (सं० १५९३)। कारण-वश विवाहके बाद ही उसने पतिसे न बोलनेकी प्रतिज्ञा कर ली। महाराज विवाहके बाद लौट आये और कुछ समयके बाद बारहट आसेजीको भटियाणीको लानेके लिअे

भेजा। भटियाणी आ तो गई पर अपने हठपर कायम रही। उस समय बारहटजी ने यह दूहा कहा। सुनकर रानीने हठपर दृढ़ रहनेका ही निश्चय किया और जन्म भर पतिसे सम्बन्ध न रखा। संवत् १६१९ में रावजीकी मृत्यु होनेपर उनके साथ सती हुई।

१३—ईश्वरीसिह—ये सवाई जयसिंहके बड़े राजकुमार थे और उनके बाद जयपुरकी गद्दीपर बैठे। इनके सौतेले भाई माधवसिहने गद्दीपर अपना दावा किया। अन्तमे स्वामिभक्त मत्री केशोदासके प्रयत्नसे सधि हो गई। पर हरगोविद नाटाणी नामक अेक धूर्त्तके बहकावेमे आकर ईसरी-सिहने अपने योग्य मंत्री केशोदासको विपका प्याला पिलाकर मार डाला और नाटाणीको मंत्री बनाया। इसके बाद माधवसिहने मराठोंकी सहा-यता लेकर जयपुरपर धावा कर दिया। धोखेबाज नाटाणीने महाराजको बहकावेमें रखा और सामना करनेकी कोई तय्यारी न की। जब मराठे शहरके भीतर आ गये तो महाराजको धोखेका पता चला और कोई दूसरा उपाय न देखकर स्वयं विपपान द्वारा आत्महत्या कर ली।

१५—केसरीसिह—ये खंडेला (जयपुर) के राजा थे। इनका विवाह बीकानेरकी राजकुमारीसे हुआ था। विवाहके समय अेक चारणको यथेष्ट दान नही मिला, जिससे नाराज होकर उसने यह दूहा कहा। उसका यह कथन सत्य सिद्ध हुआ। अजमेरके सूबेदारने खडेलेपर चढ़ाई की। युद्धमे केसरीसिह वीरताके साथ लड़ते हुअे मरे और बीकावतजी सती हुईं (अग्नि में जलीं)।

१६—राणा राजसिह—ये उदयपुरके सुप्रसिद्ध राणा औरंगजेबके समयमें हुअे थे और उससे कई लड़ाइयाँ लड़े (देखो पीछे विशेपवीरमें दूहा नं० ७२)।

१७—अड़सी—इन्होंने सं० १८१७ से १८२९ तक उदयपुरका राज्य किया। राज्यके कई सरदार इनके तेज स्वभावसे नाराज होकर गद्दीके अेक दूसरे हकदार रतनसिहके पक्षमें हो गये। रतनसिहकी सेनामें

नागोंकी पलटनें थीं। युद्धमें महाराणाकी विजय हुई और बहुत-से नागे मारे गये।

१८—मेवाड़के सिरायत—सिरायत प्रधान सरदारोंको कहते हैं। मेवाड़के १६ सिरायत नीचे लिखे अनुसार थे—

(क) तीन झाला राजपूत—१ सादड़ी २ गोघूँदो ३ देलवाड़ो। (ख) तीन चोहाण—१ कोठारयो २ बेदळो ३ पारसोळी। (ग) चार चूँडावत सीसोदिया—१ सलूंबर २ देवगढ़ ३ बेगूँ ४ आमेट। (घ) दो शक्तावत सीसोदिया—१ भींडर २ बानसी (ङ) दो राठोड़—१ घाणेराव २ बदनोर। (च) अेक सारंगदेवोत—कानोड़। (छ) अेक पंवार—बीजोळियाँ।

१९—ईदा—ये पड़िहार राजपूत हैं। पहले मंडोर इनके अधिकारमें था। पीछे राठोड़ राव चूँडाके साथ इन्होने अपनी कन्याका विवाह किया और दहेजमें मडोर दिया, जो उस समयसे राठोड़ोंकी राजधानी हुई। पीछे जोधाजीने जोधपुर बसाया और उसे राजधानी बनाया। मडोर हाथमे आनेके पूर्व राठोड़ो का राज्य अस्तव्यस्त था। छोटे-छोटे ठिकाने उनके हाथमें थे, पर उनका प्रभुत्व विशेष न था। मंडोर हाथमें आनेसे उनका प्रभुत्व बढ़ गया और तभीसे वे राजस्थानमें जोर पकड़ने लगे।

२०—सीहोजी—ये कन्नोजसे मारवाड़में आये और यहाँ राठोड़ोका राज्य स्थापित किया। भीनमालके ब्राह्मणोंपर मुसलमान अत्याचार करते थे। सीहाजीने उन्हें परास्त करके भगा दिया।

२१—चूँडोजी—ये राठोड़राव वीरमके बेटे थे। राठोड़ोंका वास्तविक महत्त्व इन्हींके समयसे आरंभ हुआ। इनके पुत्र राव रणमल और पौत्र राव जोधा थे। जब ये छः वर्षके थे तब इनके पिता जोइयोंके युद्धमें मारे गये (सं० १४४०)। इनकी माता इनको लेकर काळाऊ ग्राममें आल्हा चारणके घर रहने लगी। उसने अपना भेद किसीको न बताया। अंतमें भेद जानकर आल्हा चारणने होनहार बालकको उसके बाबा (पिताके बड़े भाई) मल्लीनाथजीके पास पहुँचा दिया जो उस समय मारवाड़के राव थे। मल्लीनाथजीने चूँडाको सालवड़ी गाँव दिया। परंतु

उसके साहसिक कार्योंसे तंग आकर उन्होंने उसे बिदा कर दिया। पहले मंडोरमें पड़िहारोंका राज्य था, पर मुसलमानोंने उसे छीन लिया था। सं० १४५१ में पड़िहार राणा उगमसीने मंडोर मुसलमानोंसे छीन लिया, पर उसकी रक्षामें अपनेको असमर्थ पाकर अपने कुटम्बी राव धवळकी कन्यासे चूँडाका विवाह करा दिया और मंडोर उसे दहेजमें दे दिया। चूँडोजीने उसे अपनी राजधानी बनाया और मारवाड़-राज्यकी नवीन शाखाका प्रारंभ किया। मल्लीनाथजीके पुत्र राव जगमलके बाद उनका राज्य छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बँट गया और मंडोरका राज्य राठोड़ों का मुख्य राज्य हो गया। राव चूँडाने अपने राज्यका खूब विस्तार किया। भाटियों और मोहिलोंके युद्धमें ये पूगळके भाटी राव केल्हणके हाथों संवत् १४८० में मारे गये।

गोगादे—ये राठोड़ राजपूत और मारवाड़के राव चूँडाके भाई थे। गोगाजीका जोइया राजपूतोंसे वैर था। जोइयोंने उनके पिता वीरमको मार डाला था, अतः गोगाजीने उनपर आक्रमण करके पिताका बदला लिया। जब गोगाजी लौट रहे थे, तो मार्ग में अेक तालावपर विश्राम किया और घोड़ोंको थका समझकर चरनेको छोड़ दिया। वे हरा घास चरते-चरते दूर निकल गये। पीछेसे जोइयोंने गोगादेजीको आ दबाया। उन्होंने घोड़ोंको बहुत बुलाया, पर वे नहीं आये और गोगादेजी लड़ते हुअे मारे गये (सं० १४४०)।

२३—महाराज रामसिंह—ये जोधपुरके महाराजा थे। इन्होंने सं० १८०६ से १८०८ तक राज्य किया। इनके मूर्खतापूर्ण कार्योंसे तंग आकर सरदारोंने इनके चाचा वखतसिंहको नागोरसे बुलाकर जोधपुरका राजा बनाया। रामसिंहका जीवन वखतसिंह और उनके पुत्र विजयसिंहसे लड़ते ही बीता। इनके विषयमें अनेक कहानियाँ लोगोंमें प्रचलित हैं।

२४—जोधपुरके बड़े-बड़े सरदार महाराज विजयसिंहजी के विरुद्ध हो गये थे। सं० १८१५ में वे युद्ध के लिअे वीसळपुरमें अेकत्र हुअे, पर महाराज उन्हें मना लाये। सं० १८१६ में महाराजके गुरु आत्मारामका

किलेमें स्वर्गवास हो गया। महाराजने बड़े-बड़े मुखिया सरदारोंको, उन्हें मिट्टी देनेके बहानेसे, किलेमें बुलाया और कैद कर लिया। इनके नाम इस प्रकार थे—(१) रास-ठाकुर केसरीसिंह, (२) पोकरण-ठाकुर देवीसिंह, (३) आसोप-ठाकुर छत्रसिंह और (४) नीमाज-ठाकुर दोलतसिंह जो केसरीसिंहका बेटा था और नीमाज गोद गया था।

२५—महाराज रायसिंह—इन्होंने सं० १६२८ से १६६८ तक बीकानेरमें राज्य किया। अकबरके दरबारमें जयपुरवालोंके बाद इन्हीं का दर्जा था। ये बड़े भारी दानी थे। इन्होंने करोड़पसाव नामक दान दिया था (देखो दानवीरमें दूहा नं० ६)। जब ये दक्षिण गये तो अेक फोगके पेड़को देखा। अपने देशका बूटा समझकर घोड़ेसे उतरे और बूटेसे गले लगकर मिले और यह दूहा कहा।

२७—महाराज जोरावरसिंह—ये बीकानेरके राजा थे। जोधपुर-नरेश अभयसिंहने अेक भारी फौज लेकर बीकानेरपर आक्रमण किया, उस संबंधके ये दूहे हैं।

२८—जयसिंह—जयपुर-नरेश महाराज सवाई जयसिंह।

२९—सवाई जयसिंहका उत्तर।

३०—पृथ्वीराज राठोड़—ये महाराज रायसिंहके छोटे भाई थे। अकबरके दरबारमें रहते थे, पर अपनी परतंत्रता उन्हें बहुत अखरती थी। महाराणा प्रतापके बादशाहसे संधिकी प्रार्थना करनेपर इन्हींने अपने पत्र द्वारा उनको फिर स्वातंत्र्य-रक्षाके लिअे सन्नद्ध किया था (यह पत्र पीछे प्रतापसिंहके वर्णनमें दिया गया है)। ये बड़े ऊँचे दर्जेके कवि थे। कृष्ण-रुकमणीरी वेलि, जिसको वेल भी कहते हैं, इनका सुप्रसिद्ध डिंगळ काव्य है (इस काव्य का अेक बड़ा सुंदर संस्करण हिंदुस्तानी अेकेडेमी, प्रयाग, द्वारा प्रकाशित हुआ है)। इनका विवाह जेसळमेरके रावळ हरराजकी कन्याओं लालादे और चंपादेके साथ हुआ था। कहा जाता है कि उदयपुरकी अेक राजकुमारीके साथ भी इनका विवाह हुआ था। लालादे की मृत्युपर इन्होंने नीचे ३२ नंबरवाला दूहा कहा था। ये बड़े

भारी हरिभक्त थे। नाभादासने अपनी भक्तमालमें इनका उल्लेख किया है।

३१—पृथ्वीराज कल्याणरा इ०—कहते हैं कि पृथ्वीराजजीकी स्मरणशक्ति बड़ी तेज थी। कोई कवि इनामकी आशासे कुछ बनाकर लाता और इन्हें सुनाता तो सुनकर तुरंत उस कविताको दुहरा देते और कहते कि यह तो पुरानी कविता है। अंतमें अेक चारणने सोचकर यह दूहा बनाया और इन्हें सुनाया तथा पुरस्कार पाया।

३२—लालादे—यह जेसळमेरके रावळकी कन्या और पृथ्वीराजकी पत्नी थी। उसकी मृत्युके बाद चिता जळते समय पृथ्वीराजने यह दूहा कहा।

३५—जयसिंह—महाराज सवाई जयसिंह जिन्होंने सं० १७५६ से सं० १८०० तक राज्य किया था। जयपुरको इन्होंने बसाया था। इन्होंने अपने पुत्र शिवसिंहको विष देकर हत्या की थी।

बखतसिंह—ये जोधपुर-महाराज अजीतसिंहके छोटे पुत्र थे। इन्होंने अपने बड़े भाई अभयसिंहके कहनेसे अपने पिताको विष दे दिया था। पहले ये नागोरके राजा थे। बादमें अभयसिंहके पुत्र रामसिंहकी मूर्खता-से रुष्ट होकर सरदारोंने इन्हें जोधपुरका राजा बनाया। आगे उपालंभके ४२ और ४३ नंबरके दूहे देखो।

पत-जयपुर जोधाण-पत इ०—अेक बार जयसिंह और अभयसिंह दोनों पुष्करमें साथ बैठे थे। वहाँ करणीदान नामके चारण भी उपस्थित थे। दोनों राजाओंने करणीदानसे कुछ सुनानेके लिअे आग्रहसे कहा, जिसपर उन्होंने यह स्पष्टोक्ति सुनाई।

३७—मुहणोत नैणसी—यह जातिका ओसवाल था और जोधपुरके महाराज जसवंतसिंहजीका दीवान था। बड़ा वीर तथा विद्यानुरागी था। इसकी बनाई ख्यात, जो 'मुहणोत नैणसीरी ख्यात' के नामसे प्रसिद्ध है, अेक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अैतिहासिक ग्रंथ है। उसमें उस समय तकका राजस्थान और राजपूत वंशोंका इतिहास खूब विस्तारसे दिया हुआ है।

जोधपुर राज्यका सर्वसंग्रह (गेजेटियर) नामक अेक और भी ग्रंथ उसने लिखा था।

सवत् १७२३ की पोह सुद ९ को महाराज जसवंतसिहजीने किसी कारणवश नैणसीको और उसके भाई सुन्दरदासको कैद कर लिया। फिर संवत् १७२५ मे अेक लाखका दड करके दोनोको छोड़ दिया पर नैणसीने अेक पैसा भी देना स्वीकार नही किया जिस विपयमे ये दूहे अभी तक प्रसिद्ध हैं। दंड न देने पर वे फिर कैद कर लिये गये। सवत् १७२७ में नैणसीने पेटमें छुरी मारकर अपना शरीरांत किया।

३९—जाडा चारणने रहीमकी प्रशंसामे दूहे बनाये (देखिये विशेप वीर नं० १०५ और दानवीर नं० ७-८) जिसपर रहीमने पुरस्कार देकर यह दूहा कहा।

४०—वीरवल—यह ब्राह्मण जातिका और सम्राट् अकबरका दरबारी था। बुद्धिमानी और हाजिरजवावीके लिअे इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। बीरबलविनोद, अकबर और बीरबल आदि कई पुस्तकें इस विपयमें छपी हैं। सवत् १६४० मे अफगान-युद्धमे यह मारा गया। यह बड़ा भारी वीर, दानी तथा कवि भी था। इसकी मृत्युपर अकबरने यह दूहा कहा था। नीचे लिखा दूहा भी अकबरका कहा हुआ बताया जाता है—

दीन जानि सब दीन, अेक न दीनो दुसह दुख।
सो बिछुरत हम दीन, कछु नहि राख्यो वीरवर॥

(वीरवलने दीनोंको सब कुछ दे दिया केवल अेक चीज नहीं दी थी यानी दुस्सह दुःख। वह भी मरकर उसने मुझे दे दिया। सो उस दानीने अपने पास कुछ भी नहीं रखा)।

तानसेन—यह भी अकबरका दरबारी था। यह ग्वालियर का निवासी और पहले हिन्दू था फिर मुसलमान बना लिया गया। तानसेन भारतवर्षके महान् संगीतज्ञोमें ऊँचा आसन रखता है।

४१—हत्यारो ऊदो—यह महाराणा कुंभाका बड़ा लड़का था। इसने संवत् १५२५ में अपने पिताको कटारसे मार डाला और मेवाड़का राज्य

अपने हाथमें किया, पर मेवाड़के सरदारोंने पितृघातीका पक्ष नही लिया और उसके छोटे भाई रायमलको बुलाकर राणा बनाया। ऊदा हारकर मॉडूके सुलतानकी शरणमें गया और अपनी पुत्री देनेका वचन देकर सहायता मॉगी। बातचीत करके ज्योंही डेरेके बाहर हुआ, त्योंही उसपर बिजली गिरी और वह मर गया। सुलतानने उसके लड़कोंको लेकर मेवाड़पर आक्रमण किया, पर पराजित हुआ।

४२—वखतसिह—ऊपर दूहा नं० ३५ देखो। अेक बार वखतसिह अपने घोड़ेको बापा-बापा कहकर बिड़दा रहे थे, तब किसी स्पष्टवक्ता चारणने यह दूहा कहा था।

४४—जगरामसिह—संवत् १८११ मे जोधपुरके महाराज विजयसिह का मराठोंके साथ युद्ध हुआ। उस युद्धमें ठाकुर महेशदास बड़ी वीरतासे लड़कर काम आया, पर जगरामसिह परास्त होकर भाग आया। तो भी महाराजने उसे आसोपका पट्टा देनेका विचार किया और महेशदासकी वीरताकी कोई कदर नही की। इसपर किसी चारणने यह दूहा कहा। जिस पर महाराजने आसोप जगरामसिहको न देकर महेशदासके नाबालिग बेटेको दिया।

४५—फिट वीदाँ इ०—वीकानेरके महाराज दलपतसिहको जहाँगीरने अजमेरमें कैद कर दिया और वीकानेरका राज्य उनके छोटे भाई सूर-सिहको दिया। वीकानेरके सरदारों ने अपने महाराजको कैद होने दिया और उन्हें छुड़ानेके वास्ते कोई प्रयत्न न किया, इसलिअे कवि इस दूहेके द्वारा उनको फटकारता है।

जब महाराज कैदमें थे, उस समय चॉपावत हाथीसिह अपनी ससुरालको जाता हुआ उधरसे निकला। महाराजकी अेक दासीने उसके किसी आदमीसे पूछा कि ये कौन सरदार हैं। जिसपर आदमीने उत्तर दिया कि राठोड़ हैं। दासीने व्यंगसे कहा कि क्या पृथ्वीपर अभीतक कोई राठोड़ जीवित विद्यमान है ? यह बात हाथीसिह तक पहुॅची। उसने दासीसे सब हाल पूछा और महाराजके कैद होनेकी बात जानकर कहा

कि अभी तो मैं ससुराल जाता हूँ, लौटकर महाराजको छुड़ाऊँगा। दासीने कहा कि यह काम ससुरालका आनंद मनानेवालोसे नही हो सकता। हाथीसिहको यह बात चुभ गई और उसी दम महाराजको छुड़ानेके लिओ तय्यार हो गया। बड़ी भारी लड़ाई हुई जिसमें हाथीसिह और महाराज दलपतसिह दोनों काम आये। यह हाथीसिह प्रसिद्ध वीर वल्लूसिहका भाई था।

४७—मल्हारराव होलकर इंदोरका मराठा राजा था। उस समय राजपूतानेकी हालत बहुत खराब थी। आपसमे वैर-विरोध होनेके कारण सिंधिया और होलकरने खूब लूटमार मचा रखी थी। संवत् १८०८ में मल्हाराव होलकरने राजस्थानके राजाओंको दबाकर उन्हें अेक अैसा संधिपत्र मंजूर कर लेने को विवश किया कि जिससे उनके गौरवकी हानि होती थी। उसी समय किसी चारणने यह दूहा कहा था।

---

(५) हास्य और व्यंग

२—जनरल सर प्रताप—ये जोधपुरके महाराज तखतसिहजीके दूसरे पुत्र और महाराजा जसवंतसिहजीके छोटे भाई थे। इनका जन्म संवत् १९०२ मे हुआ था। ये बड़े वीर और प्रतापी थे। गवर्नमेंटने इनको ईडरका राज्य दिया। जोधपुर-राज्यके महाराजाओकी नाबालिगीमें ये तीन बार रीजेंट—राज्य-प्रबंधक—रहे। ये स्वामी दयानन्दके अनुयायी थे। जोधपुर राज्य में इन्होंने अनेक सुधार किये। यूरोपीय महायुद्धमें अपने पौत्र महाराज सुमेरसिहजीके साथ सम्मिलित हुअे थे। ये डाढ़ी-मोंछ मुड़ाये रहते थे जिसपर कविने यह दूहा कहा।

३—महाराणा सज्जनसिह (१९१६–१९४१)—इन्होंने सं० १९३१ से १९४१ तक मेवाड़ में राज्य किया। ये बड़े साहित्य-प्रेमी, विद्वान् और विद्वानों का आदर करनेवाले नरेश थे। राज्यमें इन्होंने अनेक सुधार किये तथा कई संस्थाओ को जन्म दिया। सम्वत् १९३७ में इन्हें

G.C.S.I. की उपाधि मिली। उसी अवसर पर किसी स्पष्टवक्ता कविने दूहा पढ़ा।

४०—सुरही हाजर हुई इ०—किसी बनियेने अपने जीवन भरमें केवल अेक पुण्यकार्य किया और वह था अेक गौ-दान। मरने पर वह यमराजके दरबारमें लाया गया। यमने उससे कहा कि तेरी दी हुई गाय अेक घड़ी तक तेरे कहनेमें रहेगी और पीछे तू नरकमें डाला जायगा। जब गाय आई तो बनियेने उसे आज्ञा दी कि तू यमराजको मार। गाय सींग बढ़ाकर यमराजकी ओर दौड़ी। यमराज भाग चले, गाय भी पीछे-पीछे चली। बनियेने गायकी पूंछ पकड़ ली और वह भी साथ चला। यमराज भागते-भागते विष्णुभगवानके यहाँ गये और बोले कि महाराज मुझे बचाइये। विष्णु भगवानने सब हाल सुनकर बनियेको तुरन्त नरकमें डालनेकी आज्ञा दी कि इतनेमें बनिया चुपकेसे सामने आया और कहने लगा कि लोग तो आपका नाम याद करके ही भव-सागरसे पार हो जाते हैं, मैंने तो साक्षात् आपके दर्शन कर लिये, क्या अब भी मैं नरकका अधिकारी ही बना रहा? भगवान्ने हँसकर उसे स्वर्गमें भिजवा दिया। इस प्रकार बनियेने यमराजको भी चकमा दिया।

---

(६) प्रेम

२४—संकर विख इ०—अमृतको प्राप्त करनेके लिअे देवों तथा दैत्योंने समुद्रको मथा। मथनेपर जो वस्तुएँ निकलीं उनमें विष भी था। भोलानाथ शंकरने उसे ग्रहण किया और उसे अपने गलेमें स्थान दिया जिससे उनका गला नीला हो गया। इसी कारण उनका नाम नीलकंठ पड़ा।

३०—सायर वहनि—सागरमें वड़वा नामकी अग्निका निवास पुराणोंमें बताया गया है। इसीके कारण सहस्रों नदियोंके गिरने पर भी समुद्रका पानी बढ़ने नहीं पाता—अेक ही सतहपर रहता है।

---

(७) शृङ्गार रस

१—*प्रियतम*

१—साजन-साजन हूँ करूँ—अैसा ही अेक और दोहा नीचे लिखे अनुसार है—

साजन साजन हूँ करूँ, साजन जीव-जड़ी।
साजन लिख दूँ कागदाँ, वाँचूँ घडी-घडी ॥

६—बत्तीस लखण—साहित्यमें शारीरिक सौंदर्य के ३२ लक्षण प्रसिद्ध हैं। ये प्रायः स्त्री-सौंदर्यके संबध में बर्णित हुअे हैं।

२—*नायिका*

७—थळ भूरा इ०—मिलाओ—

खेजड रूँख, भरूँट खड़, ऊँडो नीर अथाह।
ढोलो पूछै, मारवण, इतरो रूप कठाँह ॥

११—कूँझ—अेक पक्षी जिसे संस्कृतमें क्रौंच और हिंदीमें करॉकुल कहते हैं। राजस्थानीमें यह शब्द कई तरहसे लिखा जाता है, जैसे—कुंज, कूँझ, क्रुँझ, कुरज। साधारणतया इसे कुरज कहते हैं। यह सारस जाति का पक्षी होता है और जलाशयोंके किनारे रहता है। राजस्थानी साहित्यमें इसका बड़ा भारी महत्त्व है। कुरजोंके सम्बन्धमें अनेक सुन्दर उक्तियाँ मिलती हैं, जिनमेंसे कुछ आगे स्थान-स्थानपर दी गई हैं। आदि कवि वाल्मीकि की प्रतिभा-स्फुरणका कारण अेक कुरजका करुण रुदन ही था—

मा, निषाद, प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंच-मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

इस पक्षीका स्वर अत्यन्त करुण होता है।

५—*प्रियका प्रवास*

६—कादम इ०—पानी तथा कीचड़वाली जमीनमें ऊँट प्रायः नहीं चल सकता।

१०—तीज—सावण और भाद्रपदकी तीजोंके त्यौहार राजस्थानमें

धूमसे मनाये जाते हैं और बहुत लोक-प्रिय हैं। तीजांका त्यौहार राजस्थानका जातीय त्यौहार है।

३२—सजन सिधाया हे सखी इ०—अैसे ही दो दूहे ये हैं—

साजन सिधाया, हे सखी, कडियाँ बाँध कटार।
दोडी तो पूगी नहीं, हेला दिया हजार ॥१॥
सजन सिधाया, हे सखी, कांधे धारी बँदूक।
कै तो साथे ले चलो, नहि कर दो दो टूक ॥२॥

६—विरहिणी-विप्रलाप

१०२—आज धराऊ धूँधळा इ०—मिलाओ—

नव जळ भरिया मग्गडा, गयणि धडक्कइ मेह।
इथंतरि जइ आविसिइ, तइ जाणिस्सिइ नेह ॥

(हेमचन्द्रके व्याकरणमें)

१२—चकवी—साहित्यमें प्रसिद्ध है कि रातको चकवा-चकवी अेक साथ नहीं रहते। दिनमें प्रियसे वियोग नहीं होता, अतः चकवीका सूर्यसे प्रेम स्वाभाविक है।

११०—विच न समातो हार इ०—मिलाओ,—

हारो नारोपितः कंठे मया विश्लेष-भीरुणा।
इदानीमावयोर् मध्ये सरित्सागर-भूधराः ॥

—रामायण

७—संदेशा

१—ढाढी—अेक जाति; इनका पेशा उत्सवोंपर गाना-बजाना तथा बंदीजन अेवं सन्देशवाहकका काम करना है। आरम्भमें ये हिन्दू ढोली या भाट थे, पर बादमें मुसलमान हो गये। ये अब तक हिन्दू रीति-रिवाजोंका पालन करते हैं। कविता करना इनका पैतृक व्यवसाय है। राजस्थानके लोकप्रिय साहित्यके निर्माता तथा संरक्षक मुख्यतया ढाढी अेवं ढोली लोग ही हैं।

१३—प्रियतमका आगमन

१—काग उडावण धण खड़ी इ०—मिलाओ,—

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिठ्ठउ सहसत्ति ।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥

(हेमचन्द्रके व्याकरणमे उद्धृत अपभ्रंशका दूहा)

जब किसीकी प्रतीक्षा होती है तो कौवेको उड़ाया जाता है। यह प्रथा प्रायः सारे भारतमे प्रचलित है। कबीर, सूर आदिने इसको लेकर कई-अेक अच्छी-अच्छी उक्तियाँ कही हैं।

१५—सज्जण वारूँ कोड़धा—इसपर यह कथा है—

बादशाह अकबरने अपने दरबारी बीकानेरके पृथ्वीराज राठोड़से अेक दिन कहा कि तुम्हारे तो देवी वशमे है, बताओ तुम्हारी मृत्यु कहाँ होगी। पृथ्वीराजने कहा कि मथुरामे विश्रामघाटपर। यह सुनकर बादशाहने उन्हें नौकरीपर अटक भेज दिया कि देखें तुम्हारी मृत्यु मथुरामें कैसे होती है। इस बातको पाँच महीने हो गये। इसी समय किसी भीलने यमुनाके तटपर बैठे चकवा-चकवीको कपड़ा डालकर पकड़ लिया और उन्हें बेचनेको शहरमें लाया। बादशाहको खबर हुई तो उसने पिंजड़ेको अपने पास मँगवा लिया और भीलसे पूछा कि रातको ये पक्षी कहाँ रहे। भीलने कहा कि इसी पिंजड़ेमें। बादशाहने कहा कि अैसा शत्रु तो मित्रसे कहीं अच्छा। इसपर खानखानाने यह चरण पढ़ा—

सज्जन बारूँ कोडधा या दुरजणकी भेट ।

पर दूसरा चरण वे न कह सके। तब तुरन्त पृथ्वीराजको बुलानेका हुक्म हुआ। जब वे मथुरा पहुँचे तो उन्होंने इसका उतरार्ध बनाकर बादशाहके पास पहुँचा दिया और थोड़ी देर बाद वहीं उनका देहान्त हुआ।

---

(८) शान्त रस

१—कालबली की महिमा

२—काबाँ लूँटी गोपका इ०—श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेके

पश्चात् अर्जुन द्वारका गया और वहाँसे बहुत-सी यादव-स्त्रियोंको लेकर हस्तिनापुर लौट रहा था कि मार्गमें बर्बर जातियोंने उसपर आक्रमण कर दिया। भावीवश जिसने महाभारतका युद्ध जीत लिया था वह वीर अर्जुन उन बर्बरोंका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका और वे बहुत-सी स्त्रियोंको लूट ले गये।

६—हरचन्द वेची नार इ०—राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंशी राजा था और बड़ा सत्यवादी था। उसकी सत्यवादिताकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। स्त्री, पुत्र और अपने-आपको भी बेचकर उसने सत्यकी रक्षा की। विशेष जाननेके लिये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक देखिये।

४—चेतावनी

११—हाथाँ परवत तोलया—जैसे रावण, बाणासुर आदि।
समदाँ घूँट भरेह—जैसे अगस्त्य ऋषि जो समुद्रको पी गये थे।

६—हरिभक्ति

३—सबरी—यह भीलनी थी और मातंग ऋषिकी सेवा करती थी। ऋषिकी कृपासे इसे हरि-भक्ति प्राप्त हुई। ऋषिने उससे यह भी कहा था कि श्रीराम तुम्हारे यहाँ आवेंगे। तभीसे शबरी जंगलमें जो अच्छे-अच्छे फल देखती उनको जमा रखती कि श्रीरामके आने पर भेंट दूँगी। अन्तमें उसकी कामना पूरी हुई। पिछले भक्तोंमें यह प्रसिद्धि हो गई कि शबरी स्वयं चख-चखकर स्वादिष्ट फलोंको जमा करती थी और श्रीरामने प्रेमके वश होकर उसके जूठे फल खाये।

---

(९) प्रकीर्णक

१—वर्षासम्बन्धी

१०—माळवे—मारवाड़में अकाल पड़नेपर यहाँके लोग, विशेषतः गाय बैल आदि रखनेवाले, मालवा चले जाते थे जहाँ उनके पशुओंको

घास और पानी मिल सके। दक्षिण राजस्थानके लोग अब भी कभी-कभी अैसा करते हैं।

२—कूट और पहेलियाँ

१७—मृगरथ इ०—मिलाओ—

दूर करहु बीना कर धरिबो।
मोहेमृग नॉही रथ हॉक्यों, नॉहिन होत चन्दको ढरिबो ॥

—सूरदास

३२—फेरी कोनी—फेरा नही या फिराया नहीं। घोड़को फिराया नही, पानीको उलटा नही, और रोटीको पलटा नही।

३४—कूट्यो कोनी—कूटा नही। कपड़ेको कूटा नहीं, मूँजको पीटा नही, और जाटको मार-पीटकर ठीक नही किया।

३५—जोड़ी कोनी—जोड़ी नही। गाड़ीके बैलोंकी जोडी नही, औरतके पैरोंमे जूती नही, और बेटीके लिअे वर नहीं मिला।

नोट—इस प्रकारकी बहुत-सी पहेलियाँ अमीर-खुसरोकी रचनाओंमें मिलेंगी जिनका अेक संग्रह 'अमीर-खुसरो और उनकी कविता' के नामसे काशीकी नागीप्रचारिणी-सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

४—प्रकीर्णक

२—जळ पीधो इ०—मिलाओ—

चडियो नीर अपार पड़ियो जठ पीधो नही।
गूदळिये जळगार जीव न धापै, जेठवा ॥

३—जगतण इ०—मिलाओ—

जगतणकूँ भगतण कहै, कहै दूधकूँ खोया।
चलतीकूँ गाडी कहै, देख कबीरा रोया ॥

अनुक्रमणिका

—:❀:—